श्री गणेशप्रसाद वर्णी ग्रन्थमाला—२१

अङ्ग-पूर्वज्ञाता, सिद्धान्तामृत-सागर, प्रवादिगजकेसरी
श्रीमद्धरसेनाचार्य
के
साक्षाद्विद्याशिष्य, ऋषिसमितिपति, दुर्नयान्धकाररवि
आचार्य पुष्पदन्तप्रणीत

सत्प्ररूपणासूत्र

हिन्दी अनुवाद और विशिष्ट शङ्का-समाधानसहित

•

संपादक-अनुवादक
सिद्धान्ताचार्य पण्डित कैलाशचन्द्र शास्त्री
प्राचार्य, स्याद्वाद-महाविद्यालय, काशी

•

श्री गणेशप्रसाद वर्णी ग्रन्थमाला प्रकाशन

श्री गणेशप्रसाद वर्णी ग्रन्थमाला—२३

अङ्ग-पूर्वज्ञाता, सिद्धान्तामृत-सागर, प्रवादिगजकेसरी
श्रीमद्धरसेनाचार्य
के
साक्षाद्विद्याशिष्य, ऋषिसमितिपति, दुर्नयान्धकाररवि
आचार्य पुष्पदन्तप्रणीत

सत्प्ररूपणासूत्र

हिन्दी अनुवाद और विशिष्ट शङ्का-समाधानसहित

सम्पादक-अनुवादक
सिद्धान्ताचार्य पण्डित कैलाशचन्द्र शास्त्री
प्राचार्य, स्याद्वाद-महाविद्यालय, काशी

श्री गणेशप्रसाद वर्णी ग्रन्थमाला प्रकाशन
डुमरॉवबाग, अस्सी, वाराणसी—५

प्रकाशकीय

'समयसार-प्रवचन' के बाद दिसम्बर १९६९ में 'मेरी जीवन गाथा' प्रथम भागके चौथे संस्करणका और १९ अप्रैल १९७० में महावीर-जयन्तीपर 'तत्त्वार्थसार' का प्रकाशन हुआ था। 'समयसार-प्रवचन' जहाँ ग्रन्थमालाकी प्रकाशन-शृंखलामें एक अपूर्व उपलब्धि है वहाँ 'तत्त्वार्थसार' का प्रकाशन भी उसकी एक नव्य भव्य देन है। ये दोनों ही कृतियाँ समादृत और लोकप्रिय हुई हैं।

हर्ष है कि आज हम उसी क्रममें श्रुत-पञ्चमी जैसे पावन पर्वपर 'षट्खण्डागमगत सत्प्ररूपणासूत्र'को हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित कर रहे हैं। सत्प्ररूपणासूत्रके कर्ता आचार्य पुष्पदन्त हैं, जो अङ्गों और पूर्वोंके एक देश ज्ञाता, सिद्धान्तामृतसागर, प्रवादि-गज-केसरी श्रीमद्धरसेनाचार्यके साक्षाद्विद्याशिष्य थे और जिन्हें धवला-टीकाकार आचार्य वीरसेनने ऋषियों (मुनियों) की सभाका नायक (ऋषि-समिति-पति) और एकान्तवादरूप अन्धकारको दूर करनेवाला सूर्य (दुर्नयान्धकार-रवि) कहा है। आ० पुष्पदन्तने धरसेन स्वामीसे प्राप्त ज्ञानको 'सत्प्ररूपणा' के रूपमें सर्वप्रथम लिपिबद्ध किया था। यद्यपि यह 'सत्प्ररूपणा' धवला टीका और उसके हिन्दी व्याख्यानके साथ सन् १९३९ में श्रीमन्त सेठ लक्ष्मीचन्द्र शिताबराय जैन साहित्योद्धारक फण्ड अमरावतीसे षट्खण्डागमकी प्रथम पुस्तकके रूपमें प्रकट हो चुकी है। किन्तु वह इतना विशाल ग्रन्थ है कि उसमें साधारण जिज्ञासुओंका प्रवेश दुष्कर है।

साधारण जिज्ञासुजन उस 'सत्प्ररूपणा' की अपूर्व ज्ञान-राशिसे वंचित न रहें, इस दृष्टिसे समाज-के जाने अत: पहचाने मनीषी सिद्धान्ताचार्य पण्डित कैलाशचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री प्राचार्य स्याद्वाद-महाविद्यालय काशीने मूल 'सत्प्ररूपणा' का कई वर्ष पूर्व हिन्दी रूपान्तर किया था और धवलाटीकाके कुछ उपयोगी एवं विशिष्ट शंका-समाधानोंको भी उसके साथ निबद्ध किया था। और अब आपने उसपर अपना महत्त्वपूर्ण प्राक्कथन भी लिखकर उसमें कितनी ही बातोंपर प्रकाश डाला है जो विशेष ज्ञातव्य हैं। संक्षेपमें उस प्रयत्नका भी आपने सन्तुलित एवं युक्तिपूर्ण उत्तर दिया है जिसके द्वारा दिगम्बर परम्परामें मूलागमरूपमें मान्य षट्खण्डागम-को अर्वाचीन और प्रज्ञापनाको प्राचीन बतानेका नया उपक्रम किया गया है। प्रसन्नता है कि हमारे अनुरोध पर आपने उसे श्री ग० वर्णी ग्रन्थमालाको प्रकाशनार्थ देनेकी कृपा की। इसके लिए ग्रन्थमाला-समिति आपकी आभारी है।

हमें आशा है इसके प्रकाशनसे साधारण जिज्ञासु भी मूल आगमोंके तत्त्वज्ञानसे उसी प्रकार लाभान्वित होंगे, जिस प्रकार वे आचार्य गृद्धपिच्छ (उमास्वामी) के तत्त्वार्थसूत्रके स्वाध्याय, पाठ और श्रवणसे लाभ उठाते हैं।

गत ग्रीष्मावकाशमें परमपूज्य श्री १०८ आचार्य समन्तभद्र महाराजके पाद-सान्निध्यमें बाहुबली (कोल्हापुर) जाने और वहाँ कुछ दिन रहनेका सुअवसर मिला था। महाराजश्री गुरुकुलोंकी स्थापनाद्वारा परकल्याण करते हुए भी आत्मकल्याणमें सतत् जागृत एवं संलग्न रहते हैं। प्रतिदिन ज्ञान-चर्चा होती है। इस चर्चामें स्थानीय बन्धु भाग लेते हैं। विदुषीरत्न श्रीमती गजाबेन तो द्रव्यानुयोग और करणानुयोगकी चर्चामें अत्यन्त निष्णात एवं सूक्ष्म प्रज्ञावती हैं तथा हमेशा जिज्ञासुवृत्ति रखती हैं। वाङ्मयके प्रति आपका अनन्य

अनुराग है। हमारी प्रेरणा पाकर आपने इस ग्रन्थके प्रकाशनमें एक सहस्र रुपया प्रदान किया है। उनके इस वाङ्मयानुरागके लिए उन्हें हार्दिक धन्यवाद है। यद्यपि उन्हें यह धन्यवाद-प्रकाशन रुचिकर नहीं लगेगा, क्योंकि वे अत्यन्त निरपेक्षवृत्ति हैं किन्तु कृतज्ञता-प्रकाशनकी प्रशस्त परम्पराका निर्वहण भी परमावश्यक है।

ग्रन्थमालाके संरक्षक-सदस्यगण भी धन्यवादार्ह हैं, जिनके आर्थिक सहयोगसे ग्रन्थमालाके लिए जिनवाणी-प्रकाशनका कार्य सुलभ हो गया है।

महावीर प्रेसके संचालक श्री बाबूलालजी फागुल्लको भी भुलाया नहीं जा सकता, जो ग्रन्थमालाके प्रत्येक प्रकाशनको सुरुचिपूर्ण बनानेमें योगदान करते हैं।

(डा०) नेमिचन्द्र शास्त्री
संयुक्त मंत्री

(डा०) दरबारी लाल कोठिया
मंत्री

सम्पादकीय

कई वर्ष पूर्व जब षट्खण्डागमका प्रथम भाग—सत्प्ररूपणा अप्राप्य हो गया था तब उसकी अप्राप्यता और उपयोगिताको दृष्टिमें रखकर सत्प्ररूपणाके सूत्रोंका धवलानुसारी यह अर्थ लिखा था। अर्थ लिखते समय केवल मूलसूत्रसे सम्बद्ध धवलाके अंशोंका ही अनुवाद देनेकी भावना रही है, प्रासंगिक सब कथन छोड़ दिये गये हैं क्योंकि सूत्रोंका अर्थ समझनेमें उनकी उपयोगिता नहीं थी। मेरा भाव केवल सूत्रोंके ही अनुगम तक रहा है, अतः उन्हींसे सम्बद्ध शंका-समाधान भी अनुवादमें दिये गये हैं।

धवला एक सिद्धान्तका आकर-ग्रन्थ है। वीरसेन स्वामीने उसमें इतने विविध सैद्धान्तिक विषयोंका शंका-समाधानपूर्वक संयोजन किया है कि उनकी संकलना कर सकना भी कठिन है। वे सब विषय सब पुस्तकोंको देखे बिना जाननेमें नहीं आ सकते। और षट्खण्डागमके सोलह भागोंका स्वाध्याय कर सकना विरले ही जनोंके लिये भी आयास-साध्य है। ऐसी स्थितिमें उसमें जो सर्वसाधारणके लिये भी स्वाध्यायोपयोगी शंका-समाधान हैं वे भी सब तक पहुँचना अशक्य हैं। यह सब दृष्टिमें होनेसे मैंने परिशिष्ट रूपमें कुछ आवश्यक शंका-समाधानोंको भी विषयवार संकलित कर दिया है। इससे इसकी उपयोगिता विशेष बढ़ गई है। आशा है सर्वसाधारण स्वाध्याय-प्रेमी उससे लाभान्वित होंगे।

बहुत वर्षों पूर्व किया गया यह अनुवाद काललब्धि आनेपर प्रकाशित हो रहा है। इसका श्रेय श्री गणेशप्रसाद वर्णी ग्रन्थमालके मन्त्री डा० पं० दरबारीलालजी कोठिया न्यायाचार्यको है। यदि इससे सैद्धान्तिक ज्ञानका अनुराग बढ़ा तो मैं अपने श्रमको सफल समझूँगा।

श्री स्याद्वाद महाविद्यालय
वाराणसी।
श्रुत-पञ्चमी।
वी. नि. सं. २४९७

कैलाशचन्द्र शास्त्री

प्राक्कथन

१. षट्खण्डागमकी रचनाका इतिहास

आचार्य वीरसेनने षट्खण्डागमपर श्रीधवला नामकी टीका रची है। उसके प्रारम्भमें उन्होंने षट्खण्डागमकी रचना किस प्रकार हुई, इसका विवरण दिया है। उन्होंने लिखा है—सौराष्ट्र देशमें गिरिनगरकी चन्द्रगुफामें धरसेनाचार्य रहते थे। वे अष्टांग महानिमित्तके पारगामी थे। उनको यह भय हुआ कि मेरे बाद अंगश्रुतका विच्छेद हो जायगा। अतः प्रवचनवात्सल्यसे प्रेरित होकर किसी धर्मोत्सवके निमित्तसे, महिमा नगरीमें सम्मिलित हुए दक्षिणापथके आचार्योंके पास लेख भेजा। उस लेखसे धरसेनाचार्यका अभिप्राय ज्ञात करके उन आचार्योंने ऐसे दो साधुओंको उनके पास भेजा जो शास्त्रके अर्थके ग्रहण और धारणमें कुशल थे, देश, कुल, जातिसे शुद्ध थे, विनयी तथा शीलसम्पन्न थे।

दोनों साधुओंने धरसेनाचार्यकी पदवन्दना करके अपने आनेका प्रयोजन निवेदन किया। आचार्यने उनकी परीक्षा लेनेके लिये दोनोंको दो विद्याएँ देकर कहा कि उपवासपूर्वक इन्हें सिद्ध करो। उन्होंने विद्याएँ सिद्ध की, किन्तु विद्याओंकी अधिष्ठात्री देवताओंमेंसे एकके दाँत बाहर निकले हुए थे और दूसरी कानी थी। किन्तु देवता तो विकृतांग नहीं होते, यह विचारकर उन दोनोंने विद्या-मंत्रोंको मंत्रशास्त्रके व्याकरणके अनुसार शुद्ध करके पुनः सिद्ध किया तो वे अपने सुन्दर रूपमें दिखलाई पड़ीं। उन्होंने गुरुसे सब वृत्तान्त निवेदन किया तो गुरुने सन्तुष्ट होकर शुभ तिथि, शुभ नक्षत्र और शुभवारमें ग्रन्थ पढ़ाना प्रारम्भ किया और आसाढ़ शुक्ल एकादशीके पूर्वाह्णमें पाठ समाप्त किया। यह देखकर उन दोनोंमेंसे एककी भूत जातिके व्यन्तर देवोंने पूजा की, अतः गुरुने उनको भूतवलि नाम दिया। और दूसरेकी अस्त-व्यस्त दन्तपंक्तिको ठीक कर दिया, इसलिये दूसरेको पुष्पदन्त नाम दिया।

गुरुकी आज्ञासे उन्हें उसी दिन वहाँसे प्रस्थान करना पड़ा। अतः मार्गमें अंकलेश्वरमें उन्होंने वर्षावास किया। वर्षायोग समाप्त करके पुष्पदन्त आचार्य तो जिनपालितको देखकर उसके साथ बनवास देशको चले गये और भूतवलि द्रमिल देशको।

आचार्य पुष्पदन्तने बीस प्ररूपणागर्भित सत्प्ररूपणाके सूत्र बनाकर जिनपालितको दीक्षा देकर उन्हें पढ़ाया और उसे आचार्य भूतवलिके पास भेजा। भूतवलिने जिनपालितके पास सत्प्ररूपणासूत्र देखे और यह जाना कि पुष्पदन्तकी आयु अल्प है अतः महाकर्मप्रकृतिप्राभृतके विच्छेदके भयसे उन्होंने द्रव्यप्रमाणानुगमको आदि लेकर ग्रन्थ-रचना की।

आचार्य इन्द्रनन्दिने इस वृत्तान्तको देते हुए अपने श्रुतावतारमें आगे लिखा है कि भूतवलिने पूर्वसूत्र सहित ६ हजार सूत्रप्रमाण ग्रन्थकी रचना की। तथा इन पाँच खण्डोंके अतिरिक्त महाबन्ध नामके छठे खण्डकी तीस हजार सूत्रग्रन्थ प्रमाण रचना की। इससे पूर्वके पाँच खण्डोंके नाम इस प्रकार हैं—जीवस्थान, क्षुल्लकबन्ध, बन्धस्वामित्व, वेदना तथा वर्गणा। इस प्रकार षट्खण्डागमकी रचना करके भूतवलिने उन्हें पुस्तकोंमें निबद्ध किया और ज्येष्ठ शुक्ला पञ्चमीको चातुर्वर्ण्य संघके साथ पूजा की। इसीसे यह तिथि श्रुतपञ्चमीके नामसे ख्यात हुई। इसीसे आज भी जैन उस पञ्चमीको श्रुतपूजा करते हैं।

२. षट्खण्डागमसूत्र

१ इस प्रकार महाकर्मप्रकृतिप्राभृतसे षट्खण्डागमकी उत्पत्ति हुई है। यह महाकर्मप्रकृति-प्राभृत द्वादशांग श्रुतके बारहवें दृष्टिवाद अंगके पूर्व नामक भेदके दूसरे भेद अग्रायणीय पूर्वके चौदह वस्तु अधिकारोंमेंसे पांचवीं चयनलब्धिके २० प्राभृतोंमेंसे एक प्राभृत है। उसके भी २४ अनुयोग द्वार हैं। उन्हींसे छः खण्डोंकी निष्पत्ति हुई है। वे छह खण्ड हैं—जीवस्थान, खुद्दाबन्ध, बन्धस्वामित्वविचय, वेदना, वर्गणा और महाबन्ध।

१. जीवस्थानमें गुणस्थान और मार्गणास्थानोंका आश्रय लेकर सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व इन आठ अनुयोगद्वारोंसे तथा प्रकृतिसमुत्कीर्तना, स्थानसमुत्कीर्तना, तीन महादण्डक, जघन्यस्थिति, उत्कृष्ट स्थिति, सम्यक्त्वोत्पत्ति और गति-आगति इन नौ चूलिकाओंके द्वारा संसारी जीवकी विविध अवस्थाओंका वर्णन किया गया है।

२. कर्मका बन्ध करनेवाले जीवोंको बन्धक कहते हैं। दूसरे खण्डमें कर्मबन्धक जीवकी प्ररूपणा ग्यारह अनुयोगद्वारोंसे की गई है कि किस गति आदि मार्गणाके कौन-कौन जीव कर्मोंका बन्ध करते हैं। आदि।

३. तीसरे खण्डमें बन्धके स्वामियोंका विचार होनेसे बन्धस्वामित्वविचय नाम दिया गया है। इसमें गुणस्थानों और मार्गणास्थानोंके द्वारा सभी कर्मप्रकृतियोंके बन्धक स्वामियोंका विचार बहुत विस्तार से किया है।

४. ऊपर लिख आये हैं कि महाकर्मप्रकृतिप्राभृतके २४ अनुयोगद्वार हैं उनमेंसे जिन छह अनु-योगद्वारोंका कथन भूतबलि आचार्यने किया है उनमेंसे प्रथमका नाम कृति और दूसरेका वेदना है। इस खण्डमें वेदनाका विस्तारसे वर्णन होनेसे इसका नाम वेदना है।

५. वर्गणाखण्डमें स्पर्श, कर्म और प्रकृतिअनुयोगद्वारोंके साथ छठे बन्धन अनुयोगद्वारके अन्तर्गत बन्धनीयका अवलम्बन लेकर पुद्गलवर्गणाओंका विशेष कथन होनेसे इसे वर्गणा नाम दिया है।

इन्हीं पाँच खण्डों पर धवलाटीका है। महाकर्मप्रकृतिप्राभृतके जिन शेष अठारह अनुयोगद्वारोंका कथन भूतबलिने नहीं किया था वीरसेन स्वामीने अपने गुरुसे पढ़कर उन्हें लिखा और उसे सत्कर्म नाम देकर उक्त पाँच खण्डोंके साथ सम्बद्ध कर दिया। इस तरह षट्खण्डागम निष्पन्न हुआ।

३. षट्खण्डागम और प्रज्ञापना

भगवान महावीरके निर्वाणके पश्चात् गौतम गणधर, सुधर्मास्वामी और जम्बू स्वामी ये तीन अनुबद्ध केवली हुए। उसके पश्चात् पाँच श्रुतकेवली हुए। उनमें अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु थे। जम्बू स्वामीके पश्चात् श्रुतकेवली भद्रबाहु ही ऐसे व्यक्ति हैं जिन्हें दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही मानते हैं। इनके समय में बारह वर्षका दुर्भिक्ष पड़ा तो यह संघके साथ दक्षिण भारतकी ओर चले गये। वहीं उनका स्वर्गवास हुआ। उसी समय जैन सम्प्रदाय दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदायके रूपमें विभाजित हुआ। श्वेताम्बर मान्यताके अनुसार दुर्भिक्ष हटनेपर पाटलीपुत्रमें एक सम्मेलन हुआ उसमें ग्यारह अंगोंका संकलन किया गया। दृष्टिवादका संकलन नहीं हो सका, क्योंकि भद्रबाहुके सिवाय उसका कोई ज्ञाता नहीं था और वह उस सम्मेलनमें अनुपस्थित थे। तब स्थूलभद्रको भद्रबाहुके पास भेजा गया और उन्होंने उन्हें दृष्टिवादके कुछ अंश की वाचना दी, इत्यादि लम्बी कथा है। श्वेताम्बर परम्परामें ग्यारह अङ्ग, अङ्गबाह्य और उपांग रूप

आगमिक साहित्य पाया जाता है। वह सब वल्भीवाचनाके समय वीर निर्वाणसे लगभग एक हजार वर्ष पश्चात् देवर्द्धिगणिकी प्रधानतामें लिखा गया है। उसमें प्राचीन अंश भी है। दिगम्बर परम्परामें यह सब साहित्य नहीं है। यद्यपि बारह अङ्गोंके नामोंमें कोई अन्तर नहीं है। अङ्गबाह्य ग्रन्थोंके नाम भी मिलते-जुलते हैं। किन्तु उपांग-साहित्यका कोई निर्देश दिगम्बर साहित्यमें नहीं है। दिगम्बर परम्पराके अनुसार तो षट्खण्डागम और कसायपाहुड ये दो मूल आगमग्रन्थ ही ऐसे हैं जो दृष्टिवादके अंगभूत पूर्वोंके अंशसे संकलित किये गये हैं। इनमें कसायपाहुड गाथाबद्ध है और षट्खण्डागम गद्यसूत्रोंमें निबद्ध है, कुछ गाथाएँ भी हैं। दोनों परम्पराओंको भगवान महावीरका वारसा प्राप्त हुआ है। यही वजह है कि दोनों परम्पराओंके तात्विक और आचारविषयक चिन्तनमें बहुत कुछ अंशोंमें समानता है। फलतः अनेक ऐसी प्राचीन गाथाएँ हैं जो दोनों परम्पराओंके साहित्यमें मिलती हैं। उनके सम्बन्धमें यदि कोई ऐसा दावा करे कि इसे अमुकने अमुकसे लिया है तो यह कोरा भ्रम या मिथ्या सम्प्रदायाभिनिवेश है।

पिछले वर्षमें इसी तरहका 'प्रज्ञापना और षट्खण्डागम' शीर्षक एक लेख पं० दलसुख मालवणिया अहमदाबादने एक अंग्रेजी जर्नल[1]में प्रकाशित कराया था। उसमें प्रज्ञापना और षट्खण्डागमके कुछ कथनोंमें समानता तथा प्रज्ञापनाको तीसरी चौथी ईस्वी पूर्वका बतलाते हुए षट्खण्डागमको उसका ऋणी बतलाया है।

प्रज्ञापनामें ३६ पद हैं। कुछ पदोंका कथन षट्खण्डागमसे मिलता भी है। दो-तीन गाथाएँ भी दोनोंमें समान हैं किन्तु मात्र इतनेसे ही एकको दूसरेका ऋणी नहीं कहा जा सकता। जीव और कर्म ये दो ही मुख्य विवेच्य विषय हैं। प्रज्ञापनाका कथन जीवको केन्द्रमें रखकर किया गया है और षट्खण्डागमका कथन कर्मको केन्द्रमें रखकर किया गया है। प्रज्ञापनाके छत्तीस पदोंमें भी कर्म (२३), कर्म बन्धक (२४), कर्मवेदक (२५), वेदबन्धक (२६) वेदवेदक (२७) और वेदना (३५) पद हैं और षट्खण्डागममें तो वेदना, वर्गणा, महाबन्ध आदि नामोंके खण्ड ही हैं। प्रज्ञापनामें तो उन चर्चाओंका सामान्य-सा कथन है किन्तु षट्खण्डागमके सूत्र तो उस विषयमें गम्भीरतासे उतरे हुए हैं। किन्तु इससे यह नहीं कहा जा सकता कि षट्खण्डागमके कर्ताको प्रज्ञापनासे वह सब ज्ञान प्राप्त हुआ जो उसमें नहीं है। दोनों ग्रन्थोंकी स्टाईल बिल्कुल भिन्न है। प्रज्ञापना गद्यात्मक वाक्योंमें निबद्ध है षट्खण्डागम सूत्रशैलीमें निबद्ध है। गुणस्थान-मार्गणास्थानोंके द्वारा आठ अनुयोगोंको लेकर उसमें विवेचन है जो प्रज्ञापनामें नहीं है। यहाँ इतना स्थान नहीं है अन्यथा एक-एक विषयको लेकर तुलना करनेसे यह स्पष्ट हो जाता कि षट्खण्डागममें वर्णित अनेक विषयोंका प्रज्ञापनामें स्पर्श भी नहीं है।

यह हम ऊपर लिख आये कि महाकर्मप्रकृति प्राभृतको पढ़कर भूतबलिने षट्खण्डागमकी रचना की थी।

श्वेताम्बर परम्परामें एक 'कर्मप्रकृति' नामक ग्रन्थ है। उसमें आठ अनुयोग द्वारोंका निर्देश किया है—

> संतपयपरूवणया दव्वपमाणं च खेत फुसणं च।
> कालंतर च भावे अप्पाबहुयं च दाराई॥ ६८॥

सत्पदप्ररूपणा, द्रव्यप्रमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर भाव, अल्पबहुत्व ये अनुयोगद्वार हैं।

---

१. जर्नल आफ दी महाराजा सयाजीराव यूनिवर्सिटी आफ बड़ौदा, वोल्युम १९, नम्बर १-२। सितम्बर-दिसम्बर १९६९।

इसकी टीकामें लिखा है—

'अष्टानुयोगद्वाराणि कर्मप्रकृतिप्राभृतादीन् ग्रन्थान् सम्यक् परिभाव्य वक्तव्यानि। ते च कर्मप्रकृतिप्राभृतादयो ग्रन्था न सम्प्रति वर्तन्ते इति लेशतोऽपि दर्शयितुं न शक्यन्ते।'

अर्थात् ये आठ अनुयोगद्वार कर्मप्रकृतिप्राभृत आदि ग्रन्थोंका अनुशीलन करके कहने चाहियें। किन्तु वे कर्मप्रकृतिप्राभृत आदि ग्रन्थ वर्तमानमें नहीं हैं इसलिये लेशमात्र भी उनको दिखानेमें असमर्थ हैं।

इससे पहले 'गइ इंदिए एकाए' आदि चौदह मार्गणा गिनाई हैं। षट्खण्डागममें इन्हीं अनुयोग द्वारोंसे गत्यादि मार्गणाओंमें विस्तारसे कथन किया गया है क्योंकि महाकर्मप्रकृतिप्राभृतकी यही पद्धति थी, तदनुसार ही उसके संक्षिप्त रूपका निर्माण किया गया है।

यों तो भगवतीसूत्रके ८ वें शतकमें भी कर्मोंका कथन और बन्धन अनुयोगद्वारसे तुलना करनेपर कुछ अंश मिलता भी है और भगवतीसूत्रमें भी उपांग प्रज्ञापनाका नाम मिलता है। यह सब इतना गोरख-धन्धा है कि उसे साम्प्रदायिक अभिनिवेशसे सुलझाया नहीं जा सकता। उपांगके कर्ता कहे जानेवाले श्यामार्य-की भी ऐसी ही स्थिति है। अपने जैनसाहित्यके इतिहासकी पूर्व पीठिकामें अंगसाहित्यके सम्बन्धमें लिखा है। इसमें सन्देह नहीं है कि श्वेताम्बराचार्योंने चाहे किसी भी प्रकारसे अपने अंग साहित्यको सकलित करके सुरक्षित रखनेका जो प्रयत्न किया वह सराहनीय है। किन्तु उसमे जो खामियाँ हैं उन्हें नहीं भुलाया जा सकता। तीर्थक्षेत्रोंवाली नीतिसे साहित्यको बचाना चाहिये।

४. षट्खण्डागम और तत्त्वार्थसूत्र—तत्त्वार्थसूत्रके प्रथम अध्यायमें भी सत्संख्या आदि सूत्रमें षट्खण्डागमोक्त आठ अनुयोगद्वार गिनाये हैं और उनसे जीवादिको जाननेका उपदेश दिया है। यह षट्-खण्डागमके जीवस्थानके प्रारम्भमें गिनाये गये आठ अनुयोगद्वारोंके प्रभावका सूचक है। आगे हम बतलायेंगे कि तत्त्वार्थसूत्रकी रचना षट्खण्डागमसूत्रोंके आधारसे की गई है।

५. षट्खण्डागम और सर्वार्थसिद्धि—पूज्यपादने अपनी सर्वार्थसिद्धि नामक टीकामें तत्त्वार्थसूत्रके उक्त सत्संख्यासूत्रमें जो जीवद्रव्य विवेचन गति आदि मार्गणाओंमें आठ अनुयोगोंके द्वारा किया है वह जीव-स्थानका ऋणी है। पूज्यपाद स्वामीके सामने षट्खण्डागमकी उक्त टीकाओंमें-से कोई प्राचीन टीका भी हो सकती है। किन्तु जीवस्थानके सूत्रोंमें प्रतिपादित संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन आदिको ही पूज्यपाद स्वामीने संक्षेपमें निबद्ध किया है, यह तुलना करनेसे स्पष्ट हो जाता है।

६. षट्खण्डागम और तत्त्वार्थवार्तिक

आचार्य भट्टाकलंकदेवने अपने तत्त्वार्थवार्तिकमें शंका-समाधानमें कई स्थलोंपर जीवस्थानादिका तथा सत्प्ररूपणाका उल्लेख किया है और उन्हें आगम या आर्ष जैसे आदरणीय शब्दोंसे बोधित किया है। यथा—

१. 'आगमे हि जीवस्थानादौ सदादिष्वनुयोगद्वारेण आदेशवचने नारकाणामेवादौ सदादि-प्ररूपणा कृता।'—पृ० ७९।

२. एवं हि समयोऽवस्थितः सत्प्ररूपणायां कायानुवादे त्रसा नाम द्वीन्द्रियादारभ्य आ अयोग-केवलिनः।—पृ० १२७।

३. एवं ह्यार्षे उक्तम्—सासादनसम्यग्दृष्टिरिति को भावः? पारिणामिको भावः।—पृ० १११।

४. आह चोदकः जीवस्थाने योगभंगे सप्तविधकाययोगस्वामिप्ररूपणायाम्—पृ० १५३।

ये सब उल्लेख जीवस्थानके हैं। और जीवस्थानके उन उन प्रकरणोंमें देखे जा सकते हैं।

एक उद्धरण मनःपर्ययज्ञानको लेकर इस प्रकार हैं—

'आगमे ह्युक्तं-मनसा मनः परिच्छिद्य परेषां संज्ञादीन् जानाति

यह उद्धरण महाबन्ध (पृ० २४) से लिया गया है।

पाँचवें अध्यायमें सूत्र है 'बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ।' और श्वेताम्बर मान्य सूत्रपाठ है—'बन्धे समाधिकौ पारिणामिकौ,' इस पाठको आर्ष विरुद्ध बतलाते हुए अकलंकदेवने लिखा है—

'तदनुपपत्तिरार्षविरोधात् ॥ ४ ॥ स पाठो नोपपद्यते। कुतः? आर्षविरोधात्, एवं ह्युक्तमार्षे वर्गणायां बन्धविधाने नोआगमद्रव्यविकल्पे सादिवैस्रसिकबन्धनिर्देशे प्रोक्तः—विषमस्निग्धतायां विषमरूक्षतायां च बन्धः समस्निग्धतायां समरूक्षतायां च भेदः इति। तदनुसारेण च सूत्रमुक्तम्। 'गुणसाम्ये सदृशानां', समगुणानां बन्धप्रतिषेधात् बन्धः समः परिणामकः इत्यार्षविरोधिवचो न विद्वद्ग्राह्यम्।—पृ० ५००।

अर्थात् श्वेताम्बर परम्पराका पाठ आर्षविरुद्ध होनेसे ठीक नहीं है। वर्गणामें बन्धविधानके अन्तर्गत नोआगमद्रव्यबन्ध विकल्प-सादि वैस्रसिक बन्धनिर्देशमें कहा है—'विषमस्निग्धता विषमरूक्षतामें बन्ध और समस्निग्धता और समरूक्षतामें भेद होता है।' उसीके अनुसार 'गुणसाम्ये सदृशानाम्' सूत्र कहा है। इसलिये जब समगुणवालोंके बन्धका प्रतिषेध कर दिया तब बन्धमें 'सम भी परिणामक होता है, यह कथन आर्षविरोधी होनेसे विद्वानोंके द्वारा ग्राह्य नहीं है।' षट्खण्डागमके पंचम खण्ड वर्गणाके अन्तर्गत बन्धन-अनुयोगद्वारमें द्रव्यबन्धका निरूपण करते हुए लिखा है—

'जो सो थप्पो सादियविस्ससा बंधो णाम तस्स इमो णिद्देसो—वेमादा णिद्धदा वेमादा लुक्खदा बंधो ॥ ३२ ॥ समणिद्धदा समलुक्खदा भेदो ॥ ३३ ॥

इन्हीं दो सूत्रोंका संस्कृत रूपान्तर अकलंकदेवने दिया है और वे तत्त्वार्थसूत्रके कथनको तदनुगामी बतलाते हैं। नौवें अध्यायमें धर्मानुप्रेक्षाका कथन करते हुए तो सत्प्ररूपणाके सूत्रोंको ही संस्कृतमें अवतरित कर दिया है। इस तरह अकलंकदेव पूरे षट्खण्डागमके मर्मज्ञ थे और उन्होंने उसका अपने तत्त्वार्थवार्तिकमें उपयोग किया है।

७. षट्खण्डागमकी टीकाएँ

इन्द्रनन्दिके अनुसार कुन्दकुन्दपुरके पद्मनन्दि (कुन्दकुन्दाचार्य) षट्खण्डागमके आद्य तीन खण्डों-पर बारह हजार श्लोकप्रमाण परिकर्म नामक ग्रन्थ रचा। उसके बाद कितना ही काल बीतनेपर शाम-कुण्डाचार्यने महाबन्धको छोड़कर शेष पाँच खण्डोंपर प्राकृत, संस्कृत और कर्णाटक भाषाके मिश्रणमें पद्धति-रूप टीकाकी रचना की। उसके पश्चात् तुम्बुलूर ग्रामके वासी तुम्बुलूराचार्यने कर्णाटक भाषामें चूड़ामणि नामकी महती व्याख्या रची। तथा छठे खण्डपर सात हजार श्लोक प्रमाण पञ्जिका रची। उसके पश्चात् समन्तभद्रने संस्कृतमें टीका रची।

पुनः शुभनन्दि और रविनन्दि नामके मुनियोंसे भीमरथि और कृष्णमेखला नामकी नदियोंके मध्यमें स्थित उत्कलिका ग्रामके समीप मगणवल्ली ग्राममें वप्पदेव गुरुने सिद्धान्तका अध्ययन किया। उन्होंने छै खण्डोंमेंसे महाबन्धको हटाकर तथा शेष पाँच खण्डोंमें व्याख्याप्रज्ञप्तिको मिलाया और इस प्रकार निष्पन्न हुए छै खण्डोंपर तथा कषायप्राभृतपर साठ हजार श्लोक प्रमाण व्याख्याको प्राकृतमें लिखा तथा महाबन्धकी आठ हजार पाँच श्लोक प्रमाण व्याख्या लिखी।

श्रुतावतारके उक्त कथनसे सम्बद्ध श्लोक इस प्रकार हैं—

अपनीय महाबन्धं षट्खण्डाच्छेषपञ्चखण्डे तु।
व्याख्याप्रज्ञप्तिं च षष्ठं खण्डं च तत् संक्षिप्य ॥
षण्णां खण्डानामिति निष्पन्नानां तथा कषायाख्य-।
प्राभृतकस्य च षष्ठिसहस्रग्रन्थप्रमाणयुताम् ॥
व्यलिखत् प्राकृतभाषारूपां सम्यक्पुरातनव्याख्याम्।
अष्टसहस्रग्रन्थां व्याख्यां पञ्चाधिकां महाबन्धे ॥

अत: प्रोफेसर डा० हीरालालजीने षट् खं. प्रथम पुस्तककी अपनी प्रस्तावनामें जो टीकाका नाम व्याख्याप्रज्ञप्ति लिखा है उक्त श्लोकोंसे वह नहीं बैठता। व्याख्याप्रज्ञप्ति प्रथम श्लोकमें आता है। और तीसरे श्लोकमें प्राकृतभाषारूप पुरातन व्याख्या लिखनेका निर्देश है। फिर दूसरे श्लोकमें जो कहा है— 'इस प्रकार निष्पन्न हुए छै खण्डोंपर' इसीका तीसरे श्लोक से सम्बन्ध है। ये छै खण्ड कैसे निष्पन्न हुए ? व्याख्याप्रज्ञप्ति नामक छठे खण्डको उनमें मिलाया। अत: व्याख्याप्रज्ञप्ति बप्पदेवकृत टीकाका नाम नहीं होना चाहिये।

इसी तरहका कथन इन्द्रनन्दिने वीरसेनके सम्बन्धमें किया है। उन्होंने लिखा है—उसके पश्चात् कितना ही काल बीतनेपर सिद्धान्तके ज्ञाता चित्रकूटपुरवासी एलाचार्य हुए। वीरसेन गुरुने उनसे सकल सिद्धान्तका अध्ययन करके ऊपरके निबन्धन आदि आठ अधिकारोंको लिखा। फिर चित्रकूटसे आकर गुरुकी अनुज्ञासे वाटग्राममें आनतेन्द्रकृत जिनालयमें ठहरकर टीका रचनेका निर्देश करते हुए लिखा है—

व्याख्याप्रज्ञप्तिमवाप्य पूर्वषट्खण्डतस्ततस्तस्मिन्।
उपरितनबन्धनाद्य धिकारैरष्टादशविकल्पैः ॥
सत्कर्मनामधेयं षष्ठं खण्डं विधाय संक्षिप्य।
इति षण्णां खण्डानां ग्रन्थसहस्रैर्द्विसप्तत्या ॥
प्राकृतसंस्कृतभाषामिश्रां टीकां विलिख्य धवलाख्याम्।

पहलेके छ खण्डोंमेंसे व्याख्याप्रज्ञप्तिको प्राप्त करके फिर उसमें उपरितन निबन्धनादि अठारह अधिकारोंसे सत्कर्म नामक छठे खण्डको रचकर और उसे उनमें मिलाकर इस तरह छह खण्डोंकी बहत्तर हजार ग्रन्थप्रमाण प्राकृत-संस्कृतभाषामिश्रित धवला नामक टीका लिखी।

इसका स्पष्ट आशय यह है कि जैसे बप्पदेवने छह खण्डोंमेंसे महाबन्धको पृथक् करके शेष बचे पाँच खण्डोंमें व्याख्याप्रज्ञप्तिको मिलाकर छह खण्ड निष्पन्न किये थे और तब उनपर टीका लिखी थी। उसी तरह वीरसेन स्वामीने इन छह खण्डोंमेंसे व्याख्याप्रज्ञप्तिको अलग करके उसमें सत्कर्म नामक छठे खण्डको मिलाकर निष्पन्न हुए छह खण्डोंपर धवला टीकाकी रचना की।

यह सत्कर्म पन्द्रहवीं पुस्तकसे शुरू होता है। उसपर एक सत्कर्मपंजिका भी है जो उसीके साथ परिशिष्ट रूपमें छपी है। उसके प्रारम्भमें पंजिकाकारने लिखा है कि महाकर्मप्रकृतिप्राभृतके चौबीस अनुयोग हैं उनमें-से कृति और वेदनाका वेदना खण्डमें और स्पर्श, कर्म, प्रकृतिका वर्गणा खण्डमें कथन किया है। बन्धन अनुयोगद्वार बन्ध, बन्धनीय, बन्धक और बन्धविधान इन चार अवान्तर अनुयोगद्वारोंमें विभक्त है। इनमें-से बन्ध और बन्धनीय अधिकारोंकी प्ररूपणा वर्गणा खण्डमें, बन्धन अधिकारकी प्ररूपणा खुद्दाबन्ध नामक दूसरे खण्डमें, और बन्धविधानका कथन महाबन्ध नामक छठे खण्डमें है। शेष १८ अनियोग द्वारोंकी प्ररूपणा मूल षट्खण्डागममें नहीं है। किन्तु आचार्य वीरसेनने वर्गणाखण्डके अन्तिम सूत्रको देशाम-

र्पक मानकर उनकी प्ररूपणा धवलाके अन्तमें की है। उसीका नाम सत्कर्म है। इनका ज्ञान उन्होंने ऐलाचार्य गुरुसे प्राप्त किया था।

व्याख्याप्रज्ञप्ति

अब प्रश्न रहता है व्याख्याप्रज्ञप्तिका। इन्द्रनन्दिने लिखा है—

'व्यलिखित प्राकृतभाषारूपां सम्यक्पुरातन व्याख्याम्'

वप्पदेवने प्राकृतभाषारूप सम्यक्पुरातन व्याख्याको लिखा। यदि यह व्याख्या वप्पदेवकृत ही होती तो इसके साथ सम्यक्पुरातन पद लगानेकी क्या आवश्यकता थी। सम्यक्पुरातनका अर्थ होता है 'काफी प्राचीन'। हमें यह व्याख्याप्रज्ञप्तिका विशेषण प्रतीत होता है। व्याख्याप्रज्ञप्ति काफी प्राचीन व्याख्या होनी चाहिये। धवला टीकामें उसके दो निर्देश मिलते हैं। दूसरे निर्देशमें उससे षट्खण्डागमका मतभेद बतलाया है। लिखा है—

'एदेण वियाहपण्णत्तिसुत्तेण सह कहं ण विरोहो? ण, एदम्हादो तस्स पुधभूदस्स आइरियभेएण भेदमावण्णस्स एअत्ताभावादो'—षट्खं, पु० १०, पृ० २३८।

शंका—इस व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्रके साथ विरोध क्यों नहीं है?

समाधान—नहीं, इससे वह भिन्न है, आचार्यभेदसे भिन्नताको प्राप्त है, इन दोनोंमें एकपना नहीं हो सकता।

इसमें व्याख्याप्रज्ञप्तिके वचनोंको सूत्र कहा है और आचार्यभेदसे भिन्न कहा है। अतः यह व्याख्याप्रज्ञप्ति विचारणीय है। हो सकता है कि यह वही हो जिसका इन्द्रनन्दिने उल्लेख किया है और जो वीरसेन स्वामीको प्राप्त हुई थी। किन्तु वह षट्खण्डागमके सूत्रोंसे विरुद्ध अर्थका भी कथन करनेवाली है, यह स्पष्ट है। अकलंकदेवने अपने तत्त्वार्थराजवार्तिकमें भी दो स्थलोंमें २।४९।८ और ४।२६।५ में व्याख्याप्रज्ञप्तिदण्डकका उल्लेख किया है और दोनों ही स्थानोंमें षट्खण्डागमसे उसका भेद बतलाया है। यह विषय अनुसन्धेय है। अस्तु,

धवला टीका

धवला टीकामें व्याख्याप्रज्ञप्ति और परिकर्मके सिवाय इन्द्रनन्दिके द्वारा निर्दिष्ट किसी अन्य टीकाका निर्देशन नहीं है। ये दोनों ग्रन्थ धवलाकार वीरसेन स्वामीके सन्मुख उपस्थित थे। जैसा कि हम लिख आये हैं व्याख्याप्रज्ञप्तिका तो दो ही स्थानोंमें निर्देश है। किन्तु परिकर्मका तो अनेक स्थलोंपर निर्देश है और उसके मतोंको भी दिया गया है। किन्तु इन दो ग्रन्थोंके अतिरिक्त भी षट्खण्डागमसे सम्बद्ध अनेक सुत्तपोथियाँ तथा साहित्य उनके सामने वर्तमान था, यह धवलाके अवलोकनसे स्पष्ट हो जाता है। धवला एक आकर-ग्रन्थ है। उसमें विविध आगमिक चर्चाओंकी बहुतायत है और चर्चारसिकों तथा अन्वेषकोंके लिये वह एक अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थ है। जयधवलाकी प्रशस्तिमें आचार्य वीरसेनके शिष्य जिनसेनने लिखा है कि वीरसेनको देखकर मनीषियोंकी सर्वज्ञके अस्तित्व विषयक शंका दूर हो गई थी। उनका यह कथन धवला टीकासे यथार्थ ही प्रतीत होता है। यहाँ उसके कुछ चर्चनीय विषयोंका आभास मात्र कराया जाता है। धवलामें, उठाई गई शंकाएँ और उनके समाधान एक पृथक् ग्रन्थके रूपमें संकलित होने योग्य हैं। उनका यह शंका-समाधान षट्खण्डागमके मंगलाचरण णमोकार मंत्रकी व्याख्यासे ही प्रारम्भ हो जाता है। यथा—अरहन्तोंको पहले नमस्कार क्यों किया? आचार्यादिमें देवत्व कैसे है? उनके इस शंका-समाधानसे प्रकृत विषय एकदम स्पष्ट हो जाता है।

१. आजकल निश्चय और व्यवहारकी बहुत चर्चा है और प्रायः यह समझा जाता है कि ये नय केवल अध्यात्मसे ही सम्बद्ध हैं। किन्तु वीरसेन स्वामीने धवलामें भी यथास्थान इन नयोंके द्वारा प्रतिपादन किया है। यथा सम्यग्दर्शनका कथन करते हुए कहा है—

प्रशमसंवेगानुकम्पास्तिक्याभिव्यक्तिलक्षणंसम्यक्त्वम्। सत्येवमसंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्याभावः स्यादिति चेत् सत्यमेतत् शुद्धनये समाश्रीयमाणे। अथवा तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्। अस्य गमनिकोच्यते, आप्तागमपदार्थस्तत्त्वार्थस्तेषु श्रद्धानमनुरक्तता सम्यग्दर्शनमिति लक्ष्यनिर्देशः। कथं पौरस्त्येन लक्षणेनास्य लक्षणस्य न विरोधश्चेन्नैष दोषः, शुद्धाशुद्धनयसमाश्रयणात्। अथवा तत्त्वरुचिः सम्यक्त्वमशुद्धतरनयसमाश्रयणात्।'—पु० १, पृ० १५१।

प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्यकी अभिव्यक्ति जिसका लक्षण है वह सम्यग्दर्शन है।

शङ्का—इस प्रकार सम्यक्त्वका लक्षण माननेपर तो असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानका अभाव हो जायगा?

समाधान—शुद्ध नयका आश्रय करनेपर वह कथन सत्य है। अर्थात् शुद्धनयमें चतुर्थ गुणस्थानका अस्तित्व नहीं है। अथवा, तत्त्वार्थके श्रद्धानको सम्यग्दर्शन कहते हैं। इसका अर्थ यह है कि आप्त, आगम और पदार्थको तत्त्वार्थ कहते हैं और उनके विषयमें श्रद्धान अर्थात् अनुरक्तिको सम्यग्दर्शन कहते हैं। यहाँ सम्यग्दर्शन लक्ष्य है तथा आप्त, आगम और पदार्थका श्रद्धान लक्षण है।

शङ्का—पहले कहे हुए सम्यक्त्वके लक्षणके साथ इस लक्षणका विरोध क्यों नहीं है?

समाधान—यह दोष नहीं है क्योंकि शुद्ध और अशुद्ध नयका आश्रय लेकर उक्त दोनों लक्षण कहे गये हैं। पहला लक्षण शुद्ध नयसे है दूसरा अशुद्ध नयसे। अथवा अशुद्धतर नयका आश्रय लेनेपर तत्त्वरुचिको सम्यक्त्व कहते हैं।

इससे स्पष्ट है कि वीरसेन स्वामीके मतानुसार आगममें जहाँ शुद्धनयसे कथन है वहाँ अशुद्ध और अशुद्धतर नयसे भी कथन है। करणानुयोगका पारगामी भी बिना झिझकके यह स्वीकार करता है कि शुद्ध नयका अवलम्बन लेनेपर चतुर्थ गुणस्थान नहीं बनता। यह आगमश्रद्धा है।

२ इसी तरह आजकल कोई सिद्धान्ताभ्यासी अनन्तानुबन्धीको केवल सम्यग्दर्शनका ही घातक बतलाते हैं और कहते हैं सम्यग्दर्शनके साथ चतुर्थ गुणस्थानमें चारित्र नहीं होता। छठी पुस्तकमें चारित्रमोहनीयकी प्रकृतियोंको बतलाते हुए वीरसेन स्वामी अनन्तानुबन्धीके सम्बन्धमें लिखते हैं—

'एदे चत्तारि वि सम्मत्तचारित्ताणं विरोहिणो दुविहसत्तिसंजुत्तादो। तं कुदो णव्वदे? गुरुवदेसादो जुत्तीदो च। का एत्थ जुत्ती? उच्चदे, ण ताव एदे दंसणमोहणिज्जा, सम्मत्त-मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्तेहि चेव आवरियस्स सम्मत्तस्स आवरणे फलाभावादो। ण चारित्तमोहणिज्जा वि, अपच्चक्खाणावरणादीहि आवारिदचारित्तस्स आवरणे फलाभावादो। तदो एदेसिमभावो चेव। ण च अभावो सुत्तम्हि एदेसिमत्थित्तपदुप्पायणादो। तम्हा एदेसिमुदएण सासणगुणुप्पत्तीए अण्णहाणुववत्तीदो। सिद्धं दंसणमोहणीयत्तं चारित्तमोहणीयत्तं च। —पु० ६, पृ० ४२-४३।

ये चारों ही कषाय सम्यक्त्व और चारित्रकी विरोधी हैं क्योंकि वे सम्यक्त्व और चारित्रको घातने वाली दो प्रकारकी शक्तिसे युक्त हैं।

शङ्का—यह कैसे जाना कि वे दो प्रकारकी शक्तिसे युक्त हैं?

समाधान—गुरुके उपदेश और युक्तिसे जाना।

शङ्का—इसमें क्या युक्ति है कि अनन्तानुबन्धीकषायशक्ति दो प्रकारकी है ?

समाधान—ये अनन्तानुबन्धीकषाय न तो दर्शनमोहनीयरूप हैं क्योंकि सम्यक्त्वप्रकृति, मिथ्यात्वप्रकृति और सम्यक्मिथ्याप्रकृतिके द्वारा ही आवरण किये जाने वाले सम्यग्दर्शनके आवरण करनेमें कोई फल नहीं है। और न चारित्रमोहनीय रूप हैं क्योंकि अप्रत्याख्यानावरण आदिके द्वारा ढाँके गये चारित्रको ढाँकनेमें कोई फल नहीं है। अतः इन कषायोंका अभाव ही सिद्ध होता है। किन्तु अभाव तो नहीं है क्योंकि सूत्रमें उनका अस्तित्व बतलाया है। इसलिये इन कषायोंके उदयसे सासादन गुणस्थानकी उत्पत्ति अन्यथा बन नहीं सकती, इससे सिद्ध होता कि अनन्तानुबन्धी दर्शनमोहनीय भी है और चारित्रमोहनीय भी है।

उक्त समाधानमें जो यह युक्ति दी है कि सासादन गुणस्थानकी उत्पत्ति अन्यथा नहीं हो सकती इस लिये अनन्तानुबन्धी उभयघाती है इसको स्पष्ट करनेके लिये प्रथम पुस्तकमें आगत सासणसम्माइट्ठी ॥१०॥ सूत्रकी धवलाके आवश्यक अंशको नीचे उद्धृत किया जाता है—

'अथ स्यान्न मिथ्यादृष्टिरयं मिथ्यात्वकर्मणा उदयाभावात्, न सम्यग्दृष्टिः सम्यग्रुचेरभावात्, न सम्यग्मिथ्यादृष्टिरुभयविषयरुचेरभावात्। न च चतुर्थी दृष्टिरस्ति सम्यगसम्यगुभयदृष्ट्या लम्बन वस्तुव्यतिरिक्तवस्त्वनुपलम्भात्। ततोऽसन् एष गुण इति न, विपरीताभिनिवेशतोऽसदृष्टित्वात्। तर्हि मिथ्यादृष्टिर्भवत्वयं नाऽस्य सासादनव्यपदेश इति चेन्न, सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रप्रतिबन्ध्यनन्तानुबन्ध्युदयोत्पादितविपरीताभिनिवेशस्य तत्र सत्वाद् भवति मिथ्यादृष्टिरपितु मिथ्यात्वकर्मोदयजनितविपरीताभिनिवेशाभावात् न तस्य मिथ्यादृष्टिव्यपदेशः किन्तु सासादन इति व्यपदिश्यते। किमिति मिथ्यादृष्टिरिति न व्यपदिश्यते चेन्न; अनन्तानुबन्धिनां द्विस्वभावत्वप्रतिपादनफलत्वात्। न च दर्शनमोहनीयस्योदयादुपशमात् क्षयात् क्षयोपशमाद्वा सासादनपरिणामः प्राणिनामुपजायते येन मिथ्यादृष्टिः सम्यग्दृष्टिः सम्यग्मिथ्यादृष्टिरिति चोच्येत। यस्माच्च विपरीताभिनिवेशोऽभूदनन्तानुबन्धिनो न तद्दर्शनमोहनीयं तस्य चारित्रावरणोदयत्वात्। तस्योभयप्रतिबन्धकत्वादुभयव्यपदेशो न्याय्य इति चेन्न इष्टत्वात्। सूत्रे तथाऽनुपदेशोऽप्यर्पितनयापेक्षः। पृ० १६३-१६५।

शङ्का—सासादनगुणस्थानवाला जीव मिथ्यात्वकर्मका उदय न होनेसे मिथ्यादृष्टि नहीं है समीचीन-रुचिका अभाव होनेसे सम्यग्दृष्टि भी नहीं है। तथा सम्यक्त्व और मिथ्यात्व दोनोंको विषय करनेवाली रुचि-का अभाव होनेसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि भी नहीं है। इनके सिवाय कोई चौथी दृष्टि नहीं है क्योंकि समीचीन, असमीचीन और उभयरूप दृष्टिके आलम्बनभूत वस्तुके अतिरिक्त वस्तु नहीं पाई जाती। इसलिये सासादन नामक गुणस्थान नहीं है ?

समाधान—ऐसा नहीं है क्योंकि सासादन गुणस्थानमें विपरीत अभिनिवेश रहता है इसलिये उसे असमीचीन दृष्टि ही समझना चाहिये।

शङ्का—यदि ऐसा है तो उसे मिथ्यादृष्टि ही कहना चाहिये, सासादन नाम देना उचित नहीं है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सम्यग्दर्शन और चारित्रका प्रतिबन्ध करनेवाली अनन्तानुबन्धीकषाय-के उदयसे उत्पन्न हुआ विपरीत अभिनिवेश दूसरे गुणस्थानमें पाया जाता है। इसलिये वह मिथ्यादृष्टि है फिर भी मिथ्यात्वकर्मके उदयसे उत्पन्न हुआ विपरीत अभिनिवेश सासादनमें नहीं है इसलिये उसे मिथ्या-दृष्टि न कहकर सासादन कहते है।

शङ्का—जब वह मिथ्यादृष्टि है तो उसे मिथ्यादृष्टि क्यों नहीं कहते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सासादनगुणस्थानको पृथक् कहनेसे ही यह फलित होता है कि अनन्तानुबन्धीकषायमें सम्यक्त्व और चारित्रको घातनेका स्वभाव है। सासादनगुणस्थान न तो दर्शनमोहके उदयसे होता है जिससे उसे मिथ्यादृष्टि कहा जाये, न उसके उपशम, क्षय, और क्षयोपशमसे होता है जिससे उसे सम्यग्दृष्टि या सम्यक्मिथ्यादृष्टि कहा जाये। और जिस अनन्तानुबन्धीकषायके उदयसे विपरीत अभिनिवेश हुआ वह दर्शनमोहनीय नहीं है चारित्रमोहनीय है।

शंका—जब अनन्तानुबन्धी सम्यक्त्व और चारित्र दोनोंकी प्रतिबन्धी है तो उसे उभय प्रतिबन्धी नाम देना चाहिये ?

समाधान—यह तो हमें इष्ट ही है अर्थात् अनन्तानुबन्धीको सम्यक्त्व और चारित्र दोनोंका प्रतिबन्धी माना ही है। किन्तु सूत्रमें विवक्षित नयकी अपेक्षा उस प्रकारका कथन नहीं किया। इस शंका-समाधानसे यह स्पष्ट होता है कि अनन्तानुबन्धो सम्यक्त्व और चारित्र दोनोंका घात करती है और उसके उपशमादि होनेपर सम्यक्त्वके साथ चारित्रका अंश भी प्रकट होता है किन्तु चतुर्थ गुणस्थानमें उसकी मुख्यता न होनेसे विवक्षा नहीं है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि सिद्धान्तमें कहाँ, कौन कथन, किस अपेक्षासे किया गया है इस नयविवक्षाको दृष्टिमें रखना आवश्यक है अन्यथा अर्थका अनर्थ हो सकता है। इस तरहकी सैद्धान्तिक चर्चाओंसे धवला टीका भरी हुई है। कहीं कहीं उसमें ऐसे कथन हैं जो अन्यत्र कथनसे भिन्न जाते हैं। जैसे उसमें श्रेणिमें धर्म्यध्यान बतलाया है। लिखा है—असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत, उपशामक और क्षपक, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय जीवोंके धर्म्यध्यानकी प्रवृत्ति होती है ऐसा जिनदेवका उपदेश है। इससे जाना जाता है कि धर्म्यध्यान कषायसहित जीवोंके होता है (पु० १३, पृ० ७४) तत्त्वार्थसूत्र तथा उसके टीकाग्रंथोंमें सर्वत्र श्रेणिमें शुक्लध्यान बतलाया है। १३वीं पुस्तकमें कर्म अनियोगद्वारके अन्तर्गत तपोकर्म प्ररूपणामें ध्यानका विस्तारसे वर्णन है।

इसी तरह इसी पुस्तकके प्रकृति अनुयोगद्वारमें कथित ज्ञानावरण कर्मकी प्रकृतियोंका व्याख्यान करते हुए धवलामें पांचों ज्ञानोंके और उनके भेद-प्रभेदोंकी बड़ी विस्तारसे चर्चा की है। ज्ञानकी इतनी विस्तृत चर्चा अन्यत्र देखनेमें नहीं आती। इस तरह धवला टीकामें बहुत विषय भरा हुआ है। इस प्रकार ये प्रकृत ग्रन्थके सम्बन्धमें ज्ञातव्य बातें हैं।

—सम्पादक

विषय-सूची

●

श्रीमत्पुष्पदन्ताचार्यविरचित

षट्खण्डागम-सत्प्ररूपणासूत्र

हिन्दी विवेचनसहित

आचार्य पुष्पदन्त सत्प्ररूपणाका आरम्भ करते हुए मंगलसूत्र कहते हैं—

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व-साहूणं ॥१॥

अरिहंतोको नमस्कार हो, सिद्धोंको नमस्कार हो, आचार्योंको नमस्कार हो, उपाध्यायोंको नमस्कार हो और लोकमें सब साधुओंको नमस्कार हो।

शङ्का—अरिहंत किसे कहते हैं?

समाधान—'अरि' अर्थात् शत्रुओंके 'हनन' अर्थात् नाश करनेसे 'अरिहन्त' संज्ञा प्राप्त होती है।

शङ्का—अरि कौन है?

समाधान—नरकगति, तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति और देवगतिमें होनेवाले सब दुःखोंका मूल कारण मोह है। अतः मोहको 'अरि' अर्थात् शत्रु कहा है।

शङ्का—अकेले मोहको ही 'अरि' मान लेनेसे बाकीके सात कर्म व्यर्थ हो जायेंगे?

समाधान—बाकीके सब कर्म मोहके ही अधीन हैं। मोहके बिना शेष कर्म अपने-अपने कार्यको करनेमें असमर्थ पाये जाते हैं, अतः सच्चा 'अरि' मोह ही है।

शङ्का—मोहके नष्ट हो जानेपर भी कितने ही काल तक शेष कर्मोंकी सत्ता रहती है, इसलिये उन्हें मोहके अधीन मानना ठीक नहीं है?

समाधान—मोहरूप अरिके नष्ट हो जानेपर शेष कर्मोंमें जन्म-मरणकी परम्परारूप संसारको उत्पन्न करनेकी शक्ति नहीं रहती। अतः उसका होना न होनेके बराबर है। अथवा ज्ञानावरण, दर्शनावरण और मोहनीय कर्मोंके नाश करनेसे 'अरिहन्त' संज्ञा प्राप्त होती है।

शङ्का—केवल तीन कर्मोंके ही विनाशका कथन क्यों किया है?

समाधान—इन तीनों कर्मोंके नाश हो जानेपर शेष कर्मोंका नाश अवश्य हो जाता है। अतः उनके नाशसे 'अरिहन्त' संज्ञा प्राप्त होती है।

अथवा 'रहस्य' के अभावसे भी 'अरिहन्त' संज्ञा प्राप्त होती है। रहस्य अन्तरायकर्मको कहते हैं। अन्तरायकर्मका नाश शेष तीन घातियाँ कर्मोंके नाशका अविनाभावी है। तथा अन्तरायकर्मका नाश होनेपर अघातियाकर्म गले हुए बीजकी तरह शक्तिहीन हो जाते हैं।

शङ्का—सिद्ध किन्हें कहते हैं?

समाधान—जिनके ज्ञानावरण आदि आठों कर्म नष्ट हो चुके हैं उन्हें सिद्ध कहते हैं।

शङ्का—सिद्ध और अरिहन्तोंमें क्या भेद है?

समाधान—आठों कर्मोंको नष्ट करनेवाले सिद्ध होते हैं, और चार घातिया कर्मोंको नष्ट करनेवाले अरिहन्त होते हैं।

शङ्का—चार घातिया कर्मोंके नष्ट हो जानेपर अरिहन्तोंकी आत्माके समस्त गुण प्रकट हो जाते हैं, अतः सिद्धों और अरिहन्तोंमें गुणोंकी अपेक्षा कोई भेद नहीं हो सकता ?

समाधान—अरिहन्तोंके अघातिया कर्मोंका उदय और सत्त्व पाया जाता है, अतः दोनोंमें गुणोंकी अपेक्षा भी भेद है।

शङ्का—यद्यपि अरिहन्तोंके अघातिया कर्मोंका उदय और सत्त्व है किन्तु शुक्लध्यानरूपी अग्निके द्वारा वे अघातिया कर्म अधजलेसे होनेके कारण अपना कार्य करनेमें समर्थ नहीं हैं ?

समाधान—ऐसा नहीं है; क्योंकि यदि अरिहन्तके आयु आदि कर्म अपना-अपना कार्य करनेमें असमर्थ माने जायेंगे तो अरिहन्तका शरीर छूट जाना चाहिये। परन्तु आयु पूरी होने तक शरीर नहीं छूटता, इसलिये आयु आदि शेष कर्मोंका कार्य करना सिद्ध है।

शङ्का—कर्मोंका काम तो चौरासी लाख योनियोंमें भ्रमण करना है। वह काम अघातिया कर्मोंके रहनेपर भी अरिहन्तके नहीं पाया जाता। तथा अघातिया कर्म आत्माके अनुजीवी गुणोंका घात करनेमें असमर्थ हैं, इसलिये अरिहन्त और सिद्ध परमेष्ठीमें गुणोंकी अपेक्षा भेद मानना ठीक नहीं है ?

समाधान—तो फिर सलेपता और निर्लेपताकी अपेक्षा अरिहन्तों और सिद्धोंमें भेद सिद्ध है सिद्ध परमेष्ठी आठों कर्मोंसे रहित होनेके कारण निर्लेप हैं, जब कि अरिहन्त परमेष्ठी सलेप हैं; क्योंकि उनके चार घातिया कर्म पाये जाते हैं।

शङ्का—आचार्य किन्हें कहते हैं ?

समाधान—जो दर्शन, ज्ञान, चरित्र, तप और वीर्य इन पाँच आचारोंका स्वयं आचरण (पालन) करते हैं और दूसरे साधुओंसे आचरण कराते हैं, उन्हें आचार्य कहते हैं। वे ग्यारह अंगके अथवा कम-से-कम आचारांगके धारी होते हैं। स्वसमय और परसमयमें पारंगत होते हैं, मेरुके समान निश्चल और पृथिवीके समान सहनशील होते हैं, निर्दोष रीतिसे छह आवश्यकोंका पालन करते हैं, सौम्यमूर्ति और अन्तरंग बहिरंग परिग्रहसे रहित होते हैं, तथा संघके संग्रह और निग्रहमें कुशल होते हैं।

शङ्का—उपाध्याय परमेष्ठी किन्हें कहते हैं ?

समाधान—जो साधु चौदह पूर्वोंका अवगाहन करके मोक्षमार्गमें स्थित होते हैं और मोक्षके इच्छुक मुनियोंको उपदेश देते हैं उनको उपाध्याय परमेष्ठी कहते हैं। वे संघके संग्रह और निग्रहको छोड़कर आचार्यके अन्य समस्त गुणोंसे युक्त होते हैं।

शङ्का—साधु किन्हें कहते हैं ?

समाधान—जो आत्मस्वरूपकी साधना करते हुए पाँच[1] महाव्रतोंको धारण करते हैं, तीन[2]

---

१. अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पाँच महाव्रत हैं।

२. मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति ये तीन गुप्तियाँ हैं।

गुप्तियोंसे सुरक्षित हैं, अठारह हजार शीलके भेदोंको और चौरासी लाख उत्तरगुणोंको पालते हैं वे साधु परमेष्ठी हैं। वे सिंहके समान पराक्रमी, हाथीके समान स्वाभिमानी, बैलके समान भद्र, मृगके समान सरल, पशुके समान गोचरीवृत्ति करनेवाले, पवनके समान निःसंग, सूर्यके समान तेजस्वी, सागरके समान गम्भीर, सुमेरुके समान अकम्प, चन्द्रमाके समान शान्तिदायक और पृथ्वीके समान सहनशील होते हैं।

विशेष—इस मंत्रमें जो 'सर्व' और 'लोक' पद हैं, वे अन्तदीपक हैं। अतः उन्हें प्रत्येक नमस्कारपदके साथ जोड़ लेना चाहिये। यथा—लोकमें रहनेवाले सब अरिहन्तोंको नमस्कार हो, सब सिद्धोंको नमस्कार हो, इत्यादि।

शंका—सब कर्मोंसे रहित सिद्ध परमेष्ठीके होते हुए अघातिया कर्मोंसे युक्त अरिहन्तोंको पहले नमस्कार क्यों किया ?

समाधान—अरिहन्त परमेष्ठीके उपदेशसे ही सबसे अधिक गुणवाले सिद्धोंमें सबसे अधिक श्रद्धा उत्पन्न होती है। यदि अरिहन्त परमेष्ठी न होते तो हम लोगोंको देव, शास्त्र और गुरुका यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता था। इसलिये उपकारकी अपेक्षा पहले अरिहन्तोंको नमस्कार किया है।

शङ्का—सर्वज्ञ, वीतराग और हितोपदेशीको ही जैनधर्ममें सच्चा देव कहा है। तीर्थङ्कर भगवान महावीर कर्मकलङ्कसे यदि रहित थे तो वे अशरीर होंगे और शरीररहित होनेसे उनका उपदेश नहीं बन सकता। यदि वे कर्मकलंकसे सहित थे तो वे सच्चे देव नहीं कहे जा सकते और इसलिये उनका उपदेश आगम नहीं कहा जा सकता। क्योंकि जो देव नहीं है यदि उसके वचनको भी आगम माना जायेगा तो धूर्त पुरुषोंके वचनोंको भी आगम कहा जाने लगेगा ?

समाधान—जैनधर्ममें अरहन्तोंको समस्त कर्मकलंकसे रहित तो नहीं माना है। किन्तु चार घातिया कर्मोंसे रहित माना है। चार घातिया कर्म ही सब बुराइयोंकी जड़ हैं, उन्हींसे देवत्वका विनाश होता है। अतः अरहंत अवस्थाको प्राप्त भगवान महावीरके चार घातिकर्मोंका अभाव होनेसे देवत्वका अभाव नहीं माना जा सकता।

शङ्का—अरिहन्त अवस्थाको प्राप्त जीवोंके चार घातिया कर्म नहीं होते तो मत होओ, किन्तु चार अघातिया कर्म तो होते हैं, तब वह सच्चे देव कैसे हो सकते हैं ?

समाधान—चार अघातिया कर्म देवत्वके विरोधी नहीं हैं। यदि वे देवत्वके विरोधी होते तो उनको अघातिया नहीं कहा जाता। उनके 'अघातिया' नामसे ही यह स्पष्ट है कि वे देवत्वके विरोधी नहीं हैं। इसका खुलासा इसप्रकार है—अरिहन्त परमेष्ठी मोहसे रहित होते हैं। अतः नाम, आयु और गोत्रके निमित्तसे उनमें राग और द्वेष उत्पन्न नहीं हो सकते। इसलिये नामकर्म, आयु-कर्म और गोत्रकर्म बुराईयोंके कारण नहीं हैं। रहा वेदनीय कर्म, सो चार घातिया कर्मोंकी सहायता से ही वेदनीय कर्म दुःख उत्पन्न करता है। परन्तु अरहन्तके चार घातिया कर्म नहीं है, अतः जैसे पानी और मिट्टीकी सहायताके बिना बीज अपना काम नहीं कर सकता, वैसे ही घातिया कर्मोंके बिना वेदनीय भी अपना कार्य नहीं करता। यदि घातिया कर्मोंकी सहायताके बिना भी वेदनीय कर्म दुःख देनेमें समर्थ हो तो केवलीके रत्नत्रयकी बाधारहित प्रवृत्ति नहीं हो सकती; क्योंकि वेदनीय कर्मके

निमित्तसे भूख-प्यासकी बाधा होनेपर अरहन्तको भोजन और जलकी तृष्णा होना स्वाभाविक है और ऐसा होनेसे वह मोही ठहरते हैं।

शङ्का—अरहन्त तृष्णावश भोजन नहीं करते, किन्तु ज्ञान, संयम और ध्यानके लिये भोजन करते हैं ?

समाधान—ऐसा कहना भी उचित नहीं है। इसका खुलासा इस प्रकार है—अरहन्त ज्ञानकी प्राप्तिके लिये भोजन नहीं करते; क्योंकि उन्होंने केवलज्ञानको प्राप्त कर लिया है और केवलज्ञानसे बडा कोई दूसरा ज्ञान है नहीं, जिसकी प्राप्तिके लिये वे भोजन करें। संयमके लिये भी वे भोजन नहीं करते; क्योंकि यथाख्यात संयमकी प्राप्ति हो चुकी है। इसी तरह ध्यानके लिये भी वे भोजन नहीं करते; क्योंकि उन्होंने तीनों लोकोंको पूरी तरहसे जान लिया है, इसलिए उनके ध्यान करने योग्य कोई पदार्थ ही नहीं रहा। अतः भोजन करनेका कोई कारण न रहनेसे भगवान् भोजन नहीं करते। यदि वे भोजन करते हैं तो यही मानना पड़ता है कि संसारी जीवोंके समान बल, आयु, स्वाद और सुखके लिये ही वे भोजन करते हैं। और ऐसा मानने पर वे मोही ठहरते हैं और मोही होने पर उन्हें केवलज्ञानकी उत्पत्ति नहीं हो सकती।

शङ्का—केवलज्ञानसे रहित जीवके वचनोंको आगम माननेमें क्या हानि है ?

समाधान—ऐसा माननेपर राग, द्वेष और मोहसे कलंकित व्यक्तियोंमें सत्यताका अभाव होनेसे उनके वचन आगम नहीं कहे जा सकेंगे। और आगमके अभावमें रत्नत्रयकी प्रवृत्ति नहीं बनेगी, जिससे धर्मतीर्थका उच्छेद हो जायेगा। अतः शरीरगत समस्त दोषोंसे रहित और क्षायिक सम्यक्त्व, केवलज्ञान, अनन्तवीर्य आदि गुणोंसे युक्त तीर्थङ्कर भगवानके द्वारा उपदिष्ट आगम प्रमाण है।

शङ्का—भगवान[1] महावीरने धर्मतीर्थका उपदेश कहाँ दिया ?

समाधान—जब राजा श्रेणिक अपनी चेलना रानीके साथ पृथिवीका शासन करता था तब मगध देशके राजगृह नगरकी नैऋत्य दिशामें स्थित विपुलाचलपर भगवान महावीरने धर्मतीर्थका उपदेश दिया।

शङ्का—किस कालमें धर्मतीर्थका उपदेश दिया ?

समाधान—चौथे कालमें पन्द्रह दिन और आठ माह अधिक पचहत्तर वर्ष बाकी रहने पर आसाढ़ शुक्ला छठके दिन, बहत्तर वर्षकी आयु लेकर भगवान महावीर गर्भमें आये। उन बहत्तर वर्षोंमेंसे तीस वर्ष तक वे कुमार अवस्थामें घरमें रहे, फिर दीक्षा लेकर बारह वर्ष तक तप किया। उसके बाद तीस वर्ष तक केवलज्ञानी अवस्थामें रहे। अतः पचहत्तर वर्ष, आठ माह और १५ दिन-मेंसे कुमार कालके तीस वर्ष, दीक्षा कालके बारह वर्ष कम कर देने पर, चौथे कालमें तेतीस वर्ष आठ माह और १५ दिन शेष रहनेपर भगवान महावीरको केवलज्ञान हुआ। इसमेंसे छियासठ दिन (२ माह ६ दिन) कम कर देनेपर चतुर्थकालमें तेतीस वर्ष, ६ माह और नौ दिन शेष रहनेपर भगवान महावीरने धर्मतीर्थका उपदेश दिया।

शङ्का—छियासठ दिन किसलिये कम किये गये ?

---

१. जयध०, भा० १, पृ० ७३ से।

समाधान—भगवान् महावीरको केवलज्ञान उत्पन्न हो जानेपर भी छियासठ दिन तक उनका उपदेश नहीं हो सका था, क्योंकि कोई गणधर नहीं था। ऐसा नियम है कि जिसने अपने (तीर्थङ्कर के) पादमूलमें महाव्रत धारण किये हों, ऐसे पुरुषके बिना दिव्यध्वनि (तीर्थङ्करकी वाणी) नहीं खिरती।

शङ्का—तब गणधरकी प्राप्ति कैसे हुई ?

समाधान—उस समय वेद-वेदांगमें पारंगत एक शीलवान् श्रेष्ठ ब्राह्मण था। उसका नाम इन्द्रभूति गौतम था। सौधर्मेन्द्र उसके पास गया। और उसके सामने कुछ प्रश्न रखे। उत्तर न दे सकने पर, अभिमानमें आकर वह ब्राह्मण सौधर्मेन्द्रके साथ उसके गुरु महावीरसे शास्त्रार्थ करनेके लिये चल दिया। दूरसे मानस्तम्भको देखते ही उसका मान जाता रहा। और भगवान महावीरके दर्शन करनेपर उसके भाव अत्यन्त विशुद्ध हो गये। उसने जिनेन्द्र महावीरकी तीन प्रदक्षिणाएँ देकर उन्हें पंचांगसे नमस्कार किया और तत्काल जिनदीक्षा धारण करली। उसके अग्निभूति और वायुभूति नामक दोनों भाइयोंने भी उसीका अनुसरण किया। दीक्षा लेनेके पश्चात् एक मुहूर्तके भीतर ही इन्द्रभूति गणधरके समस्त लक्षणोंसे युक्त हो गया और भगवान महावीरके मुखसे निकलनेवाले बीजपदोंको समझने योग्य हो गया। तब श्रावण कृष्णा पड़वाके पूर्वाह्नमें भगवानकी प्रथम देशना हुई। और इन्द्रभूति गौतम गणधरने उसे बारह अंगोंमें निबद्ध किया। अतः भावश्रुत और अर्थपदोंके कर्ता भ० महावीर हैं तथा द्रव्यश्रुतके कर्ता गौतम गणधर हैं। इस तरह गौतम गणधरसे ग्रन्थरचना हुई।

शङ्का—गौतम गणधरके पश्चात् श्रुतावतार कैसे हुआ ?

समाधान—गौतम गणधरने बारह अंग और चौदह पूर्वोका ज्ञान लोहाचार्य उपनाम सुधर्मा स्वामीको दिया। सुधर्माचार्यने जम्बूस्वामीको दिया। गौतम स्वामी, लोहाचार्य और जम्बूस्वामी ये तीनों ही सकलश्रुतके पारगामी अन्तमें केवलज्ञानको प्राप्त करके मुक्त हुए। इसके बाद विष्णु, नन्दिमित्र, अपराजित, गोवर्धन और भद्रबाहु ये पाँचों ही आचार्य क्रमसे चौदह पूर्वके धारी हुए। इनके पश्चात् विशाखाचार्य, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जयाचार्य, नागाचार्य, सिद्धार्थदेव, धृतिसेन, विजयाचार्य, बुद्धिल, गंगदेव और धर्मसेन ये ग्यारह महापुरुष ग्यारह अंग और दस पूर्वोके धारक तथा शेष चार पूर्वोके एकदेशके धारक क्रमसे हुए। इसके बाद नक्षत्राचार्य, जयपाल, पाण्डुस्वामी, ध्रुवसेन, कंसाचार्य ये पाँचो आचार्य ग्यारह अंगों और चौदह पूर्वोके एकदेशके धारक क्रमसे हुए। इसके बाद सुभद्र, यशोभद्र, यशोबाहु, और लोहार्य ये चारों आचार्य सम्पूर्ण आचारांगके धारक और शेष अंग और पूर्वोके एकदेशके धारक हुए। इसके बाद सभी अंगों और पूर्वोका एकदेश आचार्यपरम्परासे आता हुआ आचार्य धरसेनको प्राप्त हुआ। एकबार आचार्य धरसेन सौराष्ट्र देशके गिरिनगरकी चन्द्रगुफामें निवास करते थे। उन्हें भय हुआ कि मेरे बाद श्रुतका विच्छेद हो जायगा। उस समय दक्षिणापथके आचार्य किसी धर्मोत्सवके निमित्तसे महिमा नगरीमें एकत्र हुए थे। आचार्यधरसेनने उनके पास एक पत्र भेजा। पत्रसे धरसेनाचार्यके आशयको भलीभांति जानकर उन आचार्योंने शास्त्रके अर्थको ग्रहण और धारण करनेमें समर्थ दो साधुओंको आन्ध्रदेशकी वेणा नदीके तटसे आचार्य धरसेनके पास भेजा। धरसेनने रात्रिके पिछले पहरमें स्वप्न देखा कि दो श्वेत बैलोंने आकर उन्हें नमस्कार किया है। उसी दिन उन दोनों साधुओंने धरसेनके पादमूलमें पहुँचकर प्रणाम

किया। दो दिन विश्राम करनेके पश्चात् तीसरे दिन उन दोनोंने आचार्य धरसेनसे निवेदन किया कि अमुक कार्यसे हम दोनों आपकी सेवामें उपस्थित हुए हैं। साधुओंको आशीर्वाद देकर धरसेनने विचार किया कि स्वच्छन्दचारियोंको विद्या देना खतरनाक है। अतः उन्होंने उनकी परीक्षा लेनेका निश्चय किया। उन्होंने उन दोनों साधुओंको दो विद्याएँ सिद्ध करनेके लिये दीं। उनमेंसे एकमें अधिक अक्षर थे, और दूसरीमें हीन अक्षर थे। जब उनको विद्याएँ सिद्ध हो गईं तो उन्होंने देखा कि विद्याकी अधिष्ठात्री देवताओंमेंसे एकके दाँत बाहर निकले हुए हैं और दूसरी कानी है। दोनों साधु मंत्रसम्बन्धी व्याकरणशास्त्रमें निपुण थे। अतः उन्होंने दोनों मंत्रोंको शुद्ध करके फिरसे सिद्ध किया, जिससे वे दोनों विद्या देवता अपने स्वाभाविक सुन्दररूपमें दृष्टिगोचर हुईं। तब उन्होंने धरसेनसे समस्त वृत्तान्त निवेदन किया। सन्तुष्ट होकर धरसेनने उन्हें पढ़ाना प्रारम्भ किया। आसाढ़ शुक्ला एकादशीके पूर्वाह्नमें ग्रन्थ समाप्त हुआ। दोनों साधुओंके विनयपूर्वक विद्याभ्यासकी समाप्तिसे सन्तुष्ट होकर भूतजातिके व्यन्तरदेवोंने उनमेंसे एककी खूब पूजा की। उसे देखकर धरसेनने उनका नाम 'भूतबलि' रख दिया। दूसरे साधुकी अस्तव्यस्त दन्तपंक्तिको उन देवोंने ठीक कर दिया, इससे धरसेनने उनका नाम 'पुष्पदन्त' रक्खा। ग्रन्थ समाप्त होते ही आचार्य धरसेनने उसी दिन उन साधुओंको वहाँसे विदा कर दिया। दोनोंने अंकलेश्वरमें आकर वर्षाकाल बिताया। उसके बाद आचार्य पुष्पदन्त तो जिनपालितको देखकर तथा उसे अपने साथ लेकर वनवास देशको चले गये और भूतबलि द्रमिल देशको चले गये। उसके बाद पुष्पदन्त आचार्यने जिनपालितको दीक्षा देकर बीस प्ररूपणाओंको लिये हुए सत्प्ररूपणाके सूत्र बनाये और उन्हें जिनपालितको पढ़ाकर आचार्य भूतबलिके पास भेजा। जिनपालितसे सत्प्ररूपणाके सूत्रोंको पाकर तथा आचार्य पुष्पदन्तको अल्पायु जानकर भूतबलिने महाकर्मप्रकृतिप्राभृतका विच्छेद होनेके भयसे द्रव्यप्रमाणानुगमको आदि लेकर ग्रन्थ रचना की। अतः सत्प्ररूपणासूत्रोंके रचयिता भगवान पुष्पदन्त हैं और शेषके रचयिता भगवान् भूतबलि हैं। इसतरह मूलग्रन्थकर्ता भगवान् वर्द्धमान महावीर हैं, अनुग्रन्थकर्ता गौतमस्वामी हैं और उपग्रन्थकर्ता भूतबलि, पुष्पदन्त आदि अनेक आचार्य हैं।

अब अनुगमका कथन करते हैं—

एत्तो इमेसिं चोद्दसण्हं जीवसमासाणं मग्गणट्ठदाए तत्थ इमाणि चोद्दस चेव ट्ठाणाणि णायव्वाणि भवंति ॥२॥

इस श्रुतप्रमाणसे इन चौदह गुणस्थानोंके अन्वेषणके लिये ये चौदह ही मार्गणास्थान जानने योग्य हैं ॥ २ ॥

शङ्का—यहाँ कौन मार्गणास्थान लिये गये हैं—द्रव्यरूप या भावरूप ?

समाधान—जैन सिद्धान्तमें मार्गणास्थानसे भावमार्गणास्थान ही विवक्षित है।

शङ्का—यह कैसे जाना ?

समाधान—उक्त सूत्रके 'इमाणि' पदका व्याख्यान करते हुए वीरसेन स्वामीने अपनी धवला टीकामें लिखा[1] है कि 'इमानि' इस पदसे प्रत्यक्षीभूत भावमार्गणास्थानोंका निर्देश किया गया है,

---

१. 'इमानि' इत्यनेन भावमार्गणास्थानानि प्रत्यक्षीभूतानि निर्दिश्यन्ते, नार्थमार्गणास्थानानि, तेषां देशकालस्वभावविप्रकृष्टानां प्रत्यक्षतानुपपत्तेः' ।—षट्खण्डागम, पु० १, पृ० १३१ ।

द्रव्यमार्गणाओंका ग्रहण नहीं किया गया है; क्योंकि द्रव्यमार्गणाएँ देश, काल, और स्वभावकी अपेक्षा दूरवर्ती हैं। अतः अल्पज्ञानियोंको उनका प्रत्यक्ष नहीं हो सकता।

शङ्का—मार्गणा किसे कहते हैं ?

समाधान—सत्, संख्या आदि अनुयोगद्वारोंसे युक्त चौदह जीवसमास, जिनमें या जिनके द्वारा खोजे जाते हैं, उन्हें मार्गणा कहते हैं। कहा भी है—

'जाहि व जासु व जीवा मग्गिज्जंते जहा तहा दिट्ठा।
ताओ चोद्दस जाणे सुदणाणे मग्गणा होंति॥

'श्रुतज्ञानमें जिस प्रकार जीव पदार्थ देखे गये हैं उसी प्रकार वे जिन नारकादि पर्यायोंके द्वारा अथवा जिन नारकादि पर्यायोंमें खोजे जाते हैं, उन्हें मार्गणा कहते हैं और वे चौदह होती हैं, ऐसा जानों।'

तं जहा ॥३॥

वे चौदह मार्गणास्थान इस प्रकार हैं ?

गई इंदिए काए जोगे वेदे कसाए णाणे संजमे दंसणे लेस्सा भविय सम्मत्त सण्णि आहारए चेदि ॥४॥

गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व, संज्ञी और आहार ये चौदह मार्गणाएँ है। इनमें जीव खोजे जाते हैं॥ ४॥

शङ्का—इस सूत्रमें गति आदि प्रत्येक पदके साथ सप्तमी विभक्तिका निर्देश क्यों किया है ?

समाधान—गति आदि मार्गणाओंको जीवोंका आधार बतानेके लिये सप्तमी विभक्तिका निर्देश किया है।

शङ्का—लोकमें अन्वेषणके लिये चार वस्तुओंकी आवश्यकता होती है—एक मृगयिता (खोजने वाला), एक मृग्य (जो खोजा जाये), एक मार्गणा (खोज) और एक मार्गणोपाय (खोजके साधन)। परन्तु यहाँ वे चारों प्रकार नहीं पाये जाते, इसलिये मार्गणाका कथन नहीं बनता ?

समाधान—यहाँ भी वे चारों प्रकार पाये जाते हैं जो इस प्रकार हैं—जीवादि पदार्थोंका श्रद्धालु भव्यजीव मृगयिता है। चौदह गुणस्थानोंसे युक्त जीव मृग्य है। जो मृग्य अर्थात् चौदह गुण-स्थानोंसे युक्त जीवोंके आधारभूत हैं अथवा खोज करनेवाले भव्यजीवको खोज करनेमें अत्यन्त सहा-यक हैं ऐसी गति आदि मार्गणा हैं। और गुरु शिष्य वगैरह मार्गणाके उपाय हैं।

शङ्का—इस सूत्रमें मृगयिता, मृग्य और मार्गणोपायको छोड़कर केवल मार्गणाका ही कथन क्यों किया ?

समाधान—मार्गणा शेष तीनोंका अविनाभावी है। इसलिए मार्गणाका कथन करनेसे शेष तीनोंका ग्रहण हो जाता है।

शङ्का—गति किसे कहते हैं ?

समाधान—गतिनामकर्मके उदयसे होनेवाली आत्माकी पर्यायविशेषको गति कहते हैं। अथवा एक भवसे दूसरे भवमें जानेको गति कहते हैं। कहा भी है—

गइकम्मविणिव्वत्ता जा चेट्ठा सा गई मुणेयव्वा।
जीवा दु चाउरंगं गच्छंति त्ति य गई होई॥

'गतिनामकर्मके उदयसे जीवकी जो चेष्टाविशेष होती है उसे गति कहते हैं। अथवा जिसके निमित्तसे जीव चतुर्गतिमें जाते हैं उसे गति कहते हैं।'

शङ्का—इन्द्रिय किसे कहते हैं?

समाधान—अन्य इन्द्रियके विषयमें प्रवृत्ति न करके जो केवल अपने विषयमें ही रत हैं उन्हें इन्द्रिय कहते हैं। अर्थात् अपने अपने विषयका स्वतंत्र आधिपत्य करनेसे इन्द्रियाँ कहलाती हैं, क्योंकि 'इन्दन' का अर्थ आधिपत्य होता है। कहा भी है—

अहमिंदा जह देवा अविसेसं अहमहंति मण्णंता।
ईसंती एक्कमेक्कं इंदा इव इंदिए जाण॥

'जैसे अहमिन्द्र देव सेवक और स्वामीके भेदसे रहित होकर किसीके अधीन न होते हुए स्वयं अपनेको इन्द्र मानते हैं, उसी प्रकार इन्द्रियाँ भी अन्य इन्द्रियोंके अधीन न होकर अपने अपने विषयका ज्ञान करानेमें समर्थ होती हैं, अतः अहमिन्द्रोंकी तरह इन्द्रियोंको समझना।'

शङ्का—काय किसे कहते हैं?

समाधान—योगरूप आत्माकी प्रवृत्तिसे संचित हुए औदारिक आदिरूप पुद्गलपिण्डको काय कहते हैं। कहा भी है—

अप्पपउत्ति-संचिद-पोग्गलपिण्डं वियाण कायो त्ति।
सो जिणमदम्हि भणिओ पुढविक्कायादयो सो दो॥

'आत्माकी योगरूप प्रवृत्तिसे संचित हुए औदारिक आदिरूप पुद्गलपिण्डको काय जानो। वह काय जिनमतमें पृथिवीकाय आदिके भेदसे छह प्रकारका कहा गया है। और वे पृथिवी आदि छह काय त्रसकाय और स्थावर कायके भेदसे दो भेदोंमें विभाजित हैं।'

शङ्का—योग किसे कहते हैं?

समाधान—आत्माकी प्रवृत्तिके निमित्तसे कर्मोंके ग्रहण करनेमें कारणभूत वीर्यकी उत्पत्तिको योग कहते हैं। अथवा आत्माके प्रदेशोंके संकोच-विस्ताररूप होनेको योग कहते हैं। कहा भी है—

मणसा वचसा काएण चावि जुत्तस्स वीरियपरिणामो।
जीवस्स प्पणियोओ जोगो त्ति जिणेहि णिद्दिट्ठो॥

'मन, वचन और कायके निमित्तसे होनेवाली क्रियासे युक्त आत्माका जो वीर्यरूप परिणाम होता है उसे योग कहते हैं। अथवा जीवके प्रणियोग अर्थात् परिस्पन्दरूप क्रियाको योग कहते हैं, ऐसा जिनेन्द्रदेवने कहा है।'

शङ्का—वेद किसे कहते हैं?

समाधान—आत्माकी प्रवृत्तिमें मैथुनरूप सम्मोहकी उत्पत्तिको वेद कहते हैं। कहा भी है—

वेदस्सुदीरणाए बालत्तं पुण णियच्छदे बहुसो ।
थी-पुं-णवुंसए वि य वेए त्ति तओ हवइ वेओ ॥

"वेदकर्मकी उदीरणासे यह जीव अनेक प्रकारकी मूर्खताएँ करता है। और स्त्रीभाव, पुरुषभाव और नपुंसकभावका वेदन करता है, इसलिये वेदकर्मके उदयसे होनेवाले भावको वेद कहते हैं।"

शङ्का—कषाय किसे कहते हैं ?

समाधान—सुख-दुखरूपी नाना प्रकारके धान्यको उत्पन्न करनेवाले कर्मरूपी खेतको जो कर्षण करे अर्थात् जोते बोए, उसे कषाय कहते हैं। कहा भी है—

'सुह-दुक्ख-सुबहुसस्सं कम्मक्खेत्तं कसेदि जीवस्स ।
संसारदूरमेरं तेण कसायो त्ति णं वेंति ॥

'सुख-दुःख आदि अनेक प्रकारके धान्योंको उत्पन्न करनेवाले तथा जिसकी संसाररूपी मेड (सीमा) बहुत दूर है, ऐसे कर्मरूपी खेतको जो कर्षण करती है उसे कषाय कहते हैं।'

शङ्का—ज्ञान किसे कहते हैं ?

समाधान—जिसके द्वारा द्रव्य, गुण और पर्यायोंका जानते हैं, सत्यार्थका प्रकाश करनेवाली उस शक्तिविशेषको ज्ञान कहते हैं। कहा भी है—

जाणइ तिकालसहिए दव्वगुणे पज्जए य बहुभेए।
पच्चक्खं च परोक्खं अणेण णाणे त्ति णं वेंति ॥

'जिसके द्वारा जीव त्रिकालवर्ती समस्त द्रव्यों, उनके गुण और उनकी अनेक प्रकारकी पर्यायोंको प्रत्यक्ष और परोक्षरूपसे जानता है, उसको ज्ञान कहते हैं।'

शङ्का—संयम किसे कहते हैं ?

समाधान—व्रतोंका धारण, समितियोंका पालन, कषायोंका निग्रह, दण्डोंका त्याग और इन्द्रियोंका जय संयम है। कहा भी है—

"वय-समिइ-कसायाणं दंडाण तहिंदियाण पंचण्हं ।
धारण-पालण-णिग्गह-चाग-जया संजमो भणिओ ॥

'अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पांच महाव्रतोंका धारण करना; ईर्या, भाषा, ऐषणा, आदाननिक्षेपण एवं उत्सर्ग इन पांच समितियोंका पालना; क्रोध, मान, माया और लोभ इन चार कषायोंका निग्रह करना; मन, वचन, और काय इन तीन दण्डोंका त्याग करना तथा पांच इन्द्रियोंको जीतना इनको संयम कहते हैं।

शङ्का—दर्शन किसे कहते हैं ?

समाधान—अन्तर्मुख चित्प्रकाशको दर्शन और बहिर्मुख चित्प्रकाशको ज्ञान कहते हैं।

शङ्का—अपने अपने क्षयोपशमके अनुसार जो जीवके स्वरूपका संवेदन होता है उसे चित्

अथवा चैतन्य कहते हैं। और अपनेसे भिन्न बाह्य पदार्थोंके ज्ञानको प्रकाश कहते हैं। तथा जिसके द्वारा यह जीव अपने स्वरूपको और पर पदार्थोंको जानता है उसे ज्ञान कहते हैं। अतः चित्प्रकाशरूप दर्शन और ज्ञानमें भेद सिद्ध नहीं होता?

समाधान—जिस तरह ज्ञानके द्वारा 'यह घट है' 'यह पट है', इत्यादि व्यवस्था होती है उस तरह दर्शनके द्वारा नहीं होती, इसलिये दर्शन और ज्ञानमें भेद है।

शङ्का—तब तो अन्तरंग सामान्य और बहिरंग समान्यको ग्रहण करनेवाला दर्शन है और अन्तर्विशेष तथा बाह्यविशेषको ग्रहण करनेवाला ज्ञान है, ऐसा मान लेना चाहिये?

समाधान—सामान्यको छोड़कर केवल विशेष अर्थक्रिया करनेमें असमर्थ है। और जो अर्थ-क्रिया करनेमें असमर्थ होता है वह अवस्तुरूप पड़ता है। अतः अवस्तुरूप विशेषको ग्रहण करनेवाला ज्ञान प्रमाण नहीं हो सकता। इसी तरह केवल सामान्यको ग्रहण करनेवाला दर्शन भी प्रमाण नहीं माना जा सकता। सारांश यह है कि जब सामान्य रहित विशेष और विशेष रहित सामान्य अवस्तु हैं तो केवल विशेषको ग्रहण करनेवाला ज्ञान और केवल सामान्यको ग्रहण करनेवाला दर्शन कैसे प्रमाण माना जा सकता है। अतः सामान्य-विशेषात्मक बाह्य पदार्थको ग्रहण करनेवाला ज्ञान है और सामान्यविशेषात्मक आत्मरूपको ग्रहण करनेवाला दर्शन है।

शङ्का—उक्त प्रकारसे दर्शन और ज्ञानका स्वरूप मान लेने पर 'सामान्यग्रहणको दर्शन कहते हैं' आगमके इस वचनके साथ विरोध क्यों नहीं आता है?

समाधान—सम्पूर्ण बाह्य पदार्थोंके प्रति साधारण होनेसे आत्माका ग्रहण सामान्यपदसे किया है। और उसकी पुष्टिके लिये 'पदार्थोंके आकारको न करके' यह पद दिया है। अर्थात् भेद रूपसे प्रत्येक पदार्थको ग्रहण न करके जो सामान्य ग्रहण होता है उसे दर्शन कहते हैं। कहा भी है—

"जं सामण्णं गहणं भावाणं णेव कट्टुमायारं।
अविसेसदूण अत्थे दसंणमिवि भण्णदे समए॥

'सामान्य-विशेषात्मक बाह्य पदार्थोंको अलग-अलग भेदरूपसे ग्रहण न करके जो सामान्य-ग्रहण होता है उसे आगममें दर्शन कहा है।'

शङ्का—लेश्या किसे कहते हैं?

समाधान—कषायसे अनुरंजित काययोग, वचनयोग और मनोयोगकी प्रवृत्तिको लेश्या कहते हैं। अर्थात् केवल कषाय और केवल योगको लेश्या नहीं कहते, किन्तु कषायानुबिद्ध योग-प्रवृत्तिको लेश्या कहते हैं। किन्तु इससे यह निश्चय नहीं कर लेना चाहिए कि ग्यारहवें आदि गुण-स्थानवर्ती वीतरागियोंके केवल योग है इसलिये वहां लेश्या नहीं है, क्योंकि लेश्यामें योग प्रधान है, कषाय प्रधान नहीं है; क्योंकि वह योगका विशेषण है। कहा भी है—

'लिपदि अप्पीकीरदि एदाए णियय-पुण्ण-पावं च।
जीवो त्ति होइ लेस्सा लेस्सागुणजाणय-क्खादा॥

'जिसके द्वारा जीव अपनेको पुण्य और पापसे लिप्त करता है उसको लेश्या कहते हैं, ऐसा लेश्याके स्वरूपको जाननेवालोंने कहा है।

शङ्का—भव्य किसे कहते हैं?

समाधान—जो निर्वाणपद प्राप्त करनेके योग्य हैं उन्हें भव्य कहते हैं और जो उसके योग्य नहीं हैं उन्हें अभव्य कहते हैं ।

शङ्का—सम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

समाधान—शुद्धनयसे प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्यकी अपेक्षा तत्त्वार्थके श्रद्धानको सम्यग्दर्शन कहते हैं । कहा भी है—

'छप्पंच-णव-विहाणं अत्थाणं जिणवरोवइट्ठाणं ।
आणाए अहिगमेण व सद्दहणं होई सम्मत्तं ॥'

'जिनेन्द्र भगवानके द्वारा उपदिष्ट छ द्रव्य, पांच अस्तिकाय और नौ पदार्थोंका आज्ञा अर्थात्, आप्तवचनके आश्रयसे अथवा प्रमाण, नय, निक्षेप आदिसे श्रद्धान करनेको सम्यक्त्व कहते हैं ।

शङ्का—संज्ञी किसे कहते हैं ?

समाधान—जो भली प्रकार जाने उसको संज्ञा अथवा मन कहते हैं । और जिसके मन हो उसे संज्ञी कहते हैं । तथा जिसके मन न हो उसे असंज्ञी कहते हैं । अथवा जो शिक्षा, क्रिया, उपदेश और आलापको ग्रहण करता है उसे संज्ञी कहते हैं । कहा भी है—

'सिक्खा-किरियुवदेसालावग्गाहो मणोवलंबेण ।
जो जीवो सो सण्णी तव्विवरीदो असण्णी दु ॥'

'जो जीव मनके अवलम्बनसे शिक्षा, क्रिया, उपदेश और आलापको ग्रहण करता है उसे संज्ञी कहते हैं और जो इन्हें ग्रहण नहीं कर सकता उसे असंज्ञी कहते हैं ।'

शङ्का—आहारक किसे कहते हैं ?

समाधान—औदारिक आदि शरीरके योग्य पुद्गलपिण्डके ग्रहण करनेको आहार कहते हैं और आहार करनेवालेको आहारक कहते हैं । कहा भी है—

'आहरदि सरीराणं तिण्हं एगदर-वग्गणाओ जं ।
भासा-मणस्स णियदं तम्हा आहारओ भणिओ ॥'

'औदारिक, वैक्रियिक और आहारक इन तीन शरीरोंमें-से उदय प्राप्त किसी एक शरीरके योग्य तथा भाषा और मनके योग्य पुद्गल वर्गणाओंको जो नियमसे ग्रहण करता है उसको आहारक कहते हैं ।'

शङ्का—अनाहारक किसे कहते हैं ?

समाधान—जो औदारिक आदि शरीरके योग्य पुद्गल पिण्डको ग्रहण नहीं करता उसे अनाहारक कहते हैं । कहा भी है—

'विग्गहगइमावण्णा केवलिणो समुहदा अजोगी य ।
सिद्धा य अणाहारा सेसा आहारया जीवा ॥'

'विग्रहगतिमें स्थित चारों गतिके जीव, प्रतर और लोकपूरण समुद्घातको करनेवाले सयोगकेवली, अयोगकेवली और सिद्ध ये नियमसे अनाहारक होते हैं । और शेष जीव आहारक होते हैं ।'

खोजे जानेवाले गुणस्थानोंके अनुयोगद्वारोंका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

एदेसिं चेव चोद्दसण्हं जीवसमासाणं परूवट्ठादए तत्थ इमाणि अट्ठ अणियोगद्दाराणि णायव्वाणि भवंति ॥५॥

इन ही चौदह जीवसमासों (गुणस्थानों)के निरूपण करने रूप प्रयोजनके होनेपर आगे कहे जानेवाले आठ अनुयोगद्वार जानने योग्य हैं ॥ ५ ॥

तं जहा ॥६॥

वे आठ अनुयोगद्वार कौनसे हैं ॥ ६ ॥

संतपरूवणा दव्वपमाणाणुगमो खेत्ताणुगमो फोसणाणुगमो कालाणुगमो अंतराणुगमो भावाणुगमो अप्पाबहुगाणुगमो चेदि ॥७॥

सत्प्ररूपणा, द्रव्यप्रमाणानुगम, क्षेत्रानुगम, स्पर्शनानुगम, कालानुगम, अन्तरानुगम, भावानुगम और अल्पबहुत्वानुगम ये आठ अनुयोगद्वार हैं।

कहा भी है—

"अत्थित्तं पुण संतं अत्थित्तस्स य तहेव परिमाणं।
पच्चुप्पण्णं खेत्तं अदीवपदुप्पण्णणं फुसणं ॥
कालो ट्ठिदि अवधरणं अंतरं विरहो य सुण्णकालो य।
भावो खलु परिणामो सणामसिद्धं खु अप्पबहुं ॥"

अस्तित्वका प्रतिपादन करनेको सत्प्ररूपणा कहते हैं। जिन पदार्थोंके अस्तित्वका ज्ञान हो गया है उनके परिमाणका कथन करनेको संख्याप्ररूपणा कहते हैं। वर्तमान क्षेत्रका कथन करनेको क्षेत्रप्ररूपणा कहते हैं। अतीत और वर्तमान स्पर्शका कथन करनेको स्पर्शनप्ररूपणा कहते हैं। पदार्थोंकी उत्कृष्ट और जघन्य स्थितिका कथन करनेको कालप्ररूपणा कहते हैं। विरहकाल अथवा शून्यकालका कथन करनेको अन्तरप्ररूपणा कहते हैं। पदार्थोंके परिणामोंका कथन करनेको भावप्ररूपणा कहते हैं और अल्पबहुत्व तो अपने नामसे ही स्पष्ट है।

आगे प्रथम अनुयोगका स्वरूप कहनेके लिये सूत्र कहते हैं—

संतपरूवणदाए दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण ॥८॥

सत्प्ररूपणामें दो प्रकारका कथन है—ओघसे और आदेशसे ॥

इस सूत्रमें 'चतुर्दशजीवसमासानां' इस पदकी अनुवृत्ति होती है। इस लिये ऐसा अर्थ करना चाहिये कि 'चौदह जीवसमासोंको सत्प्ररूपणामें'। सामान्यसे कथन करनेको ओघप्ररूपणा कहते हैं और विशेषरूपसे कथन करनेको आदेशप्ररूपणा कहते हैं।

शङ्का—जीवसमास किसे कहते हैं?

समाधान—जिसमें जीव भले प्रकारसे रहते हैं उसे जीवसमास कहते हैं।

शङ्का—जीव कहाँ रहते हैं?

समाधान—गुणोंमें जीव रहते हैं।

शङ्का—वे गुण कौनसे हैं?

समाधान—औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक ये पांच प्रकारके

गुण अर्थात् भाव हैं। जो कर्मोंके उदयसे उत्पन्न होता है उसे औदयिक भाव कहते हैं। जो कर्मोंके उपसमसे उत्पन्न होता है उसे औपशमिक भाव कहते हैं। जो कर्मोंके क्षयसे उत्पन्न होता है उसे क्षायिक भाव कहते हैं। जो वर्तमान सर्वघाती स्पर्द्धकोंके उदयाभावीक्षयसे और आगे उदय आनेवाले सर्वघाती स्पर्द्धकोंके सदवस्थारूप उपशमसे उत्पन्न होता है उसे क्षायोपशमिक भाव कहते हैं। जो कर्मोंके उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशमकी अपेक्षाके बिना जीवके स्वभाव मात्रसे उत्पन्न होता है उसे पारिणामिक भाव कहते हैं। इन गुणोंके साहचर्यसे आत्मा भी गुण संज्ञाको प्राप्त होता है। कहा भी है–

"जेहिं दु लक्खिज्जंते उदयादिसु संभवेहिं भावेहिं ॥
जीवा ते गुणसण्णा णिद्दिट्ठा सव्वदरिसीहिं ॥"

"दर्शनमोहनीय आदि कर्मोंकी उदय, उपशम आदि अवस्थाओंके होनेपर उत्पन्न हुए भावोंसे युक्त जो जीव देखे जाते हैं, उन जीवोंको सर्वज्ञदेवने उसी गुणसंज्ञावाला कहा है।

अब ओघ अर्थात् गुणस्थानोंका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

ओघेण अत्थि मिच्छाइट्ठी ॥९॥

सामान्यसे मिथ्यादृष्टि जीव हैं ॥९॥

शङ्का—मिथ्यादृष्टि किसे कहते हैं ?

समाधान—मिथ्याशब्दका अर्थ असत्य है और दृष्टि शब्दका अर्थ श्रद्धान या रुचि है। इसलिये जिन जीवोंकी रुचि असत्यकी ओर होती है उन्हें मिथ्यादृष्टि कहते हैं। कहा भी है—

'मिच्छत्तं वेयंतो जीवो विवरीयदंसणो होइ।
ण य धम्मं रोचेदि महुरं खु रसं जहा जरिदो ॥'

'मिथ्यात्व कर्मके उदयसे उत्पन्न होनेवाले मिथ्यात्वका अनुभव करनेवाला जीव विपरीत श्रद्धावाला होता है। जैसे पित्तज्वरवाले जीवको मीठा रस भी अच्छा नहीं लगता वैसे ही उसे सच्चा धर्म अच्छा नहीं लगता।'

अब दूसरे गुणस्थानको कहनेके लिये सूत्र कहते हैं—

सासणसम्माइट्ठी ॥१०॥

सामान्यसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव हैं ॥१०॥

शङ्का—सासादनसम्यग्दृष्टि किसे कहते हैं ?

समाधान—सम्यग्दर्शनकी विराधनाको आसादन कहते हैं। जो आसादनसे युक्त हो उसे सासादन कहते हैं। अनन्तानुबन्धी कषायके उदयसे जिसका सम्यग्दर्शन नष्ट हो गया है किन्तु जो मिथ्यात्वरूप परिणामोंको प्राप्त नहीं हुआ फिर भी मिथ्यात्वके अभिमुख है उसे सासादनसम्यग्दृष्टि कहते हैं।

शङ्का—दृष्टि तीन हैं—एक समीचीन, एक असमीचीन और एक उभयरूप। सासादन सम्यग्दृष्टि मिथ्यात्वकर्मका उदय न होनेसे मिथ्यादृष्टि नहीं है। समीचीन रुचि न होनेसे सम्यग्दृष्टि भी नहीं है। तथा सम्यग्मिथ्यात्वरूप रुचिके न होनेसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि भी नहीं है। इनके अतिरिक्त कोई चौथी दृष्टि है नहीं। इसलिये सासादन नामक कोई गुणस्थान नहीं है ?

समाधान—सासादन गुणस्थानमें मिथ्या रुचि रहती है। मिथ्या रुचि दो प्रकारकी है एक अनन्तानुबन्धीके उदयसे उत्पन्न हुई और एक मिथ्यात्व कर्मके उदयसे उत्पन्न हुई। दूसरे गुणस्थानमें अनन्तानुबन्धी कषायके उदयसे उत्पन्न हुई मिथ्या रुचि पाई जाती है। इसलिये दूसरे गुणस्थानवाला जीव मिथ्यादृष्टि ही है किन्तु मिथ्यात्वकर्मके उदयसे उत्पन्न हुई मिथ्यारुचि वहां नहीं पाई जाती, इसलिये उसे मिथ्यादृष्टि न कहकर केवल सासादनसम्यग्दृष्टि कहते हैं। सारांश यह है कि दर्शनमोहनीयके उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशमसे तो सासादन गुणस्थान होता नहीं। वह होता है अनन्तानुबन्धीके उदयसे। और अनन्तानुबन्धी दर्शनमोहनीयका भेद न होकर चारित्रमोहनीयका भेद है। इसलिये दूसरे गुणस्थानको मिथ्यादृष्टि न कहकर सासादनसम्यग्दृष्टि कहा है।

शङ्का—जब दूसरे गुणस्थानमें मिथ्यारुचि पाई जाती है तो उसे सम्यग्दृष्टि क्यों कहा है?

समाधान—पहले वह सम्यग्दृष्टि था, इस अपेक्षासे उसे सम्यग्दृष्टि कहा है। कहा भी है—

'सम्मत्तरयणपव्वयसिहरादो मिच्छभूमिसमभिमुहो
णासियसम्मत्तो सो सासणणामो मुणेयव्वो ॥

'सम्यग्दर्शनरूपी रत्नमयीपर्वतके शिखरसे गिरकर जो जीव मिथ्यात्वरूपी भूमिके अभिमुख है, अतएव जिसका सम्यग्दर्शन तो नष्ट हो चुका है, परन्तु मिथ्यादर्शनकी प्राप्ति नहीं हुई है उसे सासादनगुणस्थानवर्ती जानना चाहिये।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

सम्मामिच्छाइट्ठी ॥११॥

सामान्यसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव हैं ॥११॥

शङ्का—सम्यग्मिथ्यादृष्टि किसे कहते हैं?

समाधान—जिस जीवके समीचीन और मिथ्या दोनों प्रकारकी दृष्टि होती है उसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि कहते हैं।

शङ्का—एक जीवमें एक साथ सम्यक् और मिथ्या दृष्टि होना संभव नहीं है, इसलिये सम्यग्मिथ्यादृष्टि नामक तीसरा गुणस्थान नहीं बनता।

समाधान—जब सम्यक् और मिथ्या श्रद्धाओंका क्रमसे एक जीवमें रहना संभव है तो किसी जीवमें एक साथ भी उन दोनोंका रहना संभव है, क्योंकि पहलेसे भी स्वीकृत अन्य देवताओंको त्यागे बिना, 'अरिहन्त भी देव हैं' ऐसी सम्यग्मिथ्यारूप श्रद्धावाले पुरुष पाये जाते हैं।

शङ्का—पांच प्रकारके भावोंमेंसे तीसरे गुणस्थानमें कौन-सा भाव है?

समाधान—तीसरे गुणस्थानमें क्षायोपशमिक भाव है।

शङ्का—जो जीव मिथ्यात्वगुणस्थानसे सम्यग्मिथ्यात्वगुणस्थानमें आता है उसके क्षायोपशमिक भाव कैसे सम्भव है?

समाधान—वर्तमान समयमें मिथ्यात्वकर्मके सर्वघाती स्पर्द्धकोंका उदयाभावी क्षय होनेसे, सत्तामें रहनेवाले उसी मिथ्यात्वकर्मके सर्वघाती स्पर्द्धकोंका उदयाभावलक्षण उपशम होनेसे और सम्यग्मिथ्यात्वकर्मके सर्वघाती स्पर्द्धकोंके उदय होनेसे सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान होता है, इसलिये उसमें क्षायोपशमिक भाव होता है।

शङ्का—तीसरे गुणस्थानमें सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिका उदय होता है, अतः वहां औदयिक भाव क्यों नहीं कहा ?

समाधान—मिथ्यात्वप्रकृतिके उदयसे जैसे सम्यक्त्वका एकदम नाश हो जाता है वैसे सम्यगमिथ्यात्वप्रकृतिके उदयसे सम्यक्त्वका एकदम नाश नहीं होता। इसलिये तीसरे गुणस्थानमें औदयिक भाव न कहकर क्षायोपशमिक भाव कहा है।

शङ्का—जब सम्यग्मिथ्यात्वका उदय सम्यग्दर्शनको एकदम नष्ट नहीं करता तो उसे सर्वघाती क्यों कहा है ?

समाधान—वह सम्यग्दर्शनकी पूर्णताको रोकता है इस अपेक्षासे सम्यग्मिथ्यात्वको सर्वघाती कहा है।

कहा भी है—

'दहिगुणमिव वामिस्सं पुहभावं णेव कारिदुं सक्कं।
एवं मिस्सयभावो सम्मामिच्छो त्ति णादव्वो॥'

'जैसे दही और गुड़को मिला देनेपर उन्हें अलग-अलग नहीं किया जा सकता, उसीप्रकार एक ही कालमें सम्यक्त्व और मिथ्यात्वरूप मिले हुए परिणामोंको मिश्र गुणस्थान कहते हैं।'

४. अब सम्यग्दृष्टि गुणस्थानका कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

असंजदसम्माइट्ठी ॥ १२ ॥

सामान्यसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव हैं॥ १२॥

शङ्का—असंयतसम्यग्दृष्टि किसे कहते हैं ?

समाधान—जिसकी दृष्टि अर्थात् श्रद्धा समीचीन होती है उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। और संयमसे रहित सम्यग्दृष्टिको असंयत सम्यग्दृष्टि कहते हैं। वे सम्यग्दृष्टि तीन प्रकारके होते हैं— क्षायिक सम्यग्दृष्टि, वेदक सम्यग्दृष्टि और औपशमिक सम्यग्दृष्टि। अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ और मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति इन सात प्रकृतियोंके सर्वथा विनाशसे जीव क्षायिक सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। इन्हीं सात प्रकृतियोंके उपशमसे जीव उपशम सम्यग्दृष्टि होता है। तथा सम्यक् प्रकृतिके उदयसे जीव वेदक सम्यग्दृष्टि होता है। क्षायिक सम्यग्दृष्टि कभी भी मिथ्यात्वको प्राप्त नहीं होता, न किसी प्रकारका सन्देह करता है और मिथ्यात्वके अतिशयोंको देखकर भी आश्चर्यचकित नहीं होता। उपशम सम्यग्दृष्टि भी इसीप्रकारका होता है किन्तु परिणामोंके निमित्तसे सम्यक्त्वको छोड़कर मिथ्यादृष्टि हो जाता है कभी सासादन सम्यग्दृष्टि हो जाता है, कभी सम्यक्मिथ्यादृष्टि हो जाता है और कभी वेदकसम्यग्दृष्टि हो जाता है। वेदक सम्यग्दृष्टिका श्रद्धान शिथिल होता है अतः कुयुक्तियोंके फेरमें पड़कर उसे सम्यक्त्वकी विराधना करनेमें देर नहीं लगती।

शङ्का—पांच भावोंमेंसे किस-किस भावके आश्रयसे चौथा गुणस्थान उत्पन्न होता है ?

समाधान—सात प्रकृतियोंके क्षयसे उत्पन्न होनेवाला सम्यग्दर्शन क्षायिक है। उन्हीं सात प्रकृतियोंके उपशमसे उत्पन्न होनेवाला सम्यग्दर्शन औपशमिक है और सम्यक्त्वका एकदेश घातका वेदन करानेवाली सम्यक् प्रकृतिके उदयसे उत्पन्न होनेवाला वेदक सम्यक्त्व क्षायोपशमिक है।

शङ्का—सूत्रमें सम्यग्दृष्टिके लिये असंयत विशेषण क्यों दिया गया है ?

समाधान—असंयत विशेषण अन्तदीपक है अतः वह नीचेके सभी गुणस्थानोंके असंयतपनेका कथन करता है।

शङ्का—वह असंयतपद ऊपरके पांचवें आदि गुणस्थानोंमें असंयमपनेको क्यों नहीं बतलाता ?

समाधान—ऊपरके सब गुण स्थानोंमें संयमासंयम अथवा संयम ही पाया जाता है। कहा भी है—

'सम्माइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहदि।
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणियोगा॥
णो इंदियेसु विरदो णो जीवे थावरे तसे चावि।
जो सद्दहदि जिणुत्तं सम्माइट्ठी अविरदो सो॥'

'सम्यग्दृष्टि जीव जिनेन्द्र भगवान्के द्वारा उपदिष्ट वचनका तो श्रद्धान करता है किन्तु नहीं जानता हुआ, गुरुके उपदेशसे विपरीत अर्थका भी श्रद्धान कर लेता है। जो इन्द्रियोंके विषयोंसे तथा त्रस और स्थावर जीवोंकी हिंसासे तो विरक्त नहीं है, किन्तु जिनेन्द्र द्वारा कथित प्रवचनका श्रद्धान करता है, वह अविरत सम्यग्दृष्टि है।'

(५) अब देशविरति गुणस्थानका कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

संजदासंजदा ॥ १३ ॥

सामान्यसे संयतासंयत जीव हैं ॥ १३ ॥

शङ्का—संयतासंयत किसे कहते हैं ?

समाधान—जो संयत होते हुए भी असंयत होते हैं उन्हें संयतासंयत कहते हैं।

शङ्का—जो संयत होता है वह असंयत नहीं हो सकता और जो असंयत होता है वह संयत नहीं हो सकता, क्योंकि संयमभाव और असंयमभावका परस्पर विरोध है। अतः पांचवां गुणस्थान नहीं बनता ?

समाधान—संयमभाव और असंयमभावको एक जीवमें स्वीकार कर लेनेपर भी कोई विरोध नहीं आता, क्योंकि उन दोनोंकी उत्पत्तिके कारण भिन्न-भिन्न हैं। संयमभावकी उत्पत्तिका कारण त्रसहिंसाविरक्ति है और असंयमभावकी उत्पत्तिका कारण स्थावरहिंसासे अविरक्ति है। इसलिये संयतासंयत नामक पांचवां गुणस्थान बन जाता है। कहा भी है—

'जो तसवहाउ विरदो अविरओ तह य थावरवहाओ।
एक्कसमयम्हि जीवो विरयाविरओ जिणेक्कमई॥'

'जो जीव जिनेन्द्रदेवमें ही अपनी श्रद्धाको रखता हुआ, एक ही समयमें त्रसजीवोंकी हिंसासे विरत और स्थावरजीवोंकी हिंसासे अविरत होता है उसको विरताविरत (संयतासंयत) कहते हैं।'

संयतोंके प्रथम गुणस्थानका कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

पमत्तसंजदा ॥ १४ ॥

सामान्यसे प्रमत्तसंयत जीव हैं ॥ १४ ॥

शंका—प्रमत्तसंयत किसे कहते हैं ?

समाधान—प्रकर्षसे मत्त जीवोंको प्रमत्त कहते हैं और अच्छी तरहसे संयमको प्राप्त जीवोंको संयत कहते हैं। अतः जो प्रमत्त होते हुए भी संयत होते हैं उन्हें प्रमत्तसंयत कहते हैं।

शंका—यदि छठे गुणस्थानवर्ती जीव प्रमत्त हैं तो वे संयत नहीं हो सकते; क्योंकि प्रमादी जीवोंको अपने स्वरूपका बोध नहीं हो सकता। और यदि वे संयत हैं तो प्रमत्त नहीं हो सकते; क्योंकि प्रमादके हटने पर ही संयम होता है ?

समाधान—हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म और परिग्रह इन पाँच पापोंसे विरक्तिका नाम संयम है। वह संयम प्रमादसे नष्ट नहीं होता, किन्तु प्रमादसे उसमे केवल मल ही उत्पन्न होता है।

शंका—छठे गुणस्थानमें मल उत्पन्न करनेवाला प्रमाद ही लिया गया है, संयमको नष्ट करनेवाला प्रमाद नहीं लिया गया, इस बातका निश्चय कैसे किया जाये ?

समाधान—छठे गुणस्थानमें प्रमादके रहते हुए संयमका सद्भाव बन नहीं सकता, इससे निश्चय होता है कि यहाँ पर मलको उत्पन्न करनेवाला प्रमाद ही इष्ट है।

शंका—पाँच भावोंमेंसे यहाँ कौन-सा भाव होता है ?

समाधान—प्रत्याख्यानावरणके वर्तमान सर्वघाती निषेकोंके उदयाभावी क्षयसे और आगामी कालमें उदयमें आनेवाले निषेकोंके सदवस्थारूप उपशमसे तथा संज्वलन कषायके उदयसे संयम उत्पन्न होता है। अतः यहाँ क्षायोपशमिक भाव है।

शंका—जब संज्वलनकषायके उदयसे संयम होता है तो औदयिक भाव क्यों नहीं कहा ?

समाधान—संज्वलनकषायके उदयसे संयमकी उत्पत्ति नहीं होती।

शंका—फिर यहाँ संज्वलनका उदय क्या करता है ?

समाधान—संयममें मलको उत्पन्न करता है। कहा भी है—

वत्तावत्तपमादे जो वसइ पमत्तसंजदो होदि।
सयलगुणसीलकलिओ, महव्वई चित्तलायरणो ॥

'जो व्यक्त और अव्यक्त प्रमादमें निवास करता है, समस्त गुणों और शीलोंसे युक्त है, महाव्रती है, किन्तु जिसका आचरण चित्रल अनेकरूप है, उसे प्रमत्तसंयत कहते हैं।

क्षायोपशमिक संयमोंमें शुद्ध संयमसे युक्त गुणस्थानका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

अप्पमत्तसंजदा ॥१५॥

सामान्यसे अप्रमत्तसंयत जीव हैं ॥१५॥

शङ्का—अप्रमत्तसंयत किसे कहते हैं ?

समाधान—जिनका संयम प्रमाद सहित नहीं होता उन्हें अप्रमत्तसंयत कहते हैं। कहा भी है—

णट्ठासेसपमाओ वयगुणसीलोलिमंडिओ णाणी।
अणुवसमओ अक्खवओ झाण-णिलीणो हु अपमत्तो ॥

'जिसके व्यक्त और अव्यक्त सभी प्रमाद नष्ट हो गये हैं, जो व्रत, गुण और शीलोंसे मण्डित है, ज्ञानी है, और ध्यानमें लीन है किन्तु जो उपशम अथवा क्षपकश्रेणिपर आरूढ़ नहीं हुआ है उसे अप्रमत्तसंयत कहते हैं।'

अब चारित्रमोहनीयका उपशम करनेवाले या क्षपण करनेवाले गुणस्थानोंमेंसे प्रथम गुणस्थानका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

अपुव्वकरणपविट्ठसुद्धिसंजदेसु अत्थि उवसमा खवा ॥ १६ ॥

अपूर्वकरण प्रविष्ट शुद्धि संयतोंमें सामान्यसे उपशमक और क्षपक जीव होते हैं ॥ १६ ॥

शङ्का—अपूर्वकरण संयत किसे कहते हैं ?

समाधान—'करण' शब्दका अर्थ परिणाम है और जो पहले नहीं हुए उन्हें अपूर्व कहते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि इस गुणस्थानमें नाना जीवोंकी अपेक्षा शुरूसे लेकर प्रत्येक समयमें क्रमसे बढ़ते हुए असंख्यात लोक परिणाम होते हैं। और विवक्षित समयवर्ती जीवोंके परिणामोंसे भिन्न समयवर्ती जीवोंके परिणाम विलक्षण ही होते हैं। इस तरह प्रत्येक समयमें होनेवाले अपूर्व परिणामों को अपूर्वकरण कहते हैं। और ऐसे अपूर्व परिणामवाले जीवोंको अपूर्वकरण संयत कहते हैं। उन संयतोंमें उपशमक जीव भी होते हैं और क्षपक जीव भी होते हैं।

शंका—आठवें गुणस्थानमें न तो कर्मोंका क्षय ही होता है और न उपशम ही होता है, फिर इस गुणस्थानवाले जीवोंको क्षपक और उपशमक कैसे कहा जाता है ?

समाधान—आठवें गुणस्थान वाला जीव आगे चलकर नियमसे चारित्रमोहनीयका क्षय अथवा उपशम करता है इसलिये उपशमन और क्षपणके अभिमुख हुए आठवें गुणस्थानवर्ती जीवको उपचारसे उपशमक अथवा क्षपक कहा है।

शंका—पाँच भावोंमेंसे इस गुणस्थानमें कौन-सा भाव होता है।

समाधान—क्षपकके क्षायिक और उपशमकके औपशमिक भाव होता है। कहा भी है—

> **भिण्ण-समय-ट्ठिएहिं दु जीवेहि ण होइ सव्वदा सरिसो।**
> **करणेहि एक्कसमयट्ठिएहि सरिसो विसरिसो य॥**
> **एदम्मि गुणट्ठाणे विसरिस-समय-ट्ठिएहि जीवेहि।**
> **पुव्वमपत्ता जम्हा होंति अपुव्वा हु परिणामा॥**
> **तारिस-परिणामट्ठिय-जीवा हु जिणेहि गलिय-तिमिरेहि।**
> **मोहस्स पुव्वकरणा खवणुवसमणुज्जया भणिया॥**

अपूर्वकरण गुणस्थानमें भिन्नसमयवर्ती जीवोंके परिणामोंकी अपेक्षा कभी भी सदृशता नहीं पाई जाती। किन्तु एकसमयवर्ती जीवोंके परिणामोंकी अपेक्षा सदृशता और विसदृशता दोनों पाई जाती हैं। इस गुणस्थानमें भिन्न-भिन्न समयमें रहनेवाले जीवोंके जो पहले कभी प्राप्त नहीं किये, ऐसे अपूर्व परिणाम ही होते हैं। ऐसे अपूर्व परिणामों वाले जीव मोहनीय कर्मकी शेष प्रकृतियोंके क्षपण अथवा उपशमनमें तत्पर होते हैं। ऐसा जिनेन्द्र देवने कहा है।

अब बादरकषायवाले गुणस्थानोंमें अन्तिम गुणस्थानके कथनके लिये सूत्र कहते हैं—

अणियट्टि-बादर-सांपराइय-पविट्ठ-सुद्धिसंजदेसु अत्थि उवसमा खवा ॥ १७ ॥

अनिवृत्तिबादरसाम्परायिकप्रविष्टशुद्धिसंयतोंमें उपशमक और क्षपक होते हैं ॥ १६ ॥

शंका—अनिवृत्तिबादरसाम्परायसंयत किसे कहते हैं ?

समाधान—समानसमयवर्ती जीवोंके परिणामोंमें भेद न होनेको निवृत्ति कहते हैं। और निवृत्तिके न होनेको अनिवृत्ति कहते हैं। सारांश यह है कि इस गुणस्थानमें समानसमयवर्ती जीवोंके परिणाम समान ही होते हैं और प्रथमादि समयवर्ती जीवोंके परिणाम तथा द्वितीयादि समयवर्ती जीवोंके परिणामोंमें भेद ही होता है। 'साम्पराय' शब्दका अर्थ कषाय है और बादर स्थूलको कहते हैं। अतः स्थूल कषायको बादरसाम्पराय कहते हैं। और अनिवृत्तिरूप बादरसाम्परायको अनिवृत्ति बादर साम्पराय कहते हैं। उन अनिवृत्ति बादर साम्परायरूप परिणामोंके धारक संयतोंको अनिवृत्ति बादर साम्पराय संयत कहते हैं। वे संयत उपशमक भी होते हैं और क्षपक भी होते हैं; क्योंकि इस गुणस्थानमें जीव मोहकी कितनी ही प्रकृतियोंका उपशम करता है और कितनी ही प्रकृतियोंका आगे उपशम करेगा, इस अपेक्षा यह गुणस्थान औपशमिक है। और कितनी ही प्रकृतियोंका क्षय करता है तथा आगे कितनी ही प्रकृतियोंका क्षय करेगा, इस दृष्टिसे क्षायिक है।

शंका—क्षपकका स्वतन्त्र गुणस्थान और उपशमकका स्वतन्त्र गुणस्थान, इस तरह अलग-अलग दो गुणस्थान क्यों नहीं कह दिये ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उपशमक और क्षपक दोनोंमें अनिवृत्तिरूप परिणामोंकी अपेक्षा समानता है। कहा भी है—

> **'एकम्मि कालसमये संठाणादीहि जह णिवट्टंति।**
> **ण णिवट्टंति तह च्चिय परिणामेहिं मिहो जेम्हु ॥**
> **होंति अणियट्टिणो ते पडिसमयं जेस्सिमेक्कपरिणामा।**
> **विमलयरर-झाण-हुयवह-सिहाहि णिद्दड्ढ-कम्मवणा ॥**

अनिवृत्तिकरणके अन्तर्मुहूर्त कालमेंसे किसी एक समयमें रहनेवाले अनेक जीव जिस प्रकार शरीरके आकार आदिसे परस्परमें भिन्न-भिन्न होते हैं, उस प्रकार जिन परिणामोंके द्वारा उनमें भेद नहीं पाया जाता, उनको अनिवृत्तिकरण परिणामवाले कहते हैं। उनके प्रति समय अनन्तगुणी विशुद्धिको लिये हुए एकसे परिणाम होते हैं। तथा वे अत्यन्त निर्मल ध्यानरूपी अग्निकी शिखाओंके द्वारा कर्मरूपी वन को भस्म करनेवाले होते हैं।

अब कुशील मुनियोंके अन्तिम गुणस्थानका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

सुहुम-सांपराइयपविट्ठसुद्धि-संजदेसु अत्थि उवसमा खवा ॥ १८ ॥

सूक्ष्मसाम्परायप्रविष्टशुद्धिसंयतोंमें उपशमक और क्षपक होते हैं॥ १८॥

शंका—सूक्ष्मसाम्परायसंयत किसे कहते हैं ?

समाधान—सूक्ष्म कषायको सूक्ष्मसाम्पराय कहते हैं। जिन संयतोंके सूक्ष्म कषाय होती है उन्हें सूक्ष्मसाम्परायसंयत कहते हैं। उनमें उपशमक और क्षपक दोनों होते हैं। इस गुणस्थानमें जीव कितनी ही प्रकृतियोंका क्षय करता है, आगे क्षय करेगा और पूर्वमें क्षय कर चुका, इसलिये इसमें क्षायिक भाव है। तथा कितनी ही प्रकृतियोंका उपशम करता है, आगे उपशम करेगा, और पहले उपशम कर चुका, इसलिये इसमें औपशमिक भाव है। सम्यग्दर्शनकी अपेक्षा क्षपकश्रेणिवाला

क्षायिक भाव सहित होता है और उपशमश्रेणिवाला औपशमिक तथा क्षायिक दोनों भावोंसे युक्त होता है, क्योंकि दोनों ही सम्यक्त्वोंसे उपशमश्रेणि चढ़ सकता है। इस गुणस्थानमें 'अपूर्व' और 'अनिवृत्ति' इन दोनों विशेषणोंकी अनुवृत्ति होती है। अतः पूर्व गुणस्थानोंसे इसमें सर्वथा भिन्न जातिके ही परिणाम होते हैं। कहा भी है—

पुव्वापुव्वय-फद्दय-अणुभागादो अणंतगुणहीणे।
लोहाणुम्हि ट्ठियओ हंद सुहमसांपराओ सो॥

'पूर्वस्पर्द्धक और अपूर्वस्पर्द्धकके अनुभागसे अनन्तगुणे हीन अनुभागवाले सूक्ष्म लोभमें जो स्थित है उसे सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानवर्ती समझना चाहिये।

अब उपशमश्रेणिके अन्तिम गुणस्थानको कहनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

उवसंत-कसाय-वीयराय-छदुमत्था ॥ १९ ॥

सामान्यसे उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ जीव हैं॥ १९॥

शंका—उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ किन्हें कहते हैं?

समाधान—जिनकी कषाय उपशान्त हो गई है उन्हें उपशान्तकषाय कहते हैं। और जिनका राग नष्ट हो गया है उन्हें वीतराग कहते हैं। ज्ञानावरण और दर्शनावरणको छद्म कहते हैं। उनमें जो रहते हैं उन्हें छद्मस्थ कहते हैं। जो वीतराग होते हुए भी छद्मस्थ होते हैं उन्हें वीत-राग छद्मस्थ कहते हैं। वीतराग विशेषणसे दसवें गुणस्थानतकके सराग छद्मस्थोंका निराकरण किया गया है। और उपशान्तकषाय विशेषणसे आगेके गुणस्थानका निराकरण किया गया है। जो उपशान्तकषाय होते हुए वीतराग छद्मस्थ होते हैं उन्हें उपशान्तकषाय वीतराग छद्मस्थ[1] कहते हैं। कहा भी है—

'कवक-फल-जुद-जलं वा सरए सरवाणियं व णिम्मलयं।
सयलोवसंतमोहो उवसंतकसायओ होदि॥

'निर्मली फलसे युक्त निर्मल जलकी तरह, अथवा शरद् ऋतुमें सरोवरके निर्मल जलकी तरह सम्पूर्ण मोहनीय कर्मके उपशमसे होनेवाले निर्मल परिणामोंको उपशान्तकषाय गुणस्थान कहते हैं।

अब निर्ग्रन्थ गुणस्थानका कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

खीण-कसाय-वीयराय-छदुमत्था ॥ २० ॥

सामान्यसे क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ जीव हैं॥ २०॥

शंका—क्षीणकषाय वीतराग छद्मस्थ किन्हें कहते हैं?

समाधान—जिनकी कषाय क्षीण हो गई है उन्हें क्षीणकषाय कहते हैं। जो क्षीणकषाय होते हुए वीतराग होते हैं उन्हें क्षीणकषायवीतराग कहते हैं। तथा जो क्षीणकषायवीतराग होते हुए छद्मस्थ होते हैं उन्हें क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ कहते हैं।

---

१. इस गुणस्थानका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् नियमसे इसका पतन होता है। पतनके दो कारण होते हैं—एक तो आयुका पूरा हो जाना, दूसरा गुणस्थानका काल पूरा हो जाना। यदि गुणस्थानका अन्तर्मुहूर्त काल पूरा हो जानेसे पतन होता है तो जिस क्रमसे श्रेणिपर चढ़ा है उसी क्रमसे गिरता है।

शंका—जो क्षीणकषाय होता है वह वीतराग अवश्य होता है। इसलिये वीतराग पदका ग्रहण करना निष्फल है ?

समाधान—इस गुणस्थानमें नाम, स्थापना और द्रव्यरूप क्षीणकषायका ग्रहण नहीं है किन्तु भावरूप क्षीणकषायका ही ग्रहण है यह बतलानेके लिये क्षीणकषायके साथ वीतराग पद दिया है।

शंका—पाँच भावोंमेंसे इस गुणस्थानमें कौन-सा भाव होता है ?

समाधान—इस गुणस्थानके पहले मोहनीय कर्मका सर्वथा नाश हो जाता है अतः इस गुणस्थानमें क्षायिक भाव रहता है। कहा भी है—

णिस्सेस-खीणमोहो फलियामल-भायणुदय-समचित्तो।
खीणकसाओ भण्णइ णिग्गंथो वीयराएहिं॥

'जिसने सम्पूर्ण मोहनीय कर्मको नष्ट कर दिया है, अतएव जिसका चित्त स्फटिक मणिके निर्मल भाजनमें रक्खे हुए जलके समान निर्मल है, ऐसे निर्ग्रन्थको वीतराग देवने क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती कहा है।

अब स्नातकोंके गुणस्थानका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

सजोगकेवली ॥ २१ ॥

सामान्यसे सयोगकेवली जीव हैं॥ २१॥

शंका—सयोगकेवली किन्हें कहते हैं ?

समाधान—'केवल' पदसे यहाँ केवलज्ञानका ग्रहण किया है। जिसमें इन्द्रिय, मन और प्रकाशकी अपेक्षा नहीं होती, उस असहाय ज्ञानको केवलज्ञान कहते हैं। और जिनके वह केवलज्ञान होता है उन्हें केवली कहते हैं। तथा मन, वचन और कायकी प्रवृत्तिको योग कहते हैं। और जिनके वह योग होता है उन्हें सयोग कहते हैं। इस तरह जो सयोग होते हुए केवली होते हैं उन्हें सयोगकेवली कहते हैं। इस गुणस्थानमें सयोगपद अन्तदीपक है अतः वह नीचेके सब गुणस्थानोंके सयोग होनेको सूचित करता है। चारों घातिया कर्मोंके क्षय कर देनेसे इस गुणस्थानमें क्षायिक भाव होता है। कहा भी है—

"केवल-णाण-दिवायर-किरण-कलावप्पणासि-अण्णाणो।
णव-केवल-लद्धुग्गम सुजणिय-परमप्प-ववएसो॥
असहाय-णाण-दंसण-सहिओ इदि केवली हु जोएण।
जुत्तो त्ति सजोगो इदि अणाइ-णिहणारिसे उत्तो॥

'केवलज्ञानरूपी सूर्यकी किरणोंके समूहसे जिसका अज्ञानरूपी अन्धकार सर्वथा नष्ट हो गया है, और जिसने नौ केवल लब्धियों (क्षायिक दान, क्षायिक लाभ, क्षायिक भोग, क्षयिक उपभोग, क्षायिक वीर्य, क्षायिक सम्यक्त्व, केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायिक चारित्र) के प्रकट होनेसे 'परमात्मा' नाम पा लिया है, वह असहाय ज्ञान और दर्शनसे युक्त होनेके कारण केवली, योगोंसे युक्त होनेके कारण सयोगी और घातिकर्मोंसे रहित होनेके कारण जिन कहा जाता है, ऐसा अनादि निधन आगममें कहा है।

अब पुष्पदन्तभट्टारक अन्तिम गुणस्थानका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

अयोगकेवली ॥ २२ ॥

सामान्यसे अयोगकेवली जीव हैं ॥ २२ ॥

शङ्का—अयोगकेवली किन्हें कहते हैं ?

समाधान—जिसके योग नहीं है उसे अयोग कहते हैं। जिसके केवलज्ञान पाया जाता है उसे केवली कहते हैं। जो योगरहित होते हुए केवली होता है उसे अयोगकेवली कहते हैं।

शङ्का—पांच भावोंमेंसे इस गुणस्थानमें कौन-सा भाव है ?

समाधान—सम्पूर्ण घातिया कर्मोंका क्षय हो जानेसे तथा अघातिया कर्मोंके भी नाशोन्मुख होनेसे इस गुणस्थानमें क्षायिक भाव है। कहा भी है—

सीलेसिं संपत्तो णिरुद्ध-णिस्सेस-आसवो जीवो।
कम्म-रय-विप्पमुक्को गय-जोगो केवली होई ॥

"जिन्होंने अट्ठारह हजार शीलके स्वामीपनेको प्राप्त कर लिया है, और सम्पूर्ण आस्रवका निरोध कर दिया है, जो नये बंधनेवाले कर्मोंसे रहित हैं, और योगसे रहित होते हुए केवलज्ञानी हैं उन्हें अयोगकेवली कहते हैं।

इस प्रकार ये चौदह गुणस्थान होते हैं।

मोक्षके लिये सीढ़ीरूप चौदह गुणस्थानोंका कथन करके अब संसारातीत गुणस्थानका कथन करनेके लिए सूत्र कहते हैं—

सिद्धा चेदि ॥ २३ ॥

सामान्यसे सिद्ध जीव हैं ॥ २३ ॥

शङ्का—सिद्ध किन्हें कहते हैं ?

समाधान—जिन्होंने समस्त कर्मोंको नष्ट कर दिया है, बाह्य पदार्थोंकी अपेक्षासे रहित स्वाभाविक अनन्त सुखको प्राप्त कर लिया है, जो सब गुणोंके निधान हैं, जिनको आत्माका आकार चरम शरीरसे कुछ न्यून है और लोकके अग्रभागमें रहते हैं उन्हें सिद्ध कहते हैं। कहा भी है—

अट्ठविह-कम्म-वियला सीदीभूदा णिरंजणा णिच्चा।
अट्ठगुणा किदकिच्चा लोयग्गणिवासिणो सिद्धा ॥

'जो ज्ञानावरण आदि आठों कर्मोंसे सर्वथा मुक्त हैं, सुख स्वरूप हैं, निरंजन हैं, नित्य हैं ज्ञान दर्शन सुख वीर्य, अव्याबाध, अवगाहन, सूक्ष्मत्व और अगुरुलघु इन आठ गुणोंसे युक्त हैं, कृतकृत्य हैं, और लोकके अग्रभागमें निवास करते हैं उन्हें सिद्ध कहते हैं।

चौदह गुणस्थानोंका सामान्य कथन करके अब विशेषरूपसे कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

आदेसेण गदियाणुवादेण अत्थि णिरयगदी तिरिक्खगदी मणुस्सगदी देवगदी सिद्धगदी चेदि ॥ २४ ॥

आदेशकी अपेक्षा गत्यनुवादसे नरकगति, तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति, देवगति और सिद्धगति हैं ॥ २४ ॥

शङ्का—गत्यनुवादका क्या अर्थ है ?

समाधान—गतिका लक्षण पहले कह आये हैं। आचार्यपरम्परासे आये प्रसिद्ध अर्थका तदनुसार कथन करना अनुवाद है। इस तरह गतिका आचार्यपरम्पराके अनुसार कथन करना गत्यनुवाद है।

शङ्का—नरकगति किसे कहते हैं ?

समाधान—जो नर अर्थात् प्राणियोंको यातना देता है, पीसता है उसे नरक कहते हैं। नरक एक कर्म है उससे जिनकी उत्पत्ति हो उन्हें नारक कहते हैं और उनकी गतिको नारक गति कहते हैं। अथवा, जो द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावमें परस्परमें रत नहीं हैं, अर्थात् परस्पर प्रेम नहीं करते उन्हें नरत कहते हैं और उनकी गतिको नरतगति कहते हैं। कहा भी है—

'ण रमंति जदो णिच्चं दव्वे खेत्ते य काल भावे य।
अण्णोण्णेहि य जम्हा तम्हा ते णारया भणिया॥

'यतः द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावमें वे परस्परमें कभी भी रमण नहीं करते, इसलिये उन्हें नारत कहते हैं।

शङ्का—तिर्यञ्चगति किसे कहते हैं ?

समाधान—तिर्यंगति नामकर्मके उदयसे प्राप्त हुए तिर्यञ्चपर्यायोंके समूहको तिर्यञ्चगति कहते हैं। अथवा जो तिरछे यानी कुटिल होते हैं उन्हें तिर्यञ्च कहते हैं और उनकी गति को तिर्यंगति कहते हैं। कहा भी है—

तिरियंति कुडिलभावं सुवियडसण्ण णिगिट्ठमण्णाणा।
अच्चंत-पावबहुला तम्हा तेरिच्छया भणिया॥

'जिनके मन और वचन कुटिल होते हैं, जिनकी आहार आदि संज्ञाएँ स्पष्ट होती हैं। तथा जो निकृष्ट अज्ञानी और अत्यधिक पापी होते हैं, उन्हें तिर्यञ्च कहते हैं।

शङ्का—मनुष्य गति किसे कहते हैं ?

समाधान—जो मनुष्यकी सम्पूर्ण पर्यायोंकी उत्पादक है उसे मनुष्यगति कहते हैं। अथवा मनुष्यगति नामकर्मके उदयसे प्राप्त मनुष्यपर्यायोंके समूहको मनुष्यगति कहते हैं। अथवा जो मनसे निपुण हैं उन्हें मनुष्य कहते हैं और उनकी गतिको मनुष्यगति कहते हैं। कहा भी है—

'मण्णंति जदो णिच्चं मणेण णिउणा मणुक्कडा जम्हा।
मणु-उब्भवा य सव्वे तम्हा ते माणुसा भणिया॥

'यतः जो सदा हेय-उपादेयका विचार करते हैं, मनसे गुण-दोषका विचार करनेमें निपुण हैं, अथवा जो मनसे उत्कृष्ट है, अथवा जो मनुसे उत्पन्न हुए हैं, इसलिये उन्हें मनुष्य कहते हैं।

शङ्का—देवगति किसे कहते हैं ?

समाधान—अणिमा आदि आठ ऋद्धियोंके बलसे जो क्रीड़ा करते हैं उन्हें देव कहते हैं। और देवोंकी गतिको देवगति कहते हैं। अथवा देवगति नामकर्मके उदयसे उत्पन्न हुई पर्यायको देवगति कहते हैं। कहा भी है—

'दिव्वंति जदो णिच्चं गुणेहि अट्ठेहिं य दिव्वभावेहिं ।
भासंतदिव्वकाया तम्हा ते वण्णिया देवा ।।

'यतः वे दिव्य स्वभाववाले आठ गुणोंके द्वारा निरन्तर क्रीड़ा करते हैं और उनका प्रकाशमान दिव्य शरीर है, इसलिये उन्हें देव कहते हैं।

शङ्का—सिद्धगति किसे कहते हैं ?

समाधान—आत्मस्वरूपकी प्राप्तिको अथवा अपने सम्पूर्ण गुणोंसे आत्मस्वरूपमें स्थित होने को सिद्धि कहते हैं। और सिद्धि स्वरूप गतिको सिद्धगति कहते हैं। कहा भी है—

'जाइ-जरा-मरण-भया संजोय-विओय-दुक्ख-सण्णाओ ।
रोगादिया य जिस्से ण संति सा होइ सिद्धगई ।।

'जिसमें जन्म, जरा, मरण, भय, संयोग, वियोग, दुःख, वाञ्छा और रोगादि नहीं होते उसे सिद्धगति कहते हैं।

मार्गणाके एकदेशरूप गतिका सद्भाव बताकर अब उसमें गुणस्थानोंकी खोज करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

णेरइया चउट्ठाणेसु अत्थि मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी असंजद-सम्माइट्ठि त्ति ।। २५ ।।

नारकी मिथ्यादृष्टि, सासादन सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, और असंयत सम्यग्दृष्टि इन चार गुणस्थानोंमें होते हैं ।। २५ ।।

शंका—जिन मनुष्य या तिर्यञ्चोंने पहले नरकायुका बन्ध किया और पीछेसे सम्यग्दर्शन प्राप्त किया, उन बद्धायुष्क सम्यग्दृष्टियोंकी नरकमें उत्पत्ति होती है। इसलिये नरकमें असंयत सम्यग्दृष्टि भले ही पाये जायें। परन्तु सासादन गुणस्थानवाले मरकर नरकमें उत्पन्न नहीं होते, इसलिये सासादन गुणस्थानवालोंका नरकमें सद्भाव कैसे पाया जा सकता है ?

समाधान—नारकियोंके पर्याप्त अवस्थामें दूसरा गुणस्थान हो सकता है। जिस तरह नारकियोंके अपर्याप्तकालके साथ सासादन गुणस्थानका विरोध है उस तरह पर्याप्त कालके साथ सासादन गुणस्थानका विरोध नहीं है।

शंका—तो फिर नरकगतिमें पर्याप्त अवस्थामें सम्यग्दर्शनकी भी उत्पत्ति माननी चाहिये ?

समाधान—सो तो मानते ही हैं, सातों नरकोंमें पर्याप्त अवस्थामें सम्यग्दर्शनकी उत्पत्ति मानी गई है।

शंका—जिस प्रकार सासादन सम्यग्दृष्टि मरकर नरकमें उत्पन्न नहीं होते उसी प्रकार सम्यग्दृष्टियोंको मरकर नरकमें उत्पत्ति नहीं होनी चाहिये ?

समाधान—सम्यग्दृष्टि मरकर प्रथम नरकमें उत्पन्न हो सकते हैं आगे नहीं उत्पन्न हो सकते।

शंका—सम्यग्दर्शनके सामर्थ्यसे मिथ्यादृष्टि अवस्थामें बांधी हुई नरकायुका छेद क्यों नहीं होता ?

समाधान—छेद तो अवश्य होता है, परन्तु बांधी हुई आयुका समूल नाश नहीं होता।

तिर्यञ्च गतिमें गुणस्थानोंके अन्वेषणके लिये सूत्र कहते हैं—

तिरिक्खा पंचसु ट्ठाणेसु अत्थि मिच्छाइट्ठी, सासणसम्माइट्ठी, सम्मामिच्छाइट्ठी, असंजदसमाइट्ठी संजदासंजदा त्ति ॥ २६ ॥

तिर्यञ्च मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टी, असंयतसम्यग्दृष्टी और संयतासंयत इन पांच गुणस्थानोंमें होते हैं ॥ २६ ॥

शंका—तिर्यञ्च पांच प्रकारके कहे हैं—सामान्य तिर्यञ्च, पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च, पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यञ्चिनी और पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त तिर्यञ्च। इन पांच भेदोंमेंसे किस भेदमें पूर्वोक्त पांच गुणस्थान होते हैं ?

समाधान—अपर्याप्त पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंमें तो पांच गुणस्थान नहीं होते, क्योंकि लब्ध्यपर्याप्तकोंमें एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान ही होता है। शेष चार प्रकारके तिर्यञ्चोंमें पाँचों ही गुणस्थान होते हैं। किन्तु इतना विशेष है कि तिर्यञ्चनियोंके अपर्याप्त अवस्थामें मिथ्यादृष्टि और सासादन ये दो गुणस्थान ही होते हैं, शेष तीन गुणस्थान नहीं होते।

शङ्का—तिर्यञ्चनियोंके अपर्याप्त अवस्थामें सम्यग्मिथ्यादृष्टि और संयतासंयत इन दो गुणस्थानोंका अभाव भले ही रहो, क्योंकि ये दोनों गुणस्थान पर्याप्त अवस्थामें ही होते हैं। परन्तु उनमें अपर्याप्त अवस्थामें असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानका अभाव कैसे माना जा सकता है ?

समाधान—स्त्रीवेदवाले तिर्यञ्चों-तिर्यञ्चनियोंमें असंयत सम्यग्दृष्टियोंकी उत्पत्ति नहीं होती, इसलिये उनके अपर्याप्त कालमें चौथा गुणस्थान नहीं पाया जाता। आगममें कहा है—

"छसु हेट्ठिमासु पुढवीसु जोइस-वण-भवण-सव्वइत्थीसु।"
णेदेसु समुप्पज्जइ सम्माइट्ठी दु जो जीवो ॥

'जो सम्यग्दृष्टि जीव होता है, वह प्रथम पृथिवीके बिना नीचेकी छै पृथिवियोंमें ज्योतिषी, व्यन्तर और भवनवासी देवोंमें, तथा सब प्रकारकी स्त्रियोंमें उत्पन्न नहीं होता'।

अब मनुष्यगतिमें गुणस्थानोंके अन्वेषणके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

मणुस्सा चोद्दससु गुणट्ठाणेसु अत्थि मिच्छाइट्ठी, सासणसम्माइट्ठी, सम्मामिच्छाइट्ठी, असंजदसम्माइट्ठी, संजदासंजदा, पमत्तसंजदा, अप्पमत्तसंजदा, अपुव्वकरण-पविट्ठसुद्धिसंजदेसु अत्थि उवसमा खवा, अणियट्टिबादरसांपराइयपविट्ठसुद्धिसंजदेसु अत्थि उवसमा खवा, सुहुमसांपराइयपविट्ठ-सुद्धिसंजदेसु अत्थि उवसमा खवा, उवसंत-कसायवीयराय-छदुमत्था, खीणकसाय-वीयराय-छदुमत्था, सजोगिकेवली, अजोगि-केवलि त्ति ॥ २७ ॥

मनुष्य मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयत सम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत, अपूर्वकरणप्रविष्टशुद्धिसंयतोंमें उपशमक और क्षपक, अनिवृतिबादर साम्पराय-प्रविष्ट-शुद्धिसंयतोंमें उपशमक और क्षपक, सूक्ष्मसाम्परायप्रविष्टशुद्धिसंयतोंमें उपशमक

और क्षपक, उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ, क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ, सयोगिकेवली और अयोगिकेवली, इन चौदह गुणस्थानोंमें पाये जाते हैं ॥ २७ ॥

अब देवगतिमें गुणस्थानोंका अन्वेषण करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

देवा चदुसु ट्ठाणेसु अत्थि मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी, सम्मामिच्छाइट्ठी असंजदसम्माइट्ठि त्ति ॥ २८ ॥

देव मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि इन चार गुणस्थानोंमें पाये जाते हैं ॥ २८ ॥

शंका—जिनमें अथवा जिनके द्वारा जीवोंकी खोज की जाती हैं उन्हें मार्गणा कहते हैं। इस प्रकार पहले मार्गणाशब्दकी निरुक्ति की है। किन्तु सूत्रोंमें तो इतने गुणस्थानोंमें नारकी होते हैं, इतनेमें तिर्यञ्च होते हैं, इतनेमें मनुष्य होते हैं और इतनेमें देव होते हैं इस प्रकार गुणस्थानोंमें मार्गणाओंको खोजा गया है। इसलिये मार्गणाशब्दकी निरुक्ति आगमविरुद्ध क्यों नहीं है ?

समाधान—मार्गणाकी उक्त निरुक्ति आगमविरुद्ध नहीं है; क्योंकि भगवान् भूतबलिने 'नरकगतिमें नारकियोंमें मिथ्यादृष्टि द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ?' इस प्रकार गुणस्थानोंका अवलम्बन लेकर संख्या आदिका प्रतिपादन किया है। और उसीके आधारसे मार्गणाशब्दकी उक्त निरुक्तिका अवतार हुआ है।

शंका—तो फिर भूतबलि और पुष्पदन्तके वचनोंमें विरोध क्यों न माना जाये ?

समाधान—दोनोंके वचनोंमें कोई विरोध नहीं है; क्योंकि जब सामान्यरूपसे जाने गये गुणस्थानोंकी विवक्षा होती है तो गुणस्थान आधार हो जाते हैं और मार्गणाएं आधेय होती हैं। और जब सामान्यरूपसे जानी गई मार्गणाओंकी विवक्षा होती है तो मार्गणाएँ आधार हो जाती हैं और गुणस्थान आधेय हो जाते हैं। इस प्रकार सामान्यरूपसे ज्ञात और विशेषरूपसे अज्ञात गुणस्थानों और मार्गणाओंमें विवक्षाके अनुसार आधार-आधेयभाव बन जाता है। इसलिये आचार्य पुष्पदन्त और भूतबलिके वचनोंमें कोई विरोध नहीं है ॥

पूर्व सूत्रोंमें कहे गये अर्थका विशेष कथन करनेके लिये आगेके चार सूत्र कहते हैं—

तिरिक्खा सुद्धा एइंदियप्पहुडि जाव असण्णिपंचिंदिया त्ति ॥ २९ ॥

एकेन्द्रियसे लेकर असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय तकके जीव शुद्ध तिर्यञ्च होते हैं ॥ २९ ॥

शंका—यह सूत्र क्यों कहा ?

समाधान—यदि यह सूत्र न कहते तो 'एकेन्द्रियसे लेकर असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय तकके जीव इसी गतिमें होते हैं, इस बातके जाननेका कोई दूसरा उपाय नहीं था। अतः उक्त बातको जतानेके लिये उक्त सूत्र कहा है।

असाधारण (शुद्ध) तिर्यञ्चोंका प्रतिपादन कर अब साधारण (मिश्र) तिर्यञ्चोंका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

तिरिक्खा मिस्सा सण्णिमिच्छाइट्ठि पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति ॥ ३० ॥

संज्ञीपञ्चेन्द्रिय मिथ्यादृष्टिसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक तिर्यञ्च मिश्र होते हैं ॥३०॥

शंका—तिर्यञ्चोंका किसी भी गतिवाले जीवोंके साथ मिश्रण समझमें नहीं आता। अतः इस मिश्रणका क्या अभिप्राय है?

समाधान—मिश्रणका अभिप्राय गुणकृत समानतासे है। अर्थात् मिथ्यादृष्टि, सासादन-सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टिरूप गुणोंकी अपेक्षा तो तिर्यञ्च तीन गतिके जीवोंके साथ समानता रखते हैं और संयमासंयम गुणकी अपेक्षा तिर्यञ्च मनुष्योंके साथ समानता रखते हैं।

शंका—गतिमार्गणाके कथनमें बतलाया है कि इस गतिमें इतने गुणस्थान होते हैं और इतने नहीं होते। उसीसे यह ज्ञात हो जाता है कि इस गतिके साथ गुणस्थानोंकी अपेक्षा समानता है और इसकी इसके साथ समानता नहीं है। अतः फिरसे इसका कथन करना व्यर्थ क्यों नहीं है?

समाधान—अल्पबुद्धि वाले शिष्योंको भी विषयका स्पष्टीकरण हो जाये, इसलिये यहाँ इसका कथन किया है। अथवा गुणस्थानों और मार्गणाओंमें जीवोंका अन्वेषण करनेके लिये उक्त सूत्र कहा है।

आगे गुणस्थानोंके द्वारा मनुष्योंकी समानता अथवा असमानताका कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

मणुस्सा मिस्सा मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति ॥ ३१ ॥

मिथ्यादृष्टिसे लेकर संयतासंयत तकके मनुष्य मिश्र हैं। अर्थात् मिथ्यादृष्टि आदि चार गुण स्थानोंकी अपेक्षा मनुष्य तीन गतिके जीवोंके साथ समान हैं और संयमासंयम गुणस्थानकी अपेक्षा तिर्यञ्चोंके साथ समान हैं॥ ३१ ॥

तेण परं सुद्धा मणुस्सा ॥ ३२ ॥

पांचवें गुणस्थानसे आगे शुद्ध (केवल) मनुष्य हैं॥ ३२ ॥

शंका—देवगति और नरकगतिके जीवोंकी अन्य गतिके जीवोंके साथ समानता और असमानता नहीं बतलाई?

समाधान—तिर्यञ्च और मनुष्य सम्बन्धी प्ररूपणाओंके द्वारा ही उसका ज्ञान हो जाता है। अतः उसका अलग कथन करनेकी आवश्यकता नहीं है।

अब इन्द्रियमार्गणामें गुणस्थानोंके अन्वेषणके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

इंदियाणुवादेण अत्थि एइंदिया वीइंदिया तीइंदिया चदुरिंदिया पंचिंदिया अणिंदिया चेदि ॥ ३३ ॥

इन्द्रियमार्गणाकी अपेक्षा एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय और अनिन्द्रिय जीव हैं॥ ३३ ॥

शङ्का—इन्द्रिय किसे कहते हैं?

समाधान—ऐश्वर्यशाली होनेसे आत्माको इन्द्र कहते हैं। उस इन्द्रके लिंग (चिन्ह) को इन्द्रिय कहते हैं। अथवा नामकर्मको इन्द्र कहते हैं और उससे जो रची जावे उसे इन्द्रिय कहते हैं।

शङ्का—इन्द्रियके कितने भेद हैं?

समाधान—दो भेद हैं—द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय।

शंका—द्रव्येन्द्रिय किसे कहते हैं ?

समाधान—निर्वृत्ति और उपकरणको द्रव्येन्द्रिय कहते हैं।

शङ्का—निर्वृत्ति किसे कहते हैं ?

समाधान—जो कर्मके द्वारा रची जाये उसे निर्वृत्ति कहते हैं। उसके दो भेद हैं—बाह्य निर्वृत्ति और आभ्यन्तर निर्वृत्ति।

शङ्का—आभ्यन्तर निर्वृत्ति किसे कहते हैं ?

समाधान—प्रतिनियत चक्षु आदि इन्द्रियोंके आकार रूप परिणत हुए लोक प्रमाण अथवा उत्सेधांगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण विशुद्ध आत्म प्रदेशोंकी रचनाको आभ्यन्तर निर्वृत्ति कहते हैं।

शंका—जिस प्रकार स्पर्शन इन्द्रियका क्षयोपशम सम्पूर्ण आत्मप्रदेशोंमें होता है उसी प्रकार चक्षु आदि इन्द्रियोंका क्षयोपशम भी क्या सम्पूर्ण आत्मप्रदेशोंमें होता है या नियत आत्म-प्रदेशोंमें होता है ? आत्माके सम्पूर्ण प्रदेशोंमें क्षयोपशम होता है, यह तो माना नहीं जा सकता; क्योंकि ऐसा माननेपर आत्माके सम्पूर्ण अवयवोंसे रूपादिका बोध होनेका प्रसंग आजायगा। और यदि आत्माके प्रतिनियत प्रदेशोंमें चक्षु आदि इन्द्रियोंका क्षयोपशम माना जाता है तो सिद्धान्तमें आत्मप्रदेशोंको चल, अचल और चलाचल बतलाया है। अतः आत्मप्रदेशोंके चल होनेपर चक्षु आदि इन्द्रियां रूपादिको ग्रहण नहीं कर सकेंगी ?

समाधान—प्रत्येक इन्द्रियका क्षयोपशम जीवके सम्पूर्ण प्रदेशोंमें होता है, फिर भी जीवके सम्पूर्ण प्रदेशोंके द्वारा रूप आदिको उपलब्धिका प्रसंग नहीं आता, क्योंकि रूप आदिके ग्रहण करनेमें बाह्य निर्वृत्ति भी सहायक है, किन्तु बाह्य निर्वृत्ति जीवके सम्पूर्ण प्रदेशोंमें नहीं पाई जाती।

शङ्का—बाह्य निर्वृत्ति किसे कहते हैं ?

समाधान—इन्द्रियसंज्ञावाले उन आत्मप्रदेशोंके प्रतिनियत स्थानमें पुद्गलोंको इन्द्रिया-कार रचनाको बाह्य निर्वृत्ति कहते हैं। चक्षु इन्द्रियकी बाह्य निर्वृत्ति मसूरके समान आकारवाली होती है, श्रोत्र इन्द्रियकी बाह्य निर्वृत्ति जोकी नालोके समान आकार वाली होती है, घ्राण इन्द्रिय-की बाह्य निर्वृत्ति तिलपुष्पके समान आकार वाली होती है, रसना इन्द्रियकी निर्वृत्ति खुरपाके सामान आकार वाली होती है और स्पर्शन इन्द्रियकी बाह्य निर्वृत्तिका कोई निश्चित आकार नहीं होता; जिसके शरीरका जैसा आकार होता है, वैसा ही आकार उसकी स्पर्शन इन्द्रियकी बाह्य निर्वृत्तिका होता है। कहा भी है—

जवणालिया मसूरी चंदद्धइमुत्तफुल्लतुल्लाइं।
इंदियसंठाणाइं पस्सं पुण णेयसंठाणं॥

"श्रोत्र इन्द्रियका आकार जवकी नालीके समान, चक्षु इन्द्रियका मसूरके समान, रसना इन्द्रियका अर्द्धचन्द्रके समान, घ्राण इन्द्रियका तिलपुष्पके समान आकार है और स्पर्शन इन्द्रिय अनेक आकार वाली है।

शङ्का—उपकरण किसे कहते हैं ?

समाधान—जो निर्वृत्तिका उपकार करता है उसे उपकरण कहते हैं। उसके दो भेद हैं—

बाह्य उपकरण और आभ्यन्तर उपकरण। नेत्र इन्द्रियका अभ्यन्तर उपकरण कृष्ण और शुक्ल मण्डल है और बाह्य उपकरण दोनों पलक और उनकी बरौनी है।

शंका—भावेन्द्रिय किसे कहते हैं ?

समाधान—लब्धि और उपयोगको भावेन्द्रिय कहते हैं।

शंका—लब्धि किसे कहते हैं ?

समाधान—ज्ञानावरणकर्मके क्षयोपशम विशेषको लब्धि कहते हैं। उसके होनेपर ही आत्मा के द्रव्येन्द्रियोंकी रचना होती है।

शंका—उपयोग किसे कहते हैं ?

समाधान—उस लब्धिके निमित्तसे आत्माका जो परिणमन होता है वह उपयोग है। अर्थात् लब्धिके होनेपर आत्मा जो ज्ञेय पदार्थकी ओर अभिमुख होता है वह उपयाग है।

शंका—उपयोगकी उत्पत्ति इन्द्रियोंसे होती है, इसलिये उपयोग इन्द्रियका फल है, उसको इन्द्रिय कहना उचित नहीं है ?

समाधान—कारणका धर्म कार्यमें देखा जाता है, जैसे घटके आकार परिणत हुए ज्ञानको घट कहते हैं वैसे ही इन्द्रियोंसे उत्पन्न हुए उपयोगको भी इन्द्रिय कहा है। दूसरे, इन्द्र (आत्मा) के लिंगको इन्द्रिय कहते हैं, यह इन्द्रियशब्दका अर्थ किया है। यह अर्थ उपयोगमें मुख्यतासे पाया जाता है। अतः उपयोगको इन्द्रिय कहना उचित है।

शंका—इन्द्रियाँ कितनी हैं ?

समाधान—इन्द्रियाँ पाँच हैं—स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र।

शङ्का—किस इन्द्रियका क्या विषय है ?

समाधान—स्पर्शन इन्द्रियका विषय स्पर्श है, रसना इन्द्रियका विषय रस है, घ्राण इन्द्रियका विषय गन्ध है, चक्षुका विषय रूप है और श्रोत्रका विषय शब्द है।

शङ्का—प्रत्येक इन्द्रियका क्या स्वरूप है ?

समाधान—वीर्यान्तराय और स्पर्शनेन्द्रियावरण कर्मका क्षयोपशम तथा अंगोपांग नामकर्मका उदय होनेपर जिसके द्वारा आत्मा स्पर्शको ग्रहण करता है उसे स्पर्शन इन्द्रिय कहते हैं। वीर्यान्तराय और रसनेन्द्रियावरण कर्मका क्षयोपशम तथा अंगोपांग नामकर्मका उदय होनेपर जिसके द्वारा स्वादको ग्रहण करता है उसे रसना इन्द्रिय कहते हैं। वीर्यान्तराय और घ्राणेन्द्रियावरण कर्मका क्षयोपशम तथा अंगोपांग नामकर्मका उदय होने पर जिसके द्वारा गन्धको जानता है उसे घ्राण इन्द्रिय कहते हैं। इसी तरह शेष दो इन्द्रियोंका भी स्वरूप समझ लेना चाहिये।

शङ्का—स्पर्शन इन्द्रियकी उत्पत्ति किन कारणोंसे होती है ?

समाधान—वीर्यान्तराय और स्पर्शनेन्द्रियावरण कर्मका क्षयोपशम, रसना आदि शेष इन्द्रियावरण कर्मके सर्वघाती स्पर्द्धकोंका उदय, और एकेन्द्रियजातिनाम कर्मका उदय होने पर एक स्पर्शन इन्द्रिय उत्पन्न होती है। इसी प्रकार शेष इन्द्रियोंकी उत्पत्ति समझ लेनी चाहिये।

शंका—एकेन्द्रिय जीव कौन-कौनसे हैं ?

समाधान—पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक, ये पाँच एकेन्द्रिय जीव हैं, इनके एक स्पर्शन इन्द्रिय ही होती है। कहा भी है—

जाणदि, पस्सदि, भुंजदि, सेवदि, पस्सिदिएण एक्केण।
कुणदि य तस्सामित्तं थावरु एइन्द्रियो तेण॥

'यतः स्थावर जीव एक स्पर्शन इन्द्रियके द्वारा ही जानता है, देखता है, खाता है, सेवन करता है और उसका स्वामित्व करता है, इसलिये उसे स्थावर एकेन्द्रिय कहते हैं।'

एइंदियस्स फुसणं एक्कं वि य होदि सेसजीवाणं।
होंति कम उड्ढियाइं जिब्भाघाणाक्खिसोत्ताइं॥

'एकेन्द्रिय जीवके एक स्पर्शन इन्द्रिय ही होती है, और शेष जीवोंके क्रमसे बढ़ती हुई जिह्वा घ्राण, आँख और श्रोत्र इन्द्रियाँ होती हैं।

शंका—दो इन्द्रिय जीव किन्हें कहते हैं?

समाधान—जिनके स्पर्शन और रसना ये दो इन्द्रियाँ होती हैं उन्हें दोइन्द्रिय जीव कहते हैं, जैसे शंख, सीप, कृमि वगैरह।

शंका—तेइन्द्रिय जीव किन्हें कहते हैं?

समाधान—जिनके स्पर्शन, रसना, घ्राण ये तीन इन्द्रियाँ होती हैं उन्हें तेइन्द्रिय जीव कहते हैं, जैसे खटमल, चिउंटी, बिच्छु, कानखजूरा वगैरह।

शंका—चौइन्द्रिय जीव किन्हें कहते हैं?

समाधान—जिनके स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु ये चार इन्द्रियाँ होती हैं उन्हें चौइन्द्रिय जीव कहते हैं, जैसे मच्छर, मक्खी, मकड़ी, भौंरा वगैरह।

शंका—पञ्चेन्द्रिय जीव किन्हें कहते हैं?

समाधान—जिनके स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र ये पाँचों इन्द्रियाँ होती हैं उन्हें पञ्चेन्द्रिय जीव कहते हैं, जैसे पशु, पक्षी, मनुष्य वगैरह। कहा भी है—

शङ्का—अनिन्द्रिय जीव कौनसे हैं?

समाधान—शरीर रहित मुक्त जीवोंके एक भी इन्द्रिय नहीं होती। कहा भी है—

"ण वि इंदियकरणजुदा, अवग्गहादीहि गाहया अत्थे।
णेव य इंदियसोक्खा अणिंदियाणंत-णाण-सुहा"॥

'मुक्त जीव इन्द्रियोंके व्यापारसे युक्त नहीं हैं, वे अवग्रह आदि ज्ञानोंके द्वारा पदार्थोंको ग्रहण नहीं करते। उनके इन्द्रियसुख भी नहीं है; क्योंकि उनका अनन्त ज्ञान और अनन्त सुख अनिन्द्रिय है।

एकेन्द्रिय जीवोंके भेद कहनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

एइंदिया दुविहा बादरा सुहुमा। बादरा दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता। सुहुमा दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता॥ ३४॥

जीव दो प्रकारके हैं—बादर और सूक्ष्म। बादर एकेन्द्रिय दो प्रकारके हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त। सूक्ष्म एकेन्द्रिय दो प्रकारके हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त ॥ ३४ ॥

शंका—बादर और सूक्ष्म जीव किन्हें कहते हैं।

समाधान—जिन जीवोंके बादर नामकर्मका उदय पाया जाता है वे बादर हैं और जिन जीवोंके सूक्ष्म नामकर्मका उदय पाया जाता है वे सूक्ष्म हैं।

शंका—सूक्ष्म नामकर्मके उदय और बादर नामकर्मके उदयमें क्या भेद है?

समाधान—बादर नामकर्मके उदयसे उत्पन्न होनेवाला शरीर अन्य मूर्तिक पदार्थोंसे आघात करने योग्य होता है और सूक्ष्म नामकर्मके उदयसे उत्पन्न होनेवाला शरीर अन्य मूर्तिक पदार्थोंसे आघात नहीं करने योग्य होता है, यही दोनोंमें भेद है।

शङ्का—पर्याप्त किन्हें कहते हैं?

समाधान—जो पर्याप्त नामकर्मके उदयसे युक्त हैं उन्हें पर्याप्त कहते हैं।

शङ्का—पर्याप्तियां कितनी हैं?

समाधान—पर्याप्तियां छह हैं—आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति, श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति, भाषापर्याप्ति और मनःपर्याप्ति।

शङ्का—आहारपर्याप्ति किसे कहते हैं?

समाधान—शरीर नामकर्मके उदयसे, आत्मासे व्याप्त आकाश क्षेत्रमें स्थित आहारवर्गणा सम्बन्धी पुद्गल स्कन्ध आत्माके साथ सम्बन्धको प्राप्त होते हैं। खल-भाग और रसभागरूप परिणमन करनेकी शक्तिको लिये हुए उन पुद्गलस्कन्धोंकी प्राप्तिको आहारपर्याप्ति कहते हैं। यह आहारपर्याप्ति शरीरको ग्रहण करनेके प्रथम समयसे लेकर एक अन्तर्मुहूर्तमें निष्पन्न होती है।

शङ्का—शरीरपर्याप्ति किसे कहते हैं?

समाधान—खलभागके हड्डी आदि कठिन अवयवों और रसभागके रुधिर, चर्बी, वीर्य, आदि द्रव अवयवोंके द्वारा औदारिक आदि तीन शरीररूप परिणमन करनेकी शक्तिसे युक्त पुद्गल स्कन्धोंकी प्राप्तिको शरीरपर्याप्ति कहते हैं। वह शरीरपर्याप्ति आहारपर्याप्तिके पश्चात् एक अन्तर्मुहूर्तमें पूर्ण होती हैं।

शंका—इन्द्रियपर्याप्ति किसे कहते हैं?

समाधान—अपने योग्य देशमें स्थित मूर्तिक पदार्थोंको ग्रहण करने रूप शक्तिकी उत्पत्तिमें निमितभूत पुद्गलोंकी प्राप्तिको इन्द्रियपर्याप्ति कहते हैं। यह इन्द्रियपर्याप्ति भी शरीरपर्याप्तिके पश्चात् एक अन्तर्मुहूर्तमें पूर्ण होती है। परन्तु इन्द्रियपर्याप्तिके पूर्ण हो जानेपर भी उसी समय बाह्य पदार्थोंका ज्ञान नहीं होता; क्योंकि उस समय उसके द्रव्येन्द्रिय नहीं होती।

शंका—श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति किसे कहते हैं?

समाधान—उच्छ्वास और निश्वासरूप शक्तिकी पूर्णतामें निमित्तभूत पुद्गलोंकी प्राप्तिको श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति कहते हैं। यह पर्याप्ति भी इन्द्रियपर्याप्तिके पश्चात् एक अन्तर्मुहूर्तकाल बीतने पर पूर्ण होती है।

शंका—भाषापर्याप्ति किसे कहते हैं?

समाधान—भाषावर्गणाके स्कन्धोंको चार प्रकारकी भाषारूपसे परिणमन करानेकी शक्तिमें

निमित्तभूत नोकर्म पुद्गलोंको प्राप्तिको भाषापर्याप्ति कहते हैं। यह पर्याप्ति भी श्वासोच्छ्वासपर्याप्तिके पश्चात् एक अन्तर्मुहूर्तसे पूर्ण होती है।

शंका—मनःपर्याप्ति किसे कहते हैं?

समाधान—अनुभूत अर्थमें स्मरणरूप शक्तिमें निमित्त, मनोवर्गणाके स्कन्धोंसे निष्पन्न पुद्गलोंकी प्राप्तिको मनः पर्याप्ति कहते हैं। इन छहों पर्याप्तियोंका आरम्भ एक साथ होता है, क्योंकि जन्मसे इनका अस्तित्व पाया जाता है। परन्तु पूर्णता क्रमसे होती है।

शंका—पर्याप्ति और प्राणमें क्या भेद है?

समाधान—आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मनरूप शक्तियोंको पूर्णताके कारणको पर्याप्ति कहते हैं। और जिनके द्वारा आत्मा जीता है उन्हें प्राण कहते हैं। वे प्राण १० हैं—पांच इन्द्रियां, मनोबल, वचनबल, कायबल, श्वासोच्छ्वास और आयु।

शंका—पांचों इन्द्रियां, आयु और काय बलको प्राण कहा जा सकता है; क्योंकि वे जीवन पर्यन्त पाये जाते हैं, और उनमेंसे किसी एकका अभाव होनेपर मरण तक देखा जाता है। परन्तु उच्छ्वास, मनोबल और वचनबलको प्राण नहीं कहा जा सकता; क्योंकि इनके बिना भी अपर्याप्त अवस्थामें जीवन पाया जाता है।

समाधान—पर्याप्त अवस्थामें उच्छ्वास, वचन बल और मनोबलके बिना जीवन नहीं पाया जाता, इसलिये उन्हें प्राण माननेमें कोई विरोध नहीं है। कहा भी है—

बाहिरपाणेहिं जहा तहेव अब्भंतरेहि पाणेहि।
जीवंति जेहि जीवा पाणा ते होंति बोद्धव्वा॥

जिस प्रकार बाह्य प्राणोंसे जीव जीते हैं, उसी प्रकार जिन आभ्यन्तर प्राणोंसे जीवमें जीवितपनेका व्यवहार हो, उन्हें प्राण कहते हैं।

शंका—तब तो पर्याप्ति और प्राणमें केवल नाममात्रका भेद है?

समाधान—पर्याप्ति और प्राणमें कारण और कार्यका भेद है।

शंका—अपर्याप्ति किसे कहते हैं?

समाधान—पर्याप्तियोंकी अपूर्णताको अपर्याप्ति कहते?

एकेन्द्रियोंके भेद कहकर अब दोइन्द्रिय आदि जीवोंके भेदोंका कथन करनेके सूत्र कहते हैं—

बीइंदिया दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता। तिइंदिया दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता। चउरिंदिया दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता। पंचिंदिया दुविहा सण्णी असण्णी। सण्णी दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता। असण्णी दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता चेदि ॥३५॥

दो इन्द्रिय जीव दो प्रकारके हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक। तेइन्द्रिय जीव दो प्रकारके हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक। चौइन्द्रिय जीव दो प्रकारके हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक। पञ्चेन्द्रिय जीव दो प्रकारके हैं—संज्ञी और असंज्ञी। संज्ञी जीव दो प्रकारके हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक। असंज्ञी जीव दो प्रकारके हैं पर्याप्तक और अपर्याप्तक॥ ३५॥

शंका—संज्ञी किसे कहते ?

समाधान—मनसहित जीवोंको संज्ञी कहते हैं और मनरहित जीवोंको असंज्ञी कहते हैं। मनके दो भेद हैं—द्रव्यमन और भावमन। पुद्‌गलविपाकी अंगोपांग नामकर्मके उदयकी अपेक्षा हृदयमें खिले हुए आठ पांखुरीके कमलकी तरह द्रव्यमन होता है। और वीर्यान्तरायँ तथा नोइन्द्रियावरणकर्मके क्षयोपशमरूप जो विशुद्धि आत्मामें होती है वह भावमन है।

शंका—मनको इन्द्रिय क्यों नहीं कहा ?

समाधान—इन्द्र अर्थात् आत्माके लिंगको इन्द्रिय कहते हैं। और परमेश्वररूप शक्तिके कारण जो इन्द्र नामको धारण करता है परन्तु कर्मबन्धनसे बद्ध होनेसे स्वयं पदार्थोंको ग्रहण करनेमें असमर्थ है, ऐसे उपभोक्ता आत्माके उपयोगमें जो उपकरण (सहायक) है उसे लिंग कहते हैं। किन्तु मनके द्वारा होनेवाले उपयोगमें कोई उपकरण नहीं है इसलिये उसे इन्द्रिय नहीं कहा।

शंका—मनके द्वारा होनेवाले उपयोगका उपकरण द्रव्यमन तो है ?

समाधान—जिस प्रकार शेष इन्द्रियोंका बाह्य इन्द्रियोंसे ग्रहण होता है उस प्रकार मनका ग्रहण नहीं होता, इसलिये मनको इन्द्रका लिंग नहीं कह सकते।

शंका—पदार्थ, प्रकाश, मन और चक्षुसे होनेवाला रूपज्ञान संज्ञी जीवोंमें पाया जाता है। परन्तु असंज्ञी जीवोंमें वह रूपज्ञान कैसे हो सकता है ?

समाधान—संज्ञी जीवोंके रूपज्ञानसे असंज्ञी जीवोंका रूपज्ञान भिन्न ही प्रकारका होता है।

अब इन्द्रियोंमें गुणस्थानोंकी संख्या बतलानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

एइंदिया बीइंदिया तीइंदिया चउरिंदिया असण्णिपंचिंदिया एक्कम्मि चेव मिच्छाइट्ठि-ट्ठाणे ॥ ३६ ॥

एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और असंज्ञीपञ्चेन्द्रिय जीव एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें ही होते हैं ॥ ३६ ॥

शङ्का—एकेन्द्रियोंमें सासादन गुणस्थान भी सुना जाता है। अतः केवल एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान कहनेसे वह कैसे बन सकेगा ?

समाधान—इस सूत्रग्रन्थमें एकेन्द्रियोंके सासादन गुण स्थानका निषेध किया है।

शंका—जब दोनों वचन परस्पर विरोधी हैं तो उन दोनोंको सूत्र कैसे माना जा सकता है ?

समाधान—दोनों वचन सूत्र नहीं हो सकते, दोनोंमेंसे एकको ही सूत्र माना जा सकता है ?

शङ्का—तब इसका निर्णय कैसे किया जाये कि दोनोंमेंसे अमुक कथन सूत्ररूप है ?

समाधान—उपदेशके बिना दोनोंमेंसे कौन कथन सूत्ररूप है, यह नहीं जाना जा सकता। इसलिये दोनोंका ही संग्रह करना उचित है।

पञ्चेन्द्रियोंमें गुणस्थानोंकी संख्या बतलानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

पंचिंदिया असण्णिपंचिंदियप्पहुडि जाव आयोगकेवलि त्ति ॥ ३७ ॥

असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगकेवली गुणस्थान तक पञ्चेन्द्रिय जीव होते हैं ॥ ३७ ॥

शङ्का—असंज्ञीसे लेकर अयोगकेवली पर्यन्त जीव पांच द्रव्येन्द्रियोंसे युक्त होनेके कारण पञ्चेन्द्रिय हैं अथवा पांच भावेन्द्रियोंसे युक्त होनेके कारण पञ्चेन्द्रिय हैं ? प्रथम विकल्पमें अपर्याप्त जीवोंसे व्यभिचार आता है, क्योंकि पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके द्रव्येन्द्रियां नहीं पाई जातीं। दूसरे विकल्पमें केवलियोंसे व्यभिचार आता है; क्योंकि पञ्चेन्द्रिय होते हुए भी केवलियोंके भावेन्द्रियां नहीं पाई जातीं ?

समाधान—यहाँ भावेन्द्रियोंकी अपेक्षा पञ्चेन्द्रिय कहा है, फिर भी पूर्वोक्त व्यभिचार नहीं आता; क्योंकि यद्यपि केवलीके भावेन्द्रियाँ समूल नष्ट हो जाती हैं और बाह्य इन्द्रियोंका व्यापार भी नहीं रहता, फिर भी भावेन्द्रियोंके निमित्तसे उत्पन्न हुई द्रव्येन्द्रियोंका सत्व उनमें पाया जाता है। इसलिये उन्हें पञ्चेन्द्रिय कहा है। अथवा एकेन्द्रियजातिनामकर्मके उदयसे एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय-जातिनामकर्मके उदयसे दोइन्द्रिय, तेइन्द्रियजातिनामकर्मके उदयसे तेइन्द्रिय, चौइन्द्रियजातिनाम-कर्मके उदयसे चौइन्द्रिय और पञ्चेन्द्रियजातिनामकर्मके उदयसे पंचेन्द्रिय जीव होते हैं। केवली और अपर्याप्त जीवोंके भी पञ्चेन्द्रियजातिनामकर्मका उदय होता है, इसलिये उन्हें पञ्चेन्द्रिय कहा है।

शङ्का—पञ्चेन्द्रियजाति किसे कहते हैं ?

समाधान—'ये पञ्चेन्द्रिय हैं' इस प्रकारके समान प्रत्ययसे ग्राह्य कबूतर वगैरह जिसकी अवान्तर जातियाँ हैं और पञ्चेन्द्रियावरणकर्मका क्षयोपशम जिसका सहकारी है उसे पञ्चेन्द्रिय जाति कहते हैं ॥

अब अनिन्द्रिय जीवोंका अस्तित्व कहनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

तेण परमणिंदिया इदि ॥ ३८ ॥

उन एकेन्द्रिय आदि जीवोंसे परे अनिन्द्रिय (इन्द्रियोंसे रहित) जीव होते हैं ॥ ३८ ॥

शंका—वे अनिन्द्रिय जीव कौनसे हैं ?

समाधान—समस्त द्रव्यकर्मों और भावकर्मोंसे रहित सिद्ध अनिन्द्रिय हैं ॥

कायमार्गणाका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

कायाणुवादेण अत्थि पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया वणप्फइ-काइया तसकाइया अकाइया चेदि ॥ ३९ ॥

कायानुवादकी अपेक्षा पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पति-कायिक, त्रसकायिक और अकायिक जीव होते है ॥ ३९ ॥

शङ्का—कायानुवादका क्या अर्थ हैं ?

समाधान—सूत्रके अनुकूल कथन करनेको अनुवाद कहते हैं और कायके अनुवादको काया-नुवाद कहते हैं।

शंका—पृथिवीकायिक किन्हें कहते हैं।

समाधान—पृथिवीरूप शरीरको पृथिवीकाय कहते हैं और वह जिनके पाया जाता है उन जीवोंको पृथिवीकायिक कहते हैं।

शंका—पृथिवीकायिकका इसप्रकार लक्षण करनेपर कार्मणकाययोगमें स्थित जीव पृथिवीकाय नहीं हो सकते ?

समाधान—उपचारसे उनको भी पृथिवीकायिक कहा जा सकता है। अथवा जिन जीवोंके पृथिवीकायिकनामकर्मका उदय है उन्हें पृथिवीकायिक कहते हैं। इसीप्रकार जलकायिक आदि का भी स्वरूप. जानना। स्थावरनामकर्मका उदय होनेसे पृथिवीकायिक आदि पांचोंको स्थावर कहते हैं।

शंका—स्थानशील अर्थात् ठहरना ही जिनका स्वभाव है उन्हें स्थावर कहते हैं, ऐसा लक्षण क्यों नहीं कहा ?

समाधान—ऐसा लक्षण करनेपर वायुकायिक, अग्निकायिक और जलकायिक जीव अस्थावर हो जायेंगे क्योंकि ये एक स्थानपर न रहकर गतिशील देखे जाते हैं। अत: 'स्थानशील स्थावर होते हैं' यह केवल निरुक्तिमात्र है। इसके अर्थकी प्रधानता नहीं है।

शंका—त्रस किन्हें कहते हैं ?

समाधान—त्रसनामकर्मके उदयसे जिन्होंने त्रसपर्यायको प्राप्त किया है उन्हें त्रस कहते हैं।

शंका—त्रस् धातुसे त्रस शब्द बना है और त्रस् धातुका अर्थ है डरकर भागना। अत: जो डरकर भागें वे त्रस क्यों नहीं हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि जब जीव गर्भमें रहता है या अण्डेमें बन्द रहता है, या मूर्छित अथवा सुप्त होता है उस अवस्थामें उक्त लक्षण न पाया जानेसे त्रसपना नहीं बनेगा। अत: चलने और ठहरनेकी अपेक्षा त्रसपना और स्थावरपना नहीं समझना चाहिये।

शंका—आत्माकी प्रवृत्तिसे संचित पुद्गलपिण्डको काय कहते हैं। इस कथनसे उक्त व्याख्यान विरुद्ध क्यों नहीं है ?

समाधान—जीवविपाकीत्रसनामकर्म और पृथिवीकायिक आदि नामकर्मके उदयकी सहकारितासे युक्त औदारिकशरीरनामकर्मके उदयसे उत्पन्न हुए शरीरको भी उपचारसे काय कहनेमें कोई विरोध नहीं है।

शंका—अकायिक किन्हें कहते हैं ?

समाधान—त्रसकायिक और स्थावरकायिक नामकर्मके बन्धनसे मुक्त सिद्धोंको अकायिक कहते हैं। कहा भी है—

'जह कंचणमग्गिगयं मुंचइ किट्टेण कालियाए य।
तह काय-बंधमुक्का अकाइया झाणजोएण॥

जैसे अग्निके योगसे सोना कीट और कालिमारूप बाह्य तथा आभ्यन्तर मलसे रहित हो जाता है। वैसे ही ध्यानयोगसे जीव काय और कर्मबन्धनसे मुक्त होकर कायरहित हो जाते हैं।

अब पृथिवीकायिक आदि जीवोंके भेद कहनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

पुढविकाइया दुविहा बादरा सुहुमा। बादरा दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता। सुहुमा दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता। आउकाइया दुविहा बादरा सुहुमा। बादरा दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता। सुहुमा दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता। तेउकाइया दुविहा बादरा सुहुमा। बादरा दुविहा पज्जत्ता अपज्जता। सुहुमा दुविहा पज्जता अपज्जता। वायुकाइया दुविहा बादरा सुहुमा। बादरा दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता। सुहुमा दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता चेदि ॥ ४० ॥

पृथिवीकायिक जीव दो प्रकारके हैं—बादर और सूक्ष्म। बादरपृथिवीकायिक जीव दो प्रकारके हैं पर्याप्त और अपर्याप्त। सूक्ष्मपृथिवीकायिक जीव दो प्रकारके हैं, पर्याप्त और अपर्याप्त। जलकायिक जीव दो प्रकारके हैं बादर और सूक्ष्म। बादरजलकायिकजीव दो प्रकारके हैं पर्याप्त और अपर्याप्त। सूक्ष्मजलकायिक जीव दो प्रकारके हैं पर्याप्त और अपर्याप्त। अग्निकायिक जीव दो प्रकारके हैं बादर और सूक्ष्म। बादरअग्निकायिक जीव दो प्रकारके हैं पर्याप्त और अपर्याप्त। सूक्ष्म-अग्निकायिक जीव दो प्रकारके हैं पर्याप्त और अपर्याप्त। वायुकायिक जीव दो प्रकारके हैं बादर और सूक्ष्म। बादर वायुकायिक जीव दो प्रकारके हैं पर्याप्त और अपर्याप्त। सूक्ष्मवायुकायिक जीव दो प्रकारके हैं पर्याप्त और अपर्याप्त ॥ ४० ॥

शङ्का—बादर और सूक्ष्ममें क्या अन्तर है?

समाधान—बादर प्रतिघातसहित होते हैं और सूक्ष्म प्रतिघातरहित होते हैं।

शङ्का—पर्याप्त और अपर्याप्तमें क्या अन्तर है?

समाधान—पर्याप्तनामकर्मके उदयसे उत्पन्न हुई शक्तिसे जिन जीवोंमें अपने अपने योग्य पर्याप्तियोंको पूर्ण करनेरूप विशेषता प्रकट हो चुकी है उन्हें पर्याप्त कहते हैं। तथा अपर्याप्तनाम-कर्मके उदयसे उत्पन्न हुई शक्तिसे जिन जीवोंमें शरीरपर्याप्तिको पूर्ण न करके मरणरूप विशेषता प्रकट होती है उन्हें अपर्याप्त कहते हैं ॥

अब वनस्पतिकायिक जीवोंके भेद कहनेके लिये सूत्र कहते हैं—

वणप्फइकाइया दुविहा पत्तेयसरीरा साधारणसरीरा। पत्तेयसरीरा दुविहा, पज्जत्ता अपज्जत्ता। साधारणसरीरा दुविहा बादरा सुहुमा। बादरा दुविहा पज्जता अप-ज्जता। सुहुमा दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता चेदि ॥ ४१ ॥

वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकारके हैं, प्रत्येकशरीर और साधारणशरीर। प्रत्येकशरीर-वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकारके हैं, पर्याप्त और अपर्याप्त। साधारण शरीर वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकारके हैं बादर और सूक्ष्म। बादर दो प्रकारके हैं पर्याप्त और अपर्याप्त। सूक्ष्म दो प्रकारके हैं पर्याप्त और अपर्याप्त ॥ ४१ ॥

शङ्का—प्रत्येकशरीर किन्हें कहते है?

समाधान—जिन जीवोंका प्रत्येक अर्थात् अलग अलग शरीर होता है उन्हें प्रत्येकशरीर कहते हैं।

शङ्का—तब तो पृथिवीकाय आदि पांचोंको भी प्रत्येकशरीर कहा जा सकता है ?

समाधान—पृथिवीकायिक आदिको प्रत्येकशरीर मानना इष्ट ही है।

शंका—तो फिर पृथिवीकाय आदिके साथ भी प्रत्येकशरीर विशेषण लगाना चाहिये ?

समाधान—नहीं लगाना चाहिये, क्योंकि जैसे वनस्पतियोंमें साधारण वनस्पति भी होती है अतः उसका निराकरण करनेके लिये प्रत्येकशरीर विशेषण वनस्पतिके साथ लगाया जाता है, वैसे पृथिवीकाय आदिमें कोई साधारणकाय नहीं होती, जिसका निराकरण करनेके लिये प्रत्येक शरीर विशेषण लगाना आवश्यक हो।

शंका—साधारणशरीर जीव किन्हें कहते हैं ?

समाधान—जिन जीवोंका अलग अलग शरीर न होकर साधारणरूपसे एक शरीर होता है उन्हें साधारणशरीर कहते हैं।

शंका—औदारिककर्म प्रत्येक जीवके द्वारा अलग अलग बांधा जाता है तथा वह पुद्गल-विपाकी होनेसे आहार वर्गणाके स्कन्धोंको शरीरकाररूप परिणमन करनेमें कारण है। और भिन्न भिन्न जीवोंको भिन्न-भिन्न फल देनेवाला है। ऐसे औदारिकनोकर्म स्कन्धोंके द्वारा अनेक जीवोंका एक शरीर कैसे उत्पन्न किया जा सकता है ?

समाधान--एक देशमें स्थित और परस्परमें सम्बद्ध जीवोंके साथ समवेत पुग्गल वहाँ स्थित सम्पूर्ण जीवोंका एकशरीर उत्पन्न कर सकते हैं, इसमें कोई विरोध नहीं है; क्योंकि साधारण कारणसे साधारण कार्यकी उत्पत्ति होती है। कहा भी है—

साधारणमाहारो साधारणमाणपाणगहणं च।
साहारणजीवाणं साहारणलक्खणं भणियं ॥
जत्थेक्कु मरइ जीवो तत्थ दु मरणं हवे अणंताणं।
वक्कमदि जत्थ एक्को वक्कमणं तत्थ णंताणं ॥
एयणिगोदसरीरे जीवा दव्वप्पमाणदो दिट्ठा।
सिद्धेहि अणंतगुणा सव्वेण वितीदकालेण ॥
अत्थि अणंता जीवा जेहि ण पत्तो तसाण परिणामो।
भावकलंकइपउरा णिगोदवासं ण मुंचंति ॥

साधारण जीवोंका साधारण ही आहार होता है, साधारण ही श्वासोच्छ्वास ग्रहण करते हैं। आगममें यह साधारण जीवोंका साधारण लक्षण कहा है ॥ साधारण जीवोंमें जहाँ एक जीव मरता है वहाँ अनन्तानन्त जीवोंका मरण हो जाता है। और जहाँ एक जीव उत्पन्न होता है वहाँ अनन्त जीव उत्पन्न होते हैं ॥ द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा सिद्ध राशि और सम्पूर्ण अतीत कालसे अनन्तगुणे जीव एक निगोदिया शरीरमें देखे गये हैं ॥ ऐसे अनन्त जीव हैं जिन्होंने कभी त्रसपर्याय नहीं प्राप्त की। उनके भावकर्म अत्यन्त प्रचुर होते हैं। इसलिये वे निगोदवासको नहीं छोड़ते।

शंका—अन्य शास्त्रोंमें बादर निगोदिया जीवोंसे प्रतिष्ठित वनस्पति सुनी जाती है। उसका अन्तर्भाव वनस्पतिके किस भेदमें होता है?

समाधान—प्रत्येकशरीरवनस्पतिमें ही उसका अन्तर्भाव होता है।

शंका—बादरनिगोदसे प्रतिष्ठित वनस्पति कौन है?

समाधान—थूहर, अदरख, मूली वगैरह वनस्पति बादरनिगोदसे प्रतिष्ठित हैं।

अब त्रसकायिक जीवोंके भेद कहनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

तसकाइया दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता ॥ ४२ ॥

त्रसकायिक जीव दो प्रकारके होते हैं, पर्याप्त और अपर्याप्त ॥ ४२ ॥

शंका—त्रसजीव सूक्ष्म होते हैं अथवा बादर?

समाधान—त्रसजीव बादर ही होते हैं, सूक्ष्म नहीं होते। कहा भी है—

विहि तिहि चउहि पंचहि सहिया जे इंदिएहि लोयम्मि।
ते तसकाया जीवा णेया वीरोवएसेण॥

'लोकमें जो जीव दो, तीन, चार और पाँच इन्द्रियोंसे सहित हैं उन्हें वीर भगवानके उपदेशसे त्रसकाय जानना चाहिये।

पृथिवीकायिक आदिके स्वरूपका कथन करके अब उनमें गुणस्थानोंका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

पुढविकाइया आउकाइया तेजकाइया वाउकाइया वणप्फइकाइया एक्कम्मि चेय मिच्छाइट्ठिट्ठाणे ॥ ४३ ॥

पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, और वनस्पतिकायिक जीव एक मिथ्यादृष्टि नामक गुणस्थानमें ही होते हैं ॥ ४३ ॥

शंका—देव, शास्त्र और तत्त्वार्थकी श्रद्धासे रहित जीव मिथ्यादृष्टि कहे जाते हैं। और श्रद्धान करने योग्य वस्तुमें श्रद्धाका भाव तभी हो सकता है जब श्रद्धाके अयोग्य वस्तुओंका ज्ञान हो। ऐसी अवस्थामें देव, शास्त्र और तत्त्वार्थके ज्ञानसे रहित पृथिवीकायिक आदि जीवोंको मिथ्यादृष्टि कैसे कहा जा सकता है?

समाधान—पृथिवीकायिक आदि जीवोंमें ज्ञाननिरपेक्ष मूढ़ मिथ्यात्वका सद्भाव माननेमें कोई विरोध नहीं आता। अथवा ऐकान्तिक, सांशयिक, मूढ़, व्युद्ग्राहित, वैनयिक, स्वाभाविक और विपरीत इन सातों मिथ्यात्वोंका भी उन पृथिवीकायिक आदि जीवोंमें सद्भाव संभव है, क्योंकि सात प्रकारके मिथ्यात्वोंसे युक्त जो जीव मिथ्यात्वके साथ स्थावर पर्यायमें जन्म लेते हैं उनके सातों ही प्रकारका मिथ्यात्व पाया जाता है।

शंका—इन्द्रियानुवादसे सब एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीव मिथ्यादृष्टि होते हैं, ऐसा कह आये हैं। अतः उसीसे यह ज्ञान हो जाता है कि पृथिवीकायिक आदि जीव मिथ्यादृष्टि होते हैं। इसलिये यह सूत्र नहीं बनाना चाहिये था?

समाधान—पृथिवीकायिक आदि जीवोंके इतनी इन्द्रियाँ होती हैं अथवा इतनी इन्द्रियाँ नहीं होतीं, यह ज्ञान जिस शिष्यको नहीं है अथवा जो भूल गया है उस शिष्यके अनुरोधसे यह सूत्र बनाया गया है।

अब त्रस जीवोंके गुणस्थानोंका कथन करनेके लिये आगे सूत्र कहते हैं—

तसकाइया बीइंदिय-प्पहुडि जाव अयोगिकेवलि त्ति ॥ ४४ ॥

द्वीन्द्रियसे लेकर अयोगकेवली तक त्रसजीव होते हैं ॥ ४४ ॥

शङ्का—स्थावरजीव कौन हैं ?

समाधान—एकेन्द्रिय जीव स्थावर हैं।

शङ्का—सूत्रमें तो ऐसा नहीं कहा फिर कैसे जाना जाये कि एकेन्द्रिय जीवोंको स्थावर कहते हैं।

समाधान—जब सूत्रमें दो इन्द्रिय आदि जीवोंको त्रस कहा है तो परिशेष न्यायसे यह जाना जाता है कि एकेन्द्रिय जीव स्थावर हैं।

अब बादर जीवोंका कथन करनेके लिये आगे सूत्र कहते हैं—

बादरकाइया बादरेइंदिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ॥ ४५ ॥

बादर एकेन्द्रियसे लेकर अयोग केवली पर्यन्त जीव बादरकायिक होते हैं ॥ ४५ ॥

शंका—पृथिवीकायिकसे लेकर वनस्पति पर्यन्त जीवोंमें बादर और सूक्ष्म जीवोंका सद्भाव पहले ही कह आये हैं इसलिये इस सूत्रमें बादर एकेन्द्रिय पदका ग्रहण करना व्यर्थ है!

समाधान—प्रत्येक शरीर वनस्पतिका ग्रहण करनेके लिये इस सूत्रमें बादर एकेन्द्रिय पदका ग्रहण किया है। इसके ग्रहण करनेसे प्रत्येकशरीरवनस्पति आदि बादर ही होते हैं यह स्पष्ट हो जाता है। अतः उसका ग्रहण व्यर्थ नहीं है।

शंका—इन जीवोंका बादर होना तो प्रत्यक्ष सिद्ध है अतः उसका कथन नहीं करना चाहिए?

समाधान—इन जीवोंको केवल बादर बतलानेके लिये यह सूत्र नहीं रचा गया है किन्तु इन जीवोंमें सूक्ष्मत्व नहीं होता, यह बतलानेके लिये यह सूत्र रचा गया है॥

अब त्रस और स्थावर दोनों कायोंसे रहित जीवोंका अस्तित्व बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

तेण परमकाइया चेदि ॥ ४६ ॥

त्रस और स्थावर कायसे परे कायरहित अकायिक जीव होते हैं ॥ ४६ ॥

शंका—ऐसे जीव कौनसे हैं ?

समाधान—ऐसे जीव सिद्ध हैं। वे सिद्ध बादर और सूक्ष्म शरीरके कारण भूत कर्मसे रहित होनेके कारण अशरीर होते हैं इसलिये अकायिक कहलाते हैं।

शंका—सूत्रकी समाप्तिका सूचक एक इति शब्द ही काफी है, फिर सूत्रमें 'च' शब्द क्यों दिया ?

समाधान—कायमार्गणाकी समाप्तिकी सूचनाके लिये सूत्रमें 'च' शब्द दिया है।

अब योगमार्गणाके द्वारा जीव द्रव्यका कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

जोगाणुवादेण अत्थि मणजोगी वचिजोगी कायजोगी चेदि ॥ ४७ ॥

योगानुवादसे मनोयोगी, वचनयोगी और काययोगी जीव होते हैं ॥ ४७ ॥

शंका—सूत्रमें 'इति' और 'च' शब्द क्यों दिये हैं ?

समाधान—'इति' शब्द सूत्रकी समाप्तिका सूचक है और 'च' शब्द समुच्चयवाची है। अथवा वह यह बतलाता है कि योग तीन ही होते हैं।

शंका—मनोयोग वगैरहका क्या स्वरूप है ?

समाधान—भावमनकी उत्पत्तिके लिये जो प्रयत्न होता है उसे मनोयोग कहते हैं। वचनकी उत्पत्तिके लिये जो प्रयत्न होता है उसे वचनयोग कहते हैं और कायकी क्रियाकी उत्पत्तिके लिये जो प्रयत्न होता है उसे काययोग कहते हैं।

शंका—तीनों योगोंकी प्रवृत्ति एक साथ होती है या नहीं ?

समाधान—एकसाथ नहीं होती; क्योंकि एक आत्माके तीनों योगोंकी प्रवृत्ति एक साथ मानने पर योगका अभाव हो जायेगा।

समाधान—कहीं कहीं मन, वचन और कायकी प्रवृत्तियां एकसाथ देखी जाती हैं ?

समाधान—उनकी प्रवृत्ति भले ही एक साथ देखी जाये, परन्तु मन, वचन और कायकी प्रवृत्तिके लिये जो प्रयत्न होते हैं वे एकसाथ नहीं हो सकते; क्योंकि आगममें वैसा उपदेश नहीं पाया जाता।

शंका—प्रयत्न बुद्धिपूर्वक होता है और बुद्धि मनोयोगपूर्वक होती है अतः मनोयोग शेषयोगोंका अविनाभावी है, यह सिद्ध हुआ।

समाधान—कार्य और कारणकी उत्पत्ति एकसाथ नहीं हो सकती।

अब योगरहित जीवोंका कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

अजोगी चेदि ॥ ४८ ॥

अयोगी जीव होते हैं ॥ ४८ ॥

कहा भी है—

'जेसिं ण संति जोगा सुहासुहा पुण्णपावसंजणया।
ते होंति अजोइजिणा अणोवमाणंतबलकलिया ॥

'जिन जीवोंके पुण्य और पापके उत्पादक शुभ और अशुभ योग नहीं पाये जाते, वे अनुपम और अनन्त बलसे सहित अयोगिजिन होते हैं।

सामान्यकी अपेक्षा एक प्रकारके मनोयोगके भेद बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

मणजोगो चउव्विहो, सच्चमणजोगो मोसमणजोगो सच्चमोसमणजोगो असच्चमोसमणजोगो चेदि ॥ ४९ ॥

मनोयोग चार प्रकारका है, सत्यमनोयोग, असत्यमनोयोग, उभयमनोयोग और अनुभयमनोयोग ॥ ४९ ॥

शङ्का—इन योगोंका क्या स्वरूप है ?

समाधान—सत्य पदार्थमें लगनेवाले मनको सत्यमन कहते हैं और उसके द्वारा जो योग होता है उसे सत्यमनोयोग कहते हैं। इससे विपरीत योगको असत्यमनोयोग कहते हैं। जो योग सत्य और असत्य दोनोंके योगसे उत्पन्न होता है उसे उभयमनोयोग कहते हैं। कहा भी है—

सब्भावो सच्चमणो जो जोगो तेण सच्चमणजोगो।
तव्विवरीदो मोसो जाणुभयं सच्चमोसं ति॥

'सद्भाव और सत्यार्थको विषय करनेवाले मनको सत्यमन कहते हैं और उससे जो योग होता है उसे सत्यमनोग कहते हैं। इससे विपरीत योगको असत्यमनोयोग कहते हैं। तथा सत्य और असत्य उभयरूप योगको उभयमनोयोग कहते हैं।'

शङ्का—अनुभयमनोयोग किसे कहते हैं ?

समाधान—सत्यमनोयोग और असत्यमनोयोगसे भिन्न योगको अनुभयमनोयोग कहते हैं ?

शंका—तो अनुभयमनोयोग क्या सत्य और असत्य मनोयोगके संयोगसे पैदा होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सत्य और असत्यके संयोगसे तीसरा उभयमनोयोग पैदा होता है।

शंका—तो फिर इनसे भिन्न चौथा मनोयोग कौनसा है ?

समाधान—मनसहित जीवोंमें वचनकी प्रवृत्ति मनपूर्वक होती है, मनके बिना नहीं होती। इसलिये उनमें सत्यवचनके कारणभूत मनसे होनेवाले योगको सत्यमनोयोग कहते हैं। असत्य-वचनमें कारणभूत मनसे होनेवाले योगको असत्यमनोयोग कहते हैं। सत्य और असत्य दोनों रूप वचनमें कारणभूत मनसे होनेवाले योगको उभयमनोयोग कहते हैं। और उक्त तीनों प्रकारके वचनोंसे भिन्न बुलाना आदि रूप वचनमें कारणभूत मनसे होनेवाले योगको अनुभयमनोयोग कहते हैं। फिर भी यह अर्थ मुख्य नहीं है; क्योंकि सब मनोंमें ये लक्षण घटित नहीं होते।

शंका—तो फिर निर्दोष अर्थ कौनसा है ?

समाधान—जो वस्तु जिस रूप है उसमें उसी प्रकारसे प्रवृत्ति करनेवाले मनको सत्यमन कहते हैं। उसमें विपरीत प्रकारसे प्रवृत्ति करनेवाले मनको असत्यमन कहते हैं। दोनों प्रकारसे प्रवृत्ति करनेवाले मनको उभयमन कहते हैं। तथा जो संशय और अनध्यवसाय ज्ञानका कारण है उसे अनुभयमन कहते हैं। कहा भी है—

ण य सच्चमोसजुत्तो जो दु मणो सो असच्चमोसमणो।
जो जोगो तेण हवे असच्चमोसो दु मणजोगो॥

'जो मन सत्य और असत्यसे युक्त नहीं है उसको अनुभयमन कहते हैं। और उसके द्वारा जो योग होता है उसे अनुभयमनोयोग कहते हैं॥'

मनके भेद कहकर अब गुणस्थानोंमें उसके स्वरूपका निरूपण करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

मणजोगो सच्चमणजोगो असच्चमोसमणजोगो सण्णिमिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति॥ ५०॥

सामान्य मनोयोग तथा सत्यमनोयोग और अनुभयमनोयोग संज्ञीमिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगिकेवली पर्यन्त होते हैं ॥ ५० ॥

शंका—यह पांचवाँ सामान्य मनोयोग कहांसे आया ?

समाधान—चारों मनोयोगोंमें रहनेवाले सामान्यको पांचवाँ कह दिया है।

शंका—वह सामान्य क्या है ?

समाधान—मनकी सदृशता।

शङ्का—केवलीको वस्तुका यथार्थ ज्ञान होता है इसलिये केवलीके सत्यमनोयोगका सद्भाव मानना तो उचित है। परन्तु उनके अनुभयमनोयोगका सद्भाव मानना उचित नहीं है क्योंकि केवलीमें संशय और अनध्यवसायका अभाव है।

समाधान—जो मन संशय और अनध्यवसायके कारणरूप वचनका कारण है उसे भी अनुभयमन कहा जाता है।

शंका—केवलीके वचन संशय और अनध्यवसायको कैसे पैदा करते हैं ?

समाधान—केवलीके ज्ञानके विषयभूत पदार्थ अनन्त होनेसे तथा श्रोताके ज्ञानावरण कर्मका विशेष क्षयोपशम न होनेसे केवलीके वचनोंको सुनकर संशय और अनध्यवसायरूप ज्ञानकी उत्पत्ति हो सकती है।

शंका—तीर्थंकरके वचन अनक्षररूप होनेसे ध्वनिरूप होते हैं और इसलिये वे एकरूप हैं। और एकरूप होनेसे वे सत्य और अनुभय इसप्रकार दो रूप नहीं हो सकते ?

समाधान—तीर्थङ्करके वचनोंमें 'स्यात्' पद लगा रहता है, अतः वे अनुभयरूप भी होते हैं और इसलिये केवलीकी ध्वनि साक्षर है, अनक्षररूप नहीं है।

शङ्का—यदि केवलीकी ध्वनि साक्षर है तो वह एक भाषारूप ही हो सकती है, सब भाषारूप नहीं हो सकती ?

समाधान—जो ध्वनि क्रमविशिष्ट वर्णोंकी अनेक पंक्तियोंके समूहरूप होती है और प्रत्येक प्राणीके प्रति प्रवृत्त होती है उसके समस्त भाषारूप होनेमें कोई विरोध नहीं है।

शंका—तब वह ध्वनिरूप कैसे है ?

समाधान—केवलीके वचन अमुक भाषारूप ही हैं ऐसा नहीं कहा जा सकता। इसलिये उनका ध्वनिरूप होना सिद्ध है।

शंका—केवलीका ज्ञान अतीन्द्रिय होता है अतः केवलीके मन नहीं है ?

समाधान—केवलीके द्रव्यमनका सद्भाव है।

शंका—केवलीके द्रव्यमन रहो, किन्तु उसका कार्य तो वहां नहीं है ?

समाधान—द्रव्य मनका कार्य क्षायोपशमिक ज्ञान केवलीमें नहीं होता यह ठीक है। किन्तु द्रव्यमनको उत्पन्न करनेमें प्रयत्न तो पाया ही जाता है; क्योंकि उसका कोई प्रतिबन्धक नहीं है। उसके निमित्तसे आत्माका जो योग होता है उसे मनोयोग कहते हैं।

शंका—जब केवलीमें द्रव्यमनको उत्पन्न करनेका प्रयत्न विद्यमान है तो उनका द्रव्यमन अपना कार्य क्यों नहीं करता ?

समाधान—मनसे होनेवाले ज्ञानका सहकारी कारण क्षयोपशम है। और केवलीमें क्षयोपशमका अभाव है अतः उनका मन अपना कार्य नहीं कर सकता।

शंका—जब केवलीके भाव मनका अभाव है तो उससे सत्य और अनुभयरूप वचनकी उत्पत्ति कैसे हो सकती है ?

समाधान—केवलीके मनके द्वारा दोनों प्रकारके वचनोंकी उत्पत्ति उपचारसे बतलाई है।

शेष दो मनोयोगोंके गुणस्थान बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

मोसमणजोगो .सच्चमोसमणजोगो सण्णिमिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसाय-वीयरायछदुमत्था त्ति ॥ ५१ ॥

असत्यमनोयोग और उभयमनोयोग संज्ञीमिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक पाये जाते हैं ॥ ५१ ॥

शंका—क्षपक और उपशमक जीवोंके सत्यमनोयोग और अनुभय मनोयोगका सत्व रहो, किन्तु शेष दो मनोयोग नहीं हो सकते; क्योंकि उन दोनों योगोंका कारण प्रमाद है और उपशमक तथा क्षपकमें प्रमादका अभाव हो जाता है ?

समाधान—जिन जीवोंके ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्मका उदय रहता है उनके विपर्यय और अनध्यवसाय रूप अज्ञानका कारणभूत मन पाया जाता है। अतः उपशम और क्षपक श्रेणी वाले जीवोंके असत्य और उभय मनोयोग भी होते हैं। किन्तु इसका यह मतलब नहीं कि वे प्रमादी होते हैं; क्योंकि प्रमाद आवरणकर्मकीपर्याय नहीं है, मोहकी पर्याय है।

अब वचनयोगके भेद बतलानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

वचिजोगो चउव्विहो सच्चवचिजोगो मोसवचिजोगो सच्चमोसवचिजोगो असच्चमोसवचिजोगो चेदि ॥ ५२ ॥

वचनयोग चार प्रकारका है—सत्यवचनयोग, असत्यवचनयोग, उभयवचनयोग और अनुभयवचनयोग ॥ ५२ ॥

शंका—जो मनोयोगोंकी संज्ञा है वही संज्ञा वचनयोगोंकी क्यों हैं ?

समाधान—चार प्रकारके मनसे उत्पन्न हुए वचनोंकी भी वही संज्ञा होती है। कहा भी है—

दसविहसच्चे वयणे जो जोगो सो दु सच्चवचिजोगो।
तव्विवरीदो मोसो जाणुभयं सच्चमोसं ति॥
जो णेव सच्च मोसो तं जाण असच्चमोसवचिजोगो।
अमणाणं जा भासा सण्णीणामंतणीयादी॥

'दश प्रकारके सत्यवचनमें वचनवर्गणाके निमित्तसे जो योग होता है उसे सत्य वचनयोग

कहते हैं। उससे विपरीत योगको असत्यवचनयोग कहते हैं। सत्य और असत्यरूप वचनयोगको उभय वचनयोग कहते हैं ।। जो न तो सत्यरूप है और न असत्यरूप है उसे अनुभय वचनयोग कहते हैं। असंज्ञी जीवोंकी भाषा और संज्ञा जीवोंकी आमंत्रणी आदि भाषाएँ अनुभयरूप हैं ।।

वचनयोगके भेद कहकर अब गुणस्थानोंमें उसका सत्व बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

वचिजोगो असच्चमोसवचिजोगो बीइंदियप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ।।५३।।

सामान्य वचनयोग तथा अनुभय वचनयोग दोइन्द्रियसे लेकर सयोगकेवली गुणस्थान तक होता है ।। ५३ ।।

शंका—पहले कह आये हैं कि अनुभयरूप मनके निमित्तसे जो वचन उत्पन्न होते हैं उन्हें अनुभय वचन कहते है। ऐसी हालतमें मन रहित द्वीन्द्रिय आदि जीवोंके अनुभय वचन कैसे हो सकता है ?

समाधान—यह एकान्त नियम नहीं है कि सम्पूर्ण वचन मनसे ही उत्पन्न होते हैं। यदि ऐसा माना जायेगा तो मनरहित केवलियोंके वचनका अभाव हो जायेगा।

शंका—विकलेन्द्रिय जीवोंके मनके बिना ज्ञानकी उत्पत्ति नहीं हो सकती और ज्ञानके बिना वचनोंकी प्रवृत्ति नहीं हो सकती ?

समाधान—मनसे ही ज्ञानकी उत्पत्ति होती है ऐसा एकान्त नियम नहीं है। यदि ऐसा नियम माना जायेगा तो सम्पूर्ण इन्द्रियोंसे ज्ञानकी उत्पत्ति नहीं हो सकेगी। शायद कहा जावे कि मन चक्षु आदि इन्द्रियोंका सहायक है किन्तु ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि प्रयत्न सहित आत्माकी सहायतासे इन्द्रियोंसे ज्ञानकी उत्पत्ति देखी जाती है।

शंका—समनस्क जीवोंमें ज्ञानकी उत्पत्ति मनोयोगसे ही होता है ?

समाधान—ऐसा माननेसे केवलज्ञानसे व्यभिचार आता है।

शंका—तो फिर ऐसा माना जाये कि समनस्क जीवोंके जो क्षायोपशमिक ज्ञान होता है वह मनोयोगसे ही होता है।

समाधान—यह मान्यता तो हमें इष्ट ही है।

शंका—तब फिर 'मनोयोगसे वचन उत्पन्न होता है' ऐसा जो पहले कह आये हैं वह कैसे घटित होता है ?

समाधान—'मनोयोगसे वचन उत्पन्न होता है' यहांपर मानस ज्ञानकी उपचारसे मन संज्ञा रखकर कथन किया है।

शङ्का—विकलेन्द्रियोंके वचन अनुभय कैसे हैं ?

समाधान—विकलेन्द्रियोंके वचन अनध्यवसायरूप ज्ञानके कारण हैं इसलिये उन्हें अनुभय कहा है।

शंका—विकलेन्द्रियोंके वचनोंको सुनकर यह अध्यवसाय (निश्चय) तो हो ही जाता है कि यह भी एक ध्वनि है, फिर उन्हें अनध्यवसायका कारण क्यों कहा ?

समाधान—विकलेन्द्रियोंके वचनोंको सुनकर उनके अभिप्रायका निश्चय नहीं होता, इसलिये उन्हें अनध्यवसायका कारण कहा है।

अब सत्यवचनयोगका गुणस्थानोंमें कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

सच्चवचिजोगो सण्णिमिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ॥ ५४ ॥

सत्यवचनयोग संज्ञीमिथ्यादृष्टीसे लेकर सयोगकेवली गुणस्थान तक होता है ॥ ५४ ॥

शेष वचनयोगोंका गुणस्थानोंमें कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

मोसवचिजोगो सच्चमोसवचिजोगो सण्णिमिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीयरायछदुमत्था त्ति ॥ ५५ ॥

असत्यवचनयोग और उभयवचनयोग संज्ञीमिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक होते हैं ॥ ५५ ॥

शङ्का—जिसकी कषायें क्षीण हो गई है उसके वचन असत्य कैसे हो सकते हैं ?

समाधान—असत्य वचनका कारण अज्ञान बारहवें गुणस्थान तक रहता है इसलिये क्षीणकषायके असत्यवचनयोगका अस्तित्व कहा है। तथा इसीलिये उभयवचनयोग भी बारहवें गुणस्थान तक बतलाया है।

शंका—वचनगुप्तिके पालक क्षीणकषायगुणस्थानवर्ती जीवके वचनयोग कैसे संभव है ?

समाधान—क्षीणकषायगुणस्थानमें अन्तर्जल्प पाया जाता है।

अब काययोगके भेद बतलानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

कायजोगो सत्तविहो ओरालियकायजोगो ओरालियमिस्सकायजोगो वेउव्वियकायजोगो वेउव्वियमिस्सकायजोगो आहारमिस्सकायजोगो कम्मइयकायजोगो चेदि ॥ ५६ ॥

काययोग सात प्रकारका है, औदारिक काययोग, औदारिकमिश्रकाययोग, वैक्रियिककाययोग, वैक्रियिकमिश्रकाययोग, आहारककाययोग, आहारकमिश्रकाययोग और कार्मणकाययोग ॥ ५६ ॥

शंका—औदारिक काययोग किसे कहते हैं ?

समाधान—औदारिक शरीरसे उत्पन्न हुई शक्तिसे जीवके प्रदेशोंमें परिस्पन्दका कारण जो प्रयत्न होता है उसे औदारिककाययोग कहते हैं। तथा कर्मण और औदारिक स्कन्धोंसे उत्पन्न हुई शक्तिसे जीवके प्रदेशोंमें हलन-चलन करनेके लिये जो प्रयत्न किया जाता है उसे औदारिकमिश्रकाययोग कहते हैं। उदार, पुरु और महान् ये सब शब्द एकार्थक हैं। उसमें जो शरीर उत्पन्न होता है उसे औदारिकशरीर कहते हैं। कहा भी है—

पुरु महदुदारुरालं एयट्ठो तं वियाण तम्हि भवं।
ओरालियं ति वुत्तं ओरालियकायजोगो सो ॥

ओरालियमुत्तत्थं विजाण मिस्सं च अपरिपुण्णं ति।
जो तेण संपजोगो ओरालियमिस्सओ जोगो॥

'पुरु' महत्, उदार, और उराल ये शब्द एकार्थक हैं। उदारमें जो होता है उसे औदारिक कहते हैं और उसके निमित्तसे होनेवाले योगको औदारिककाययोग कहते हैं॥ औदारिकका अर्थ ऊपर कहा है, वह जबतक पूर्ण नहीं होता तब तक मिश्र कहलाता है और उसके द्वारा होनेवाले योगको औदारिकमिश्रकाययोग कहते हैं॥

शंका—वैक्रियिककाययोग किसे कहते हैं?

समाधान—अणिमा आदि ऋद्धियोंको विक्रिया कहते हैं। उन ऋद्धियोंके सम्पर्कसे पुद्गल भी 'विक्रिया' कहे जाते हैं। उन विक्रियारूप पुद्गलोंमें उत्पन्न हुए शरीरको वैक्रियिक शरीर कहते हैं। उस शरीरके अवलम्बनसे उत्पन्न हुए परिस्पन्दके द्वारा जो योग होता है उसे वैक्रियिककाय-याग कहते हैं। तथा कार्मण और वैक्रियिक स्कन्धोंसे उत्पन्न हुई शक्तिके द्वारा जो योग होता है उसे वैक्रियिकमिश्रयोग कहते हैं। कहा भी है—

विविहगुण-इद्धिजुत्तं वेउव्वियमहव विकिरिया चेव।
तिस्से भवं च णेयं वेउव्वियकायजोगो सो॥
वेउव्वियमुत्तत्थं विजाण मिस्सं च अपरिपुण्णं ति।
जो तेण संपजोगो वेउव्वियमिस्सजोगो सो॥

'अनेक प्रकारके गुण और ऋद्धियोंसे युक्त शरीरको वैगूर्विक अथवा वैक्रियिक शरीर कहते हैं और इसके द्वारा होनेवाले योगको वैक्रियिक काययोग कहते हैं। वैक्रियिकका अर्थ ऊपर कह चुके। जब तक वह पूर्ण नहीं होता तब तक उसे वैक्रियिकमिश्र कहते हैं और उसके द्वारा जो संप्रयोग होता है उसे वैक्रियिकमिश्रकाययोग कहते हैं।'

शङ्का—आहारककाययोग किसे कहते हैं?

समाधान—जिसके द्वारा आत्मा सूक्ष्म पदार्थोको ग्रहण करता है उसे आहारकशरीर कहते हैं

यह आहारक शरीर एक हाथ प्रमाण होता है, इसका रंग शंखके समान सफेद होता है और समचतुरस्रसंस्थानवाला होता है। सूक्ष्म होनेके कारण गमन करते समय वैक्रियिकशरीरके समान न तो यह पर्वतोंसे टकराता है, न शस्त्रोंसे छिदता है और न अग्निसे जलता है। उस आहारक शरीरसे जो योग होता है उसे आहारककाययोग कहते हैं। तथा आहारक और कार्मण स्कन्धोंसे उत्पन्न हुए वीर्यके द्वारा जो योग होता है वह आहारकमिश्रकाययोग है। कहा भी है—

आहरदि अणेण मुणी सुहुमे अट्ठे सयस्स संदेहे।
गत्ता केवलिपासं तम्हा आहारको जोगो॥
आहारयमुत्तत्थं वियाण मिस्सं च अपरिपुण्णं ति।
जो तेण संपयोगो आहारयमिस्सको जोगो॥

'छठे गुणस्थानवर्ती मुनि अपनेको सन्देह होनेपर जिस शरीरसे केवलीके पास जाकर सूक्ष्म पदार्थोंका आहरण करता है उसे आहारकशरीर कहते हैं और इसलिये उसके द्वारा होनेवाले योग-

को आहारककाययोग कहते हैं। आहारकका अर्थ ऊपर कहा है। जबतक वह आहारकशरीर पूर्ण नहीं होता तबतक उसे आहारकमिश्र कहते हैं और उसके द्वारा जो योग होता है उसे आहारक मिश्रकाययोग कहते हैं।'

शंका—कार्मणकाययोग किसे कहते हैं ?

समाधान—कर्म ही कार्मणशरीर है। अर्थात् आठ प्रकारके कर्मस्कन्धोंको कार्मणशरीर कहते हैं। अथवा कर्ममें उत्पन्न होनेवाले शरीरको कार्मणशरीर कहते हैं। यहां कर्मसे नामकर्मके अवयवरूप कार्मणशरीर नामकर्मका ग्रहण करना चाहिये। उस शरीरके निमित्तसे जो योग होता है उसे कार्मणकाययोग कहते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि अन्य औदारिक आदि शरीरस्कन्धोंके बिना केवल एक कर्मसे उत्पन्न हुई शक्तिके द्वारा जो आत्मप्रदेश परिस्पन्द होता है उसे कार्मण-काययोग कहते हैं। कहा भी है—

कम्मेव य कम्मभवं कम्मइयं तेण जो दु संजोगो।
कम्मइयकायजोगो एग-विग-तिगेसु समएसु॥

'ज्ञानावरणादि आठ प्रकारके कर्मस्कन्धको ही कार्मणशरीर कहते हैं, अथवा जो कार्मण-शरीर नामकर्मके उदयसे उत्पन्न होता है उसे कार्मणशरीर कहते हैं। और उसके द्वारा होनेवाले योगको कार्मणकाययोग कहते हैं। यह योग एक, दो अथवा तीन समयतक होता है।'

औदारिककाययोग किसके होता है, यह बतलानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

ओरालियकायजोगो ओरालियमिस्सकायजोगो तिरिक्खमणुस्साणं ॥ ५७ ॥

औदारिककाययोग और औदारिकमिश्रकाययोग तिर्यञ्च और मनुष्योंके होते हैं॥ ५७॥

वैक्रियिककाययोग किन जीवोंके होता है, यह बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

वेउव्वियकायजोगो वेउव्वियमिस्सकायजोगो देवणेरइयाणं ॥ ५८ ॥

वैक्रियिककाययोग और वैक्रियिकमिश्रकाययोग देवों और नारकियोंके होते हैं॥ ५८॥

शङ्का—तिर्यञ्च और मनुष्य भी वैक्रियिक शरीरवाले सुने जाते हैं, इसलिये यह बात कैसे घटित होगी ?

समाधान—औदारिकशरीर दो प्रकारका होता है—विक्रियात्मक और अविक्रियात्मक। उनमेंसे जो विक्रियात्मक औदारिक शरीर है वह मनुष्य और तिर्यञ्चोंके वैक्रियिक रूपसे कहा गया है, उसका यहाँ ग्रहण नहीं किया है क्योंकि उसमें नाना गुण और ऋद्धियां नहीं होतीं। यहां नाना गुण और ऋद्धियोंसे युक्त वैक्रियिकशरीरका ही ग्रहण किया है, और वह देव-नारकियोंके ही होता है।

आहारकशरीरका स्वामी बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

आहारकायजोगो आहारमिस्सकायजोगो संजदाणमिड्ढिपत्ताणं ॥ ५९ ॥

आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोग ऋद्धिप्राप्त छठे गुणस्थानवर्ती संयतोंके ही होते हैं॥ ५९॥

शंका—यहां ऋद्धिप्राप्तसंयतोंसे आहारकऋद्धिप्राप्त संयतोंका ग्रहण किया है अथवा वैक्रि-

यिकऋद्धिप्राप्त संयतोंका ग्रहण किया है ? प्रथम पक्षमें इतरेतराश्रय दोष आता है; क्योंकि जबतक आहारकऋद्धि उत्पन्न नहीं होती तबतक तो उन्हें ऋद्धिप्राप्त नहीं माना जा सकता और जबतक वे ऋद्धिप्राप्त न हों तबतक उनके आहारकऋद्धि उत्पन्न नहीं हो सकता। इसीप्रकार दूसरा विकल्प भी नहीं बनता; क्योंकि उनके उस समय दूसरी ऋद्धियोंका अभाव होता है। यदि दूसरी ऋद्धियोंका सद्भाव माना जायेगा तो आहारक ऋद्धिवालोंके मनःपर्यय ज्ञानकी उत्पत्ति भी माननी चाहिये। परन्तु आगममें उसका निषेध है ?

समाधान—प्रथमपक्षमें जो इतरेतराश्रय दोष दिया है वह नहीं आता; क्योंकि आहारक ऋद्धिवालेके आहारकऋद्धिकी उत्पत्ति नहीं होती; किन्तु विशिष्ट संयमवालेके आहारकऋद्धि उत्पन्न होती है। अतः कारणमें कार्यका उपचार करके ऋद्धिके कारणभूत संयमको ही यहां ऋद्धि कहा है। इसलिये ऋद्धिके कारणरूप संयमका प्राप्त संयतोंको ऋद्धिप्राप्त संयत कहते हैं और उनके आहारकऋद्धि होती है। अथवा, संयमविशेषसे उत्पन्न हुई आहारकशरीरके उत्पादनरूप शक्तिको आहारकऋद्धि कहते हैं, इसलिये भी इतरेतराश्रय दोष नहीं आता। इसीप्रकार दूसरे विकल्पमें दिया गया दोष भी नहीं आता, क्योंकि ऐसा कोई नियम नहीं है कि एक आत्मामें एकसाथ अनेक ऋद्धियां नहीं होतीं। गणधरोंके सातों ऋद्धियां एकसाथ पाई जाती हैं।

शङ्का—आहारकऋद्धिके साथ मनःपर्यय ज्ञानका विरोध देखा जाता है ?

समाधान—आहारकऋद्धिके साथ मनःपर्यय ज्ञानका विरोध भले ही रहो, किन्तु इससे आहारकऋद्धिका दूसरी सम्पूर्ण ऋद्धियोंके साथ विरोध नहीं माना जा सकता, अन्यथा बड़ी गड़बड़ उपस्थित हो जायेगी।

अब कार्मण शरीरके स्वामीको बतलानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

कम्मइयकायजोगो विग्गहगइ-समावण्णाणं केवलीणं वा समुग्घाद-गदाणं ॥ ६० ॥

विग्रहगतिको प्राप्त चारों गतिके जीवोंके तथा प्रतर और लोकपूरण समुद्घात करनेवाले केवलियोंके कार्मणकाययोग होता है ॥ ६० ॥

शंका—विग्रहगति किसे कहते हैं ?

समाधान—'विग्रह' शरीरको कहते हैं। उसके लिये जो गति होती है उसे विग्रहगति कहते हैं। अथवा 'विग्रह' शब्दका अर्थ व्याघात भी होता है। जिसका अर्थ नोकर्म पुद्गलोंके ग्रहण करनेका निरोध होता है। आशय यह है कि संसारी जीव सदा कर्मपुद्गलों और नोकर्मपुद्गलोंको ग्रहण करता है किन्तु विग्रहगतिमें कर्मपुद्गलोंका ग्रहण तो होता है किन्तु नोकर्मपुद्गलोंका ग्रहण नहीं होता। इसलिये नोकर्मपुद्गलोंके ग्रहण करनेके निरोध पूर्वक जो गति होती है उसे विग्रहगति कहते हैं। अथवा 'विग्रह' मोड़ेको भी कहते हैं। इस लिये विग्रह अर्थात् मोड़ेवाली गतिको विग्रहगति कहते हैं। आगममें कहा है कि एक गतिसे दूसरी गतिमें जानेवाले जीवोंकी चार गतियां होती हैं—इषुगति, पाणिमुक्ता गति, लांगलिका गति और गोमूत्रिका गति। इनमें पहली गति मोड़ेरहित होती है और शेष गतियां मोड़ेसहित होती हैं। धनुषसे छूटे हुए बाणके समान सीधी गतिको इषुगति कहते हैं। इस गतिमें एक समय लगता है। जैसे हाथसे तिरछे फेंके गये द्रव्यकी गति एक मोड़े वाली

होती है वैसे ही संसारी जीवोंकी एक मोड़ेवाली गतिको पाणिमुक्ता गति कहते हैं। इस गतिमें दो समय लगते हैं। जैसे हलमें दो मोड़ होते हैं वैसे ही दो मोड़े वाली गतिको लांगलिका गति कहते हैं। यह गति तीन समय वाली होती है। जैसे गायका मूत्र करना अनेक मोड़ोंवाला होता है वैसे ही तीन मोड़ेवाली गतिको गोमूत्रिका कहते हैं। यह गति चार समय वाली होती है। इनमेंसे इस गतिके सिवाय शेष तीनों गतियोंमें कार्मण काययोग होता है।

शंका—जीव अधिक-से-अधिक तीन मोड़े ही क्यों लेता है ?

समाधान—लोकके मध्यसे लेकर ऊपर, नीचे और तिरछे क्रमसे स्थित आकाशप्रदेशोंकी पंक्तिको श्रेणी कहते हैं। उस श्रेणीके अनुसार ही जीवोंका गमन होता है, श्रेणिका उलंघन करके गमन नहीं होता। अतः जीवको मोड़ा लेना पड़ता है किन्तु ऐसा कोई स्थान नहीं है जहां पहुँचनेके लिये तीनसे अधिक मोड़े लग सकें।

शंका—समुद्घातगत केवली किन्हें कहते हैं ?

समाधान—कर्मोंकी स्थिति और अनुभागके उत्तरोत्तर होनेवाले घातको उद्घात कहते हैं और समीचीन उद्घातको समुद्घात कहते हैं। तथा समुद्घात करनेवाले केवलियोंको समुद्घातगत केवली कहते हैं।

शंका—केवलियोंके समुद्घात सहेतुक होता है या निर्हेतुक ? निर्हेतुक तो हो नहीं सकता, क्योंकि ऐसा मानने पर सभी केवलियोंको समुद्घातपूर्वक ही मोक्ष प्राप्तिका प्रसंग आयेगा। शायद कोई कहें कि सभी केवली समुद्घातपूर्वक ही मोक्ष जाते हैं ऐसा माननेमें क्या हानि है ? तो इसका उत्तर यह है कि लोकपूरन समुद्घात करनेवाले केवलियोंकी संख्या वर्षपृथक्त्वके अनन्तरमें बीस बतलाई है। वह नहीं बन सकती। अतः समुद्घातको निर्हेतुक नहीं माना जा सकता। प्रथम पक्ष भी ठीक नहीं है, क्योंकि केवलिसमुद्घातका कोई हेतु नहीं पाया जाता। शायद कहा जाये कि तीन अघातियाँ कर्मोंकी और आयुकर्मकी स्थितिमें असमानता ही समुद्घातका कारण है, सो भी कहना ठीक नहीं है, क्योंकि क्षीणकषाय गुणस्थानकी अन्तिम अवस्थामें सम्पूर्ण कर्म समान नहीं होते, इसलिये ऐसा मानने पर भी सभी केवलियोंके समुद्घातका प्रसंग आ जायगा।

समाधान—यतिवृषभ आचार्यके उपदेशानुसार क्षीणकषाय गुणस्थानके अन्तिम समयमें सम्पूर्ण अघातिया कर्मोंकी स्थिति समान नहीं होनेसे सभी केवली समुद्घात करके ही मोक्ष जाते हैं। परन्तु जिन आचार्योंके मतानुसार लोकपूरण समुद्घात करनेवाले केवलियोंकी बीस संख्याका नियम है, उनके मतानुसार कुछ केवली समुद्घात करते हैं और कुछ केवली समुद्घात नहीं करते।

शङ्का—कौनसे केवली समुद्घात नहीं करते ?

समाधान—जिनके संसारमें रहनेका काल वेदनीय आदि तीन कर्मोंकी स्थितिके समान है वे समुद्घात नहीं करते, शेष केवली करते हैं।

शङ्का—संसारके विच्छेद (विनाश) का क्या कारण है ?

समाधान—द्वादशांगका ज्ञान, उसमें तीव्र भक्ति, केवलिसमुद्घात और अनिवृत्तिरूप परिणाम ये सब संसारके विच्छेदके कारण हैं। परन्तु ये सब कारण सब जीवोंमें नहीं होते; क्योंकि दस पूर्व और नौ पूर्वके धारी भी क्षपकश्रेणीपर चढ़ते देखे जाते हैं। अतः सबके आयु कर्म तथा तीन

शेष अघातिया कर्मोंकी स्थिति समान नहीं पाई जाती। इसलिये कितने ही जीव समुद्घातके बिना ही आयुके समान शेष कर्मोंको कर लेते हैं और कितने ही जीव समुद्घातके द्वारा शेष कर्मोंको आयु-कर्मके समान कर लेते हैं। परन्तु यह संसारका घात केवलीमें पहले नहीं होता; क्योंकि पहले सभी जीवोंके परिणाम समान होते हैं।

शंका—जब सभीके परिणाम समान होते हैं तो पीछे भी संसारका घात मत होओ?

समाधान—वीतरागरूप परिणामोंके समान होते हुए भी अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आयु कर्मकी अपेक्षा करके आत्मासे उत्पन्न हुए अन्य विशिष्ट परिणामोंसे संसारका घात होता है।

शङ्का—अन्य आचार्यों ने ऐसा व्याख्यान नहीं किया, अतः इस प्रकारका व्याख्यान करनेसे ऐसा क्यों न माना जाये कि आप सूत्रके विरुद्ध जा रहे हैं?

समाधान—जो आचार्य कार्मणकाययोगमें स्थित सयोगकेवलियोंका अन्तराल वर्षपृथक्त्व बतलाने वाले षट्खण्डागमसूत्रके अनुयायी हैं, उनका ही पूर्वोक्त कथनसे विरोध आता है।

शंका—एक गाथा इस प्रकार है—

'छम्मासाउवसेसे उप्पण्णं जस्स केवलं णाणं।
ससमुग्घाओ सिज्झइ सेसा भज्जा समुग्घाए॥ ६८॥

अर्थात्—छह मास आयु शेष रहनेपर जिसको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है वह समुद्घात करके ही मुक्त होता है। शेष जीव समुद्घात करते भी हैं और नहीं भी करते॥ ६८॥

इस गाथाके उपदेशको आप क्यों नहीं मानते?

समाधान—उक्त प्रकारसे किसीके समुद्घात करने और किसीके न करनेका कोई कारण नहीं पाया जाता, इस लिये पूर्वोक्त गाथाका उपदेश ग्रहण नहीं किया है।

शंका—किन्हीं जीवोंके समुद्घात करने और किन्हींके नहीं करनेमें कारण इस प्रकार बतलाया तो है—

'जेसिं आउ-समाइं णामा गोदाणि वेयणीयं च।
ते अकय-समुग्घाया वच्चंतियरे समुग्घाए॥ ६९॥

'जिन जीवोंके नाम, गोत्र और वेदनीय कर्मकी स्थिति आयुकर्मके समान होती है वे समुद्घात नहीं करके ही मुक्त होते हैं और अन्य जीव समुद्घात करके ही मुक्त होते हैं॥ ६९॥

समाधान—उक्त कथनको किन्हीं जीवोंके समुद्घात करने और किन्हींके न करनेमें कारण नहीं माना जा सकता; क्योंकि सब जीवोंमें समान अनिवृत्तिरूप परिणामोंके द्वारा घाती हुई स्थितियोंके आयुकर्मके समान होनेमें विरोध आता है। और इसका कारण यह है कि क्षीणकषायके अन्तिम समयमें तीनों अघातिया कर्मोंकी जघन्य स्थिति सभी जीवोंके पल्योपमके असंख्यातवें भाग पाई जाती है। अतः पूर्वोक्त कथन ठीक प्रतीत नहीं होता।

शंका—आगम तर्कका विषय नहीं है, अतः उक्त प्रकारसे पूर्वोक्त गाथाओंके अभिप्रायका खण्डन करना उचित नहीं है?

समाधान—उक्त दोनों गाथाओंका आगमरूपसे निर्णय नहीं है। यदि उक्त दोनों गाथाएँ आगमिक सिद्ध होती हैं तो उनका ही निर्णय मान्य हो सकता है।

अब काययोगका गुणस्थानोंमें ज्ञान करानेके लिये आगेके चार सूत्र कहते हैं—

कायजोगो ओरालियकायजोगो ओरालियमिस्सकायजोगो एइंदियप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ॥ ६१ ॥

सामान्यकाययोग, औदारिककाययोग और औदारिकमिश्रकाययोग एकेन्द्रियसे लेकर सयोगिकेवलीगुणस्थान तक होते हैं ॥ ६१ ॥

शंका—ऐसा कथन करनेसे तो देशविरत आदि क्षीणकषाय पर्यन्त गुणस्थानोंमें भी औदारिकमिश्रयोगका सद्भाव प्राप्त होगा ?

समाधान—आगे बतलाया है कि औदारिकमिश्रकाययोग अपर्याप्तकोंके होता है। अतः पूर्वोक्त दोष नहीं आता ॥

अब वैक्रियिककाययोगके स्वामी बतलानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

वेउव्वियकायजोगो वेउव्वियमिस्सकायजोगो सण्णिमिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्माइट्ठि त्ति ॥ ६२ ॥

वैक्रियिककाययोग और वैक्रियिकमिश्रकाययोग संज्ञीमिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयत सम्यग्दृष्टि तक होते हैं ॥ ६२ ॥

शङ्का—इस सूत्रके कथनानुसार तो सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें भी वैक्रियिकमिश्रकाययोगका सद्भाव मानना पड़ेगा।

समाधान—आगे कहा है कि 'सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें जीव नियमसे पर्याप्तक होते हैं' तथा 'वैक्रियिकमिश्रकाययोग अपर्याप्तकोंके ही होता है।' इन दोनों सूत्रोंसे जाना जाता है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टिके वैक्रियिकमिश्रकाययोग नहीं होता ॥

आहारककाययोगका स्वामी बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

आहारकायजोगो आहारमिस्सकायजोगो एक्कम्हि चेव पमत्तसंजदट्ठाणे ॥ ६३ ॥

आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोग एक प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें ही होते हैं ॥ ६३ ॥

शंका—अप्रमत्तसंयतोंके आहारककाययोग क्यों नहीं होता ?

समाधान—अप्रमत्तसंयतोंके आहारककाययोगके उत्पन्न होनेके निमित्तकारणोंका अभाव है।

शङ्का—आहारककाययोगके उत्पन्न होनेमें निमित्तकारण क्या हैं ?

समाधान—आहारककायकी उत्पत्तिका निमित्तकारण प्रमाद है। अत: जो कार्य प्रमादके निमित्तसे उत्पन्न होता है वह प्रमादरहित जीवोंके नहीं हो सकता।

अब कार्मणकाययोगके स्वामी बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

कम्मइयकायजोगो एइंदियप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ॥ ६४ ॥

कार्मणकाययोग एकेन्द्रियसे लेकर सयोगकेवली तक होता है ॥ ६४ ॥

शंका—इस कथनसे तो देशविरत गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान तक भी कार्मण-काययोगका अस्तित्व प्राप्त होता है ?

समाधान—आगे कहा है कि संयतासंयत और संयत गुणस्थानोंमें जीव नियमसे पर्याप्त होते हैं। इस कथनसे उक्त गुणस्थानोंमें कार्मणकाययोगका अभाव ज्ञात होता है। तथा समुद्घात दशाको छोड़कर पर्याप्तकोंके कार्मणकाययोग नहीं पाया जाता।

शंका—पर्याप्तक जीवोंके कार्मणकाययोग क्यों नहीं होता ?

समाधान—विग्रहगतिका अभाव होनेसे पर्याप्तक जीवोंके कार्मणकाययोग नहीं पाया जाता।

शंका—देव, विद्याधर आदि पर्याप्तक जीवोंके भी मोड़वाली गति देखी जाती है ?

समाधान—पूर्व शरीरको छोड़कर नया शरीर ग्रहण करनेके लिये जाते हुए जीवकी जो मोड़ेवाली गति होती है उसीको विग्रहगति कहते हैं। उसीमें कार्मणकाययोग होता है।

अब तीन योगोंके स्वामी बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

मणजोगो वचिजोगो कायजोगो सण्णिमिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ॥ ६५ ॥

मनोयोग, वचनयोग और काययोग संज्ञीमिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगकेवलीतक होते हैं ॥६५॥

शंका—काययोग एकेन्द्रिय जीवोंके भी होता है फिर यहां उसे संज्ञी पञ्चेन्द्रियसे क्यों बतलाया है ?

समाधान—यहांपर वचनयोग और मनोयोगके बिना न होनेवाले काययोगकी विवक्षा है। यही बात वचनयोगके सम्बन्धमें जाननी चाहिये। अर्थात् यद्यपि वचनयोग दोइन्द्रिय जीवोंसे होता है, किन्तु यहां मनोयोगके बिना न होनेवाले वचनयोगको विवक्षा है इसलिये उसको भी संज्ञी पञ्चेन्द्रियसे बतलाया है।

अब दो योगोंके स्वामी बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

वचिजोगो कायजोगो वीइंदियप्पहुडि जाव असण्णिपंचिंदिया त्ति ॥ ६६ ॥

वचनयोग और काययोग दोइन्द्रियसे लेकर असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवोंतक होता है ॥ ६६ ॥

शंका—यहांपर इन दोनों योगोंका सद्भाव जो दोइन्द्रियसे लेकर असंज्ञीपर्यन्त बतलाया है वह घटित नहीं होता, क्योंकि इनसे आगे भी ये दोनों योग पाये जाते हैं, अत: असंज्ञीतक ही ये दोनों योग नहीं हो सकते ?

समाधान—आगेके जीवोंके तीनों योग होते हैं। अत: दो योग असंज्ञीपर्यन्त ही होते हैं।

अब एक योगके स्वामी बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

कायजोगो एइंदियाणं ॥ ६७ ॥

काययोग एकेन्द्रिय जीवोंके होता है ॥ ६७ ॥

विशेषार्थ—एकेन्द्रिय जीवोंके एक काययोग ही होता है, दोइन्द्रियसे लेकर असंज्ञीपर्यन्त जीवोंके काययोग और वचनयोग ये दो योग होते हैं। शेष जीवोंके तीनों योग होते हैं।

पहले सामान्यसे योगका सत्व कहा, अब अमुक कालमें अमुक योगका सत्व है और अमुक कालमें अमुक योगका सत्त्व नहीं है, यह बतलानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

मणजोगो वचिजोगो पज्जत्ताणं अत्थि, अपज्जत्ताणं णत्थि ॥ ६८ ॥

मनोयोग और वचनयोग पर्याप्तकोंके ही होते हैं, अपर्याप्तकोंके नहीं होते ॥ ६८ ॥

शंका—अपर्याप्त अवस्थामें भी क्षयोपशमकी अपेक्षासे वचनयोग और मनोयोगके होनेमें कोई विरोध नहीं है ?

समाधान—जो क्षयोपशम वचन और मनरूपसे निष्पन्न नहीं हुआ उसे योग नहीं कहा जा सकता।

शङ्का—पर्याप्तक जीवोंके भी किसी एक योगके होनेपर शेष दो योग नहीं होते। अतः उसके उस समय उन दो योगोंका अभाव होता है ?

समाधान—पर्याप्त अवस्थामें विवक्षित समयमें किसी एक योगके होनेपर भी शेष दो योगोंका होना संभव है। अथवा उस समय शेष दोनों योग शक्तिरूपसे विद्यमान रहते हैं। इसलिये वहाँपर उनका अस्तित्व बतलाया है।

अब सामान्यकाययोगकी सत्ता बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

कायजोगो पज्जत्ताण वि अत्थि अपज्जत्ताण वि अत्थि ॥ ६९ ॥

काययोग पर्याप्तकोंके भी होता है और अपर्याप्तकोंके भी होता है ॥ ६९ ॥

ये योग पर्याप्तकके ही होते हैं और ये योग पर्याप्तक अपर्याप्तक दोनोंके होते हैं, ऐसा सुननेसे पर्याप्तियोंके विषयमें उत्पन्न हुई शङ्काको दूर करनेके लिये आगेके सूत्र कहते हैं—

छ पज्जत्तीओ, छ अपज्जत्तीओ ॥ ७० ॥

छै पर्याप्तियाँ और छै अपर्याप्तियाँ होती हैं ॥ ७० ॥

विशेषार्थ—आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन इनकी निष्पत्तिको पर्याप्ति कहते हैं। वे पर्याप्तियाँ छै हैं—आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति, श्वासोच्छ्वास-पर्याप्ति, भाषापर्याप्ति और मनःपर्याप्ति। इन छै पर्याप्तियोंकी अपूर्णताको अपर्याप्ति कहते हैं। अपर्याप्तियाँ भी छै ही हैं—आहार अपर्याप्ति, शरीर अपर्याप्ति, इन्द्रिय अपर्याप्ति, श्वासोच्छ्वास अपर्याप्ति, भाषा अपर्याप्ति और मन अपर्याप्ति। इन बारहोंका स्वरूप पहले कह आये हैं॥

अब उन पर्याप्तियोंका आधार बतलानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं।

सण्णिमिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्माइट्ठि त्ति ।। ७१ ।।

उक्त सभी पर्याप्तियां संज्ञीमिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक होती हैं ।। ७१ ।।

शङ्का—तो क्या सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान वालोंके भी छै पर्याप्तियां होती हैं ?

समाधान—सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें अपर्याप्तकाल नहीं पाया जाता, इसलिये वहां छ पर्याप्तियाँ नहीं होतीं ।

शंका—देशविरत आदि ऊपरके गुणस्थानोंमें छै पर्याप्तियाँ क्यों नहीं होतीं ?

समाधान—छै पर्याप्तियोंकी समाप्तिका नाम ही पर्याप्ति है और यह समाप्ति पांचवें आदि ऊपरके गुणस्थानोंमें नहीं पाई जाती; क्योंकि अपर्याप्तिकी अन्तिम अवस्थावर्ती एक समयमें पर्याप्तिको समाप्ति होती है और यह समाप्ति चौथे गुणस्थान तक ही हो जाती है ।

छै पर्याप्तियोंके सुननेसे कोई यह न समझ ले कि पर्याप्तियां छै ही होती हैं, इसलिये आगेका सूत्र कहते हैं—

पंच पज्जत्तीओ पंच अपज्जत्तीओ ।। ७२ ।।

पांच पर्याप्तियाँ और पांच अपर्याप्तियाँ होती हैं ।। ७२ ।।

शंका—छै पर्याप्तियोंके अन्दर पाँच पर्याप्तियाँ आ ही जाती हैं इसलिये अलगसे पांच पर्याप्तियोंका कथन करना व्यर्थ क्यों नहीं है ?

समाधान—किन्हीं जीवोंके छहों पर्याप्तियां होती हैं और किन्हीं जीवोंमें पाँच ही पर्याप्तियाँ होती हैं यह बतलानेके लिये अलगसे कथन किया है ।

शंका—वे पाँच पर्याप्तियाँ कौन-सी हैं ?

समाधान—मनः पर्याप्तिको छोड़कर शेष पांच पर्याप्तियाँ यहाँ ली गई हैं ।।

वे पाँच पर्याप्तियाँ किनके होती हैं ? यह बतलानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

बीइंदियप्पहुडि जाव असण्णिपंचिंदिया त्ति ।। ७३ ।।

वे पाँच पर्याप्तियाँ दोइन्द्रिय जीवोंसे लेकर असंज्ञीपञ्चेन्द्रिय पर्यन्त होती हैं ।। ७३ ।।

शंका—मनका कार्य ज्ञान है । वह ज्ञान मनुष्योंकी तरह विकलेन्द्रियोंमें भी पाया जाता है, अतः विकलेन्द्रियोंमें भी मन क्यों नहीं है ?

समाधान—विकलेन्द्रियोंमें रहनेवाला ज्ञान मनका कार्य है यह बात असिद्ध है ।

शङ्का—मनुष्योंमें होनेवाला ज्ञान तो मनका कार्य है ?

समाधान—मनुष्योंमें होनेवाला ज्ञान मनका कार्य रहो ।

शंका—जब मनुष्योंमें होनेवाले ज्ञानको मनका कार्य स्वीकार कर लिया तो चूँकि विकलेन्द्रियोंमें होनेवाला ज्ञान भी ज्ञान ही है । इसलिये यह अनुमान क्यों नहीं किया जा सकता कि विकलेन्द्रियोंका ज्ञान भी मनसे होता है ?

समाधान—भिन्न जातिमें होनेवाले ज्ञानके साथ भिन्न जातिमें होनेवाले ज्ञानकी समानता नहीं की जा सकती। अतः मनुष्योंमें होनेवाले ज्ञानको मनका कार्य देखकर विकलेन्द्रियोंमें होनेवाले ज्ञानको मनका कार्य नहीं माना जा सकता।

शंका—विकलेन्द्रियोंके मन नहीं होता, यह बात किस प्रमाणसे जानी जाती है ?

समाधान—आगमप्रमाणसे जाना जाता है कि विकलेन्द्रियोंके मन नहीं होता।

शंका—आगमको प्रमाण कैसे माना जाये ?

समाधान—जैसे प्रत्यक्ष स्वभावसे ही प्रमाण है वैसे ही आगम भी स्वभावसे ही प्रमाण है ॥

फिर भी पर्याप्तिकी संख्याके अस्तित्वमें भेद बतलानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

चत्तारि पज्जत्तीओ चत्तारि अपज्जत्तीओ ॥ ७४ ॥

चार पर्याप्तियाँ और चार अपर्याप्तियाँ होती हैं ॥ ७४ ॥

शंका—वे चार पर्याप्तियां कौन-सी हैं ?

समाधान—आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति और श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति।

चारों पर्याप्तियोंके स्वामी जीवोंको बतलानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

एइंदियाणं ॥ ७५ ॥

उक्त चारों पर्याप्तियाँ एकेन्द्रिय जीवोंके होती हैं ॥ ७५ ॥

शंका—एकेन्द्रिय जीवोंके श्वासोच्छ्वास तो नहीं पाया जाता ?

समाधान—आगममें एकेन्द्रिय जीवोंके श्वासोच्छ्वासका अस्तित्व बतलाया है।

शंका—प्रत्यक्षसे यह आगम बाधित क्यों नहीं है ?

समाधान—सम्पूर्ण पदार्थोंको प्रत्यक्ष करनेवाले प्रत्यक्षसे यदि बाधा आती हो तो उसे प्रत्यक्षबाधा कहा जा सकता है। परन्तु इन्द्रियप्रत्यक्ष तो सम्पूर्ण पदार्थोंको विषय ही नहीं करता। तब इन्द्रियप्रत्यक्षके अविषयी भूत वस्तुका असद्भाव कैसे माना जा सकता है ?

इस प्रकार पर्याप्ति और अपर्याप्तियोंका कथन करके अब 'अमुक जीवके यह योग होता है और अमुक जीवके यह योग नहीं होता' यह बतलानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

ओरालियकायजोगो पज्जत्ताणं ओरालियमिस्सकायजोगो अपज्जत्ताणं ॥७६॥

औदारिककाययोग पर्याप्तकोंके और औदारिकमिश्रकाययोग अपर्याप्तकोंके होता है ॥७६॥

शंका—जिन तिर्यञ्च या मनुष्योंकी छै, पांच या चार पर्याप्तियां पूर्ण हो जाती हैं उन्हें पर्याप्तक कहते हैं। तो क्या किसी एक पर्याप्तिके पूर्ण होनेसे जीव पर्याप्त कहा जाता है अथवा सम्पूण पर्याप्तियोंके पूर्ण होनेसे पर्याप्त कहलाता है ?

समाधान—जिसकी शरीरपर्याप्ति पूर्ण हो जाती है उसे पर्याप्तक कहते हैं।

शंका—औदारिककाययोग और औदारिकमिश्रकाययोग किसे कहते हैं ?

समाधान—पर्याप्त शरीरके आलम्बनसे उत्पन्न हुए जीव प्रदेशपरिस्पन्दसे जो योग होता

है उसे औदारिककाययोग कहते हैं। और चूंकि अपर्याप्त अवस्थामें औदारिकमिश्रकाययोग होता है इस लिये कार्मण और औदारिक शरीरके स्कन्धोंके निमितसे उत्पन्न हुए जीव प्रदेशपरिस्पंदसे (जीवके प्रदेशोंमें होनेवाले कम्पनसे) जो योग होता है उसे औदारिकमिश्रकाययोग कहते हैं।

शङ्का—पर्याप्त अवस्थामें भी कार्मण शरीरका सत्त्व रहता है अतः वहां भी कार्मण और औदारिक शरीरके स्कन्धोंके निमित्तसे आत्माके प्रदेशोंमें परिस्पन्द होता है। तब पर्याप्त दशामें भी औदारिकमिश्रकाययोग क्यों नहीं माना जाता ?

समाधान—पर्याप्त अवस्थामें यद्यपि कार्मणशरीर रहता है फिर भी वह जीवके प्रदेशोंके परिस्पन्दका कारण नहीं है। शायद कहा जाये कि कार्मण शरीर परम्परासे जीवके प्रदेशोंके परिस्पन्दका कारण है। किन्तु तब तो वह औपचारिक ठहरेगा। और औपचारिक कारणको यहां विवक्षा नहीं है।

शंका—यदि परिस्पन्द बन्धका कारण है तो गमन करते हुए मेघोंके भी कर्मबन्धका प्रसंग आता है ?

समाधान—कर्मोंके द्वारा चेतन आत्मामें होनेवाले परिस्पन्दको ही आस्रवका कारण माना है। किन्तु मेघोंका परिस्पन्द कर्मजनित नहीं है, अतः वह आस्रवका कारण भी नहीं है।

अब वैक्रियिककाययोगका सत्त्व बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

वेउव्वियकायजोगो पज्जत्ताणं वेउव्वियमिस्सकायजोगो अपज्जत्ताणं ।।७७।।

वैक्रियिककाययोग पर्याप्तकोंके और वैक्रियिकमिश्रकाययोग अपर्याप्तकोंके होता है ।। ७७ ।।

आहारककाययोगका सत्त्व बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

आहारककायजोगो पज्जत्ताणं आहारमिस्सकायजोगो अपज्जत्ताणं ।।७८।।

आहारककाययोग पर्याप्तकोंके और आहारकमिश्रकाययोग अपर्याप्तकोंके होता है ।।७८।।

शंका—आहारकशरीरको उत्पन्न करनेवाला साधु पर्याप्तक ही होता है, अन्यथा उसके मुनिपना नहीं हो सकता। ऐसी अवस्थामें आहारकमिश्रकाययोग अपर्याप्तकके कैसे हो सकता है ?

समाधान—आहारकशरीरको उत्पन्न करने वाला साधु औदारिकशरीरसम्बन्धी छे पर्याप्तियोंके पूर्ण होनेसे भले हो पर्याप्तक रहे, किन्तु आहारकशरीरसम्बन्धी पर्याप्तियोंके पूर्ण न होने की अपेक्षा वह अपर्याप्तक ही है।

शंका—एक जीवमें एक साथ पर्याप्तपना और अपर्याप्तपना नहीं रह सकता ?

समाधान—एक साथ एक जीवमें पर्याप्त योग और अपर्याप्त योग सम्भव नहीं है, यह बात हमें इष्ट ही है।

शंका—तो फिर हमारा पूर्व कथन क्यों न मान लिया जाये और उसके माननेपर आपके कथनमें विरोध क्यों नहीं आता है ?

समाधान—भूतपूर्वन्यायकी अपेक्षा आहारकमिश्रअवस्थामें भी पर्याप्तकपनेका व्यवहार किया जा सकता है, इसलिये विरोध असिद्ध है।

शंका—जिसके औदारिकशरीर सम्बन्धी छै पर्याप्तियां नष्ट हो चुकी हैं और आहारकशरीर सम्बन्धी पर्याप्तियां अभी पूर्ण नहीं हुई हैं ऐसे अपर्याप्त साधुके संयम कैसे हो सकता है ?

समाधान—संयमका लक्षण आस्रवको रोकना है। और ऐसे संयमका मन्द योगके साथ होनेमें कोई विरोध नहीं है। यदि संयमका मन्द योगके साथ विरोध माना जायेगा तो समुद्घात करनेवाले केवलीके भी संयम नहीं हो सकेगा; क्योंकि आहारकमिश्रकाययोगीकी तरह समुद्घातगत केवलीके भी अपर्याप्त सम्बन्धी योग पाया जाता है।

शंका—'संयतासंयत तथा संयत गुणस्थानोंमें जीव नियमसे पर्याप्तक होते हैं' इस सूत्रके साथ उक्त कथनका विरोध क्यों नहीं है ?

समाधान—उक्त सूत्रका कथन द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे है। अत: आहारकशरीरकी अपर्याप्त, अवस्थामें भी औदारिकशरीर सम्बन्धी छै पर्याप्तियोंके होनेसे उक्त कथन बन जाता है।

शंका—कार्मणकाययोग पर्याप्त अवस्थामें होता है, या अपर्याप्त अवस्थामें होता है अथवा दोनों अवस्थाओंमें होता है, यह कुछ भी नहीं कहा, इसका निश्चय कैसे किया जाये ?

समाधान—सूत्र नं० ६० में कहा है कि 'विग्रह गतिको प्राप्त चारों गतिके जीवोंके और समुद्घातगत केवलियोंके कार्मणकाययोग होता है' उससे यह निश्चित होता है कि अपर्याप्तकोंके ही कार्मणकाययोग होता है।

इसप्रकार पर्याप्ति और अपर्याप्तियोंमें योगोंके सत्त्व और असत्त्वका कथन करके अब चारों गति सम्बन्धी पर्याप्ति और अपर्याप्तियोंमें गुणस्थानोंका सत्त्व और असत्त्व बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

णेरइया मिच्छाइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठिट्ठाणे सिया पज्जत्ता सिया अपज्जत्ता ॥७९॥

नारकी जीव मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें पर्याप्तक होते हैं और अपर्याप्तक भी होते हैं ॥ ७९ ॥

नारकसम्बन्धी शेष दो गुणस्थानोंके कहनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

सासणसम्माइट्ठि-सम्मामिच्छाइट्ठिट्ठाणे णियमा पज्जत्ता ॥ ८० ॥

नारकी जीव सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यक्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें नियमसे पर्याप्तक होते हैं ॥ ८० ॥

शङ्का—सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यक्मिथ्यादृष्टि नरकमें क्यों नहीं उत्पन्न होते ?

समाधान—इन दोनों गुणस्थानोंमें नरकमें उत्पत्तिके निमित्तभूत परिणाम नहीं होते ?

शंका—उन दोनों गुणस्थानोंमें इसप्रकारके परिणाम क्यों नहीं होते ?

समाधान—क्योंकि ऐसा स्वभाव ही है।

शंका—नारकी जीव अग्निमें जलकर भस्म हो जाते हैं और उस भस्मसे पुन: उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसी दशामें अपर्याप्त अवस्थामें उक्त दोनों गुणस्थानोंके होनेमें कोई विरोध नहीं है, अत: 'इन दोनों गुणस्थानोंमें नारकी नियमसे पर्याप्तक होते हैं' यह नियम नहीं बनता।

समाधान—अग्नि आदिसे जलानेपर भी नारकियोंका मरण नहीं होता। यदि कदाचित् उनका मरण हो भी जावे तो वे पुनः नरकमें उत्पन्न नहीं होते, क्योंकि, 'नारकी जीव नरकसे निकलकर नरकगतिमें नहीं जाते, देवगतिमें नहीं जाते, किन्तु तिर्यञ्चगति और मनुष्यगतिमें जाते हैं' इस आगमके अनुसार नारकियोंके पुनः नरकगतिमें उत्पन्न होनेका निषेध है।

शङ्का—जो नारकी आयु पूरी करके मरते हैं उनके लिये ही उक्त नियम है ?

समाधान—नारकियोंकी अकालमृत्यु नहीं होती।

शंका—यदि नारकियोंका अकालमरण नहीं होता तो जिनका शरीर जलाकर राख कर दिया गया है उन नारकियोंका मरण कैसे बनेगा ?

समाधान—देहका विकार आयुकर्मके विनाशमें निमित्त नहीं है, अन्यथा बाल्य अवस्थासे यौवन अवस्थाको प्राप्त हुए जीवके भी मरणका प्रसंग उपस्थित होगा।

नारकियोंका सामान्यरूपसे कथन करके अब विशेषरूपसे कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

एवं पढमाए पुढवीए णेरइया ॥ ८१ ॥

इसीप्रकार प्रथम पृथिवीमें नारकी होते हैं अर्थात् प्रथम पृथिवीके नारकियोंकी पर्याप्तियाँ और अपर्याप्तियाँ नरकगतिके सामान्य कथनके अनुसार ही होती हैं ॥ ८१ ॥

शेष पृथिवियोंमें रहनेवाले नारकियोंके विशेष कथनके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

विदियादि जाव सत्तमाए पुढवीए णेरइया मिच्छाइट्ठिट्ठाणे सिया पज्जत्ता सिया अपज्जत्ता ॥ ८२ ॥

दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवीतकके नारकी मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें पर्याप्त भी होते हैं और अपर्याप्त भी होते हैं ॥ ८२ ॥

शंका—इसका क्या कारण है ?

समाधान—प्रथम पृथिवीको छोड़कर शेष छे पृथिवियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंकी ही उत्पत्ति होती है, इसलिये वहाँपर प्रथम गुणस्थानमें पर्याप्त और अपर्याप्त दोनों अवस्थाएँ बतलाई हैं।

उन पृथिवियोंमें किस अवस्थामें शेष गुणस्थानोंका सद्भाव है और किस अवस्थामें नहीं है, यह बतलानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

सासणसम्माइट्ठि-सम्मामिच्छाइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठिट्ठाणे णियमा पज्जत्ता ॥८३॥

दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवीतकके नारकी सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें नियमसे पर्याप्तक होते हैं ॥ ८३ ॥

शंका—सम्यग्मिथ्यादृष्टिजीवकी उत्पत्ति शेष छे पृथिवियोंमें भले ही न हो, क्योंकि सम्यग्मिथ्यात्वरूप परिणामको प्राप्त हुए जीवका मरण नहीं होता। यदि उसका मरणकाल आता है तो वह किसी दूसरे गुणस्थानमें चला जाता है। किन्तु 'दूसरे और चौथे गुणस्थानवाले जीव मरकर वहाँ उत्पन्न नहीं होते' यह कथन नहीं बनता।

समाधान—सासादनगुणस्थानवाले तो नरकमें उत्पन्न ही नहीं होते; क्योंकि सासादनगुण-

स्थानवालेके नरकायुका बन्ध नहीं होता। शायद कहा जाये कि जिसने पहले नरकायुका बन्ध कर लिया है ऐसा जीव सासादनगुणस्थानवर्ती होकर नरकमें उत्पन्न हो जायेगा। किन्तु ऐसा कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि ऐसे जीवका सासादन गुणस्थानमें मरण नहीं होता। तथा असंयत सम्यग्दृष्टि जीव भी द्वितीय आदि पृथिवियोंमें उत्पन्न नहीं होते; क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीवोंके शेष छै नरकोंमें उत्पन्न होनेके निमित्त नहीं पाये जाते। अतः सासादनगुणस्थानवर्ती तथा असंयतसम्यग्दृष्टि जीव नीचेके छै नरकोंमें उत्पन्न नहीं होते।

अब तिर्यंचगतिमें गुणस्थानोंके सत्त्वकी अवस्था बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

तिरिक्खा मिच्छाइट्ठि-सासणसम्माइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठिट्ठाणे सिया पज्जत्ता सिया अपज्जत्ता ॥ ८४ ॥

तिर्यञ्च मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें पर्याप्त भी होते हैं और अपर्याप्त भी होते हैं ॥ ८४ ॥

शङ्का—मिथ्यादृष्टि और सासादन सम्यग्दृष्टि जीवोंका तिर्यञ्चोंमें पर्याप्त और अपर्याप्त दोनों अवस्थाओंमें सत्त्व भले ही रहे, क्योंकि इन दोनों स्थानवालोंकी तिर्यञ्चोंमें उत्पत्ति होनेमें कोई विरोध नहीं है। परन्तु सम्यग्दृष्टि जीव तिर्यञ्चोंमें उत्पन्न नहीं होते; क्योंकि तिर्यञ्चोंकी अपर्याप्त पर्यायके साथ सम्यग्दर्शनका विरोध है ?

समाधान—तिर्यञ्चोंकी अपर्याप्त पर्यायके साथ सम्यग्दर्शनका विरोध नहीं है, यदि विरोध माना जायेगा तो ऊपरका सूत्र अप्रमाण ठहरेगा।

शंका—जिसने तीर्थङ्करकी सेवा की है और मोहनीयकी सात प्रकृतियोंका क्षय कर दिया है, ऐसा क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव दुःखबहुल तिर्यञ्चोंमें कैसे उत्पन्न होता है ?

समाधान—तिर्यञ्चोंको नारकियोंसे अधिक दुःख नहीं है।

शंका—तो फिर नारकियोंमें भी सम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न नहीं होंगे ?

समाधान—सम्यग्दृष्टियोंकी नारकियोंमें उत्पत्ति बतलाने वाला आगमप्रमाण पाया जाता है।

शंका—सम्यग्दृष्टि जीव नारकियोंमें क्यों उत्पन्न होते हैं ?

समाधान—सम्यग्दर्शनको ग्रहण करनेसे पहले जिन्होंने मिथ्यादृष्टि अवस्थामें तिर्यञ्चायु अथवा नरकायुका बन्ध कर लिया है, उन सम्यग्दृष्टियोंकी उत्पत्ति नारकियोंमें अथवा तिर्यञ्चोंमें होती है।

शङ्का—सम्यग्दर्शनके प्रभावसे उस बंधी हुई आयुका छेद क्यों नहीं हो जाता ?

समाधान—छेद तो अवश्य होता है किन्तु निर्मूल छेद नहीं होता।

शंका—जड़-मूलसे नाश क्यों नहीं होता ?

समाधान—आगे भवकी बंधी हुई आयुका निर्मूल नाश नहीं होता, ऐसा स्वभाव ही है।

अब तिर्यञ्चोंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंका स्वरूप बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

सम्मामिच्छाइट्ठि-संजदासंजदट्ठाणे णियमा पज्जत्ता ॥ ८५ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानमें तिर्यञ्च नियमसे पर्याप्तक होते हैं ॥ ८५ ॥

शंका—जिन्होंने मिथ्यादृष्टि अवस्थामें तिर्यञ्चायुका बन्ध करनेके पश्चात् सम्यग्दर्शनके साथ देशसंयमको ग्रहण किया है और मोहनीय कर्मकी सात प्रकृतियोंका क्षय कर दिया है ऐसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि मनुष्य तिर्यञ्चोंमें क्यों नहीं उत्पन्न होते ? यदि होते हैं तो तिर्यञ्च अपर्याप्तोंमें संयतासंयत गुणस्थानका सत्व होनेकी आपत्ति आती है ?

समाधान—देवगतिको छोड़कर शेष तीन गति सम्बन्धी आयुका बन्ध कर लेनेवाले जीवोंको अणुव्रत ग्रहण करनेकी बुद्धि ही उत्पन्न नहीं होती। तथा तिर्यञ्चोंमें उत्पन्न हुए क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव भी अणुव्रतोंको ग्रहण नहीं करते, क्योंकि क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव यदि तिर्यञ्चोंमें उत्पन्न होते हैं तो भोगभूमिमें ही उत्पन्न होते हैं। और भोगभूमिमें उत्पन्न हुए जीव अणुव्रत ग्रहण नहीं कर सकते हैं।

शंका—दान न देने वाले जोव भोगभूमिमें कैसे उत्पन्न हो सकते हैं ?

समाधान—भोगभूमिमें उत्पत्तिका कारण सम्यग्दर्शनके होनेसे वे वहाँ उत्पन्न होते हैं तथा पात्रदानकी अनुभावना न करने वाले सम्यग्दृष्टि नहीं हो सकते; क्योंकि ऐसे जोवोंके सम्यग्दर्शन उत्पन्न नहीं होता ॥

तिर्यञ्चोंका सामान्य कथन करके इनका विशेष कथन करने के लिये सूत्र कहते हैं—

एवं पंचिंदियतिरिक्खा पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्ता ॥ ८६ ॥

इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चपर्याप्त भी होते हैं।

अर्थात् इन दोनों प्रकारके तिर्यञ्चोंकी प्ररूपणा तिर्यञ्चोंकी सामान्यप्ररूपणाके समान ही होती है ॥ ८६ ॥

अब स्त्रीवेदसे युक्त तिर्यञ्चोंका विशेष कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु मिच्छाइट्ठि-सासणसम्माइट्ठिठाणे सिया पज्जत्तियाओ सिया अपज्जत्तियाओ ॥ ८७ ॥

योनिमती पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें पर्याप्त भी होते हैं और अपर्याप्त भी होते हैं ॥ ८७ ॥

शंका—सासादनगुणस्थान वाला जीव मरकर जिस प्रकार नारकियोंमें उत्पन्न नहीं होता उसी प्रकार उसे तिर्यञ्चोंमें भी उत्पन्न नहीं होना चाहिये ?

समाधान—नारकी और तिर्यञ्चोंमें कोई समानता नहीं है इसलिये नारकियोंका दृष्टान्त तिर्यञ्चोंको लागू नहीं होता ॥

योनिमती तिर्यञ्चोंमें शेष गुणस्थानोंका स्वरूप कहनेके लिये सूत्र कहते हैं—

सम्मामिच्छाइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठि-संजदासंजदट्ठाणे णियमा पज्जत्तियाओ ॥ ८८ ॥

योनिमती तिर्यञ्च सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानमें नियमसे पर्याप्तक होते हैं ॥ ८७ ॥

शङ्का—योनिमती पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च उक्त गुणस्थानोंमें नियमसे पर्याप्तक क्यों होते हैं ?

समाधान—क्योंकि उक्त गुणस्थानोंमें योनिमती तिर्यञ्चोंकी उत्पत्ति नहीं होती।

शंका—जिस प्रकार बद्धायुष्क क्षयिकसम्यग्दृष्टि जीव नरकसम्बन्धी नपुंसकवेदमें उत्पन्न होता है, उसी प्रकार यहाँ स्त्रीवेदमें क्यों नहीं उत्पन्न होता ?

समाधान—नरकमें एक नपुंसक वेदका ही सद्भाव है। और जिस किसी गतिमें उत्पन्न होनेवाला सम्यग्दृष्टि जीव उस गति सम्बन्धी उत्तम वेद वगैरहमें ही उत्पन्न होता है। चूँकि तिर्यचगतिमें तीनों वेद पाये जाते हैं। इससे सम्यग्दृष्टि जीव मरकर योनिमती तिर्यंचोंमें उत्पन्न नहीं होता ॥

अब मनुष्यगतिका कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

मणुस्सा मिच्छाइट्ठि-सासणसम्माइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठिट्ठाणे सिया पज्जत्ता सिया अपज्जत्ता ॥ ८९ ॥

मनुष्य मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें पर्याप्त भी होते हैं और अपर्याप्त भी होते हैं ॥ ८९ ॥

मनुष्योंमें शेष गुणस्थानोंके सत्त्वमें पर्याप्त आदि अवस्थाका कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

सम्मामिच्छाइट्ठि-संजदासंजद-संजदट्ठाणे णियमा पज्जत्ता ॥ ९० ॥

मनुष्य सम्यग्मिथ्यादृष्टि, संयतासंयत और संयत गुणस्थानोंमें नियमसे पर्याप्तक होते हैं ॥९०॥

शंका—उक्त सूत्रमें बताये गये सभी गुणस्थानवाले भले ही पर्याप्त रहो, किन्तु जिनकी आहारकशरीर सम्बन्धी छै पर्याप्तियाँ पूर्ण नहीं हुई हैं ऐसे आहारकशरीरको उत्पन्न करनेवाले प्रमत्तगुणस्थानवर्ती जीवोंको पर्याप्त नहीं कहा जा सकता। शायद कहा जाये कि उनके पर्याप्तनामकर्मका उदय है इसलिये उन्हें पर्याप्त कहा है। किन्तु ऐसा कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि प्रमत्तसंयतोंके समान असंयतसम्यग्दृष्टियोंके भी निवृत्यपर्याप्त अवस्थामें पर्याप्तकर्मका उदय पाया जाता है अतः उनमें भी अपर्याप्त अवस्थाका अभाव मानना पड़ेगा। शायद कहा जाये कि प्रमत्तसंयतके संयमकी उत्पत्ति हो चुकी है इसलिये आहारककी अपर्याप्त अवस्थामें भी वह पर्याप्त है किन्तु ऐसा कहना भी ठीक नहीं है; क्योंकि ऐसा माननेसे तो असंयतसम्यग्दृष्टियोंके भी अपर्याप्त अवस्थामें पर्याप्त अवस्थाका प्रसंग आयेगा, क्योंकि उनके सम्यग्दर्शनकी उत्पत्ति हो चुकी है ?

समाधान—द्रव्यार्थिकनयका आलम्बन लेकर प्रमत्तसंयतोंको आहारकशरीर सम्बन्धी छै पर्याप्तियोंके पूर्ण नहीं होनेपर भी पर्याप्त कहा है।

शंका—उस द्रव्यार्थिकनयका आलम्बन असंयतसम्यग्दृष्टिमें क्यों नहीं लिया जाता ?

समाधान—वहाँ द्रव्यार्थिकनयके आलम्बनके निमित्त नहीं पाये जाते।

शङ्का—तो फिर यहाँ द्रव्यार्थिकनयका आलम्बन किसलिये लिया है ?

समाधान—आहारकशरीर सम्बन्धी अपर्याप्त अवस्थाको प्राप्त हुए प्रमत्तसंयतको पर्याप्तकोंके साथ समानता दिखाना ही द्रव्यार्थिकनयके आलम्बनका कारण है।

शंका—आहारक शरीर सम्बन्धी अपर्याप्त अवस्थाको प्राप्त हुआ प्रमतसंयत किस कारणसे पर्याप्तकोंके समान है ?

समाधान—जिस प्रकार उपपादजन्म, गर्भजन्म और सम्मूर्छन जन्मसे उत्पन्न हुए शरीरोंको धारण करनेवालेको दु:ख होता है, उस प्रकार आहारकशरीरको धारण करनेवाले प्रमत्तसंयतोंको जन्म लेनेका दु:ख उठाना नहीं पड़ता। तथा पहलेकी बातोंको भूले बिना ही आहारकशरीरका ग्रहण होता है, इसलिये प्रमत्तसंयत अपर्याप्त अवस्थामें भी पर्याप्त है, ऐसा उपचार किया जाता है। निश्चयनयसे तो वह अपर्याप्त ही है। इसी प्रकार समुद्घात करनेवाले केवलियोंके सम्बन्धमें भी जानना चाहिये।

अब मनुष्यके भेदोंका कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

एवं मणुस्सपज्जत्ता ॥ ९१ ॥

इसी प्रकार पर्याप्तमनुष्य होते हैं ॥ ९१ ॥

शंका—पर्याप्तकोंमें अपर्याप्तपना तो हो नहीं सकता; क्योंकि इन दोनों अवस्थाओंका परस्परमें विरोध है। अत: 'इसी प्रकार पर्याप्त होते हैं' यह कथन कैसे घटित होता है ?

समाधान—शरीरकी अनिष्पत्तिकी अपेक्षा पर्याप्तकोंमें भी अपर्याप्तपना हो सकता है।

शङ्का—जिसकी शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं हुई उसे पर्याप्तक कैसे कहा जा सकता है ?

समाधान—'भात पक रहा है' यहाँ जैसे चावलोंको ही भात कहा जाता है वैसे ही जिसकी शरीरपर्याप्ति पूर्ण होनेवाली है ऐसे जीवके अपर्याप्त अवस्थामें भी पर्याप्तपनेका व्यवहार करनेमें कोई विरोध नहीं आता। अथवा पर्याप्तनामकर्मका उदय होनेसे उसे पर्याप्त कहते हैं। इसी प्रकार तिर्यञ्चोंमें भी कथन कर लेना चाहिये।

अब मानुषियोंमें कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

मणुसिणीसु मिच्छाइट्ठि-सासणसम्माइट्ठिट्ठाणे सिया पज्जत्तियाओ सिया अपज्जत्तिजाओ ॥ ९२ ॥

मनुष्यिणी मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें पर्याप्त भी होती हैं और अपर्याप्त भी होती हैं ॥ ९२॥

सम्मामिच्छाइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठि-संजदासंजद-संजदट्ठाणे णियमा पज्जत्तियाओ ॥ ९३ ॥

मनुष्यिणी सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और संयत गुणस्थानोंमें नियम से पर्याप्तक होती हैं ॥ ९३ ॥

शंका—हुण्डावसर्पिणीकालमें सम्यग्दृष्टि जीव स्त्रियोंमें क्यों नहीं उत्पन्न होते ?

समाधान—नहीं उत्पन्न होते।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना ?

समाधान—इसी सूत्रसे जाना; (क्योंकि इसी सूत्रमें स्त्रियोंको असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें नियमसे पर्याप्तक बतलाया है) ।

शंका—तो इसी सूत्रसे द्रव्य-स्त्रियोंका मुक्ति जाना भी सिद्ध होता है ?

समाधान—नहीं सिद्ध होता, क्योंकि वस्त्रसहित होनेसे द्रव्यस्त्रियोंके पांचवाँ संयतासंयत गुणस्थान होता है अतः उनके संयम नहीं होता ।

शंका—वस्त्रसहित होते हुए भी उनके भावसंयमके होनेमें तो कोई विरोध नहीं है ?

समाधान—उनके भावसंयम भी नहीं हैं; क्योंकि वस्त्र भावअसंयमका अविनाभावी है और स्त्रियाँ वस्त्र धारण करती हैं ।

शंका—तब उनमें चौदह गुणस्थान कैसे हो सकते हैं ?

समाधान—मनुष्यिणीसे मतलब स्त्रीवेदसे विशिष्ट मनुष्य है । अतः स्त्रीभावसे विशिष्ट मनुष्यगतिमें चौदह गुणस्थानोंके होनेमें कोई विरोध नहीं है ।

शंका—भाववेद नौवें गुणस्थानसे आगे नहीं पाया जाता, इसलिये भावस्त्री विशिष्ट मनुष्य-गतिमें चौदह गुणस्थान नहीं हो सकते ?

समाधान—इस प्रकरणमें वेदकी प्रधानता नहीं है, गतिकी प्रधानता है और गति पहले नष्ट नहीं होती ।

शङ्का—यद्यपि मनुष्यगतिमें चौदह गुणस्थान होते हैं, किन्तु वेदविशिष्ट मनुष्यगतिमें चौदह गुणस्थानोंका होना संभव नहीं है ?

समाधान—नौवें गुणस्थानमें वेदविशेषणके नष्ट हो जानेपर भी उपचारसे उस संज्ञाको धारण करनेवाली मनुष्यगतिमें चौदह गुणस्थानोंका सद्भाव मान लेनेमें कोई विरोध नहीं है ।

शंका—मनुष्योंके चौथे भेद अपर्याप्त मनुष्योंका कथन क्यों नहीं किया ।

समाधान—अपर्याप्त मनुष्योंका कथन सुगम होनेसे नहीं किया ।

देवगतिमें कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

देवा मिच्छाइट्ठि-सासणसम्माइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठि-ट्ठाणे सिया पज्जत्ता सिया अपज्जत्ता ॥ ९४ ॥

देव मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें पर्याप्त भी होते हैं और अपर्याप्त भी होते हैं ॥ ९४ ॥

शेष गुणस्थानोंके सत्त्वमें पर्याप्त और अपर्याप्त दशाका कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

सम्मामिच्छाइट्ठि-ट्ठाणे णियमा पज्जत्ता ॥ ९५ ॥

देव सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमें नियमसे पर्याप्तक होते हैं ॥ ९५ ॥

शंका—यह कैसे ?

समाधान—क्योंकि तीसरे गुणस्थानके साथ मरण नहीं होता। तथा अपर्याप्त अवस्थामें सम्यग्मिथ्यात्वगुणस्थानकी उत्पत्ति भी नहीं होती।

देवगतिमें विशेष कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

भवणवासिय-वाणवेंतर-जोइसियदेवा-देवीओ सोधम्मीसाण-कप्पवासिय-देवीओ च मिच्छाइट्ठि-सासणसम्माइट्ठिट्ठाणे सिया पज्जत्ता सिया अपज्जत्ता, सिया पज्जत्तियाओ सिया अपज्जत्तियाओ ॥ ९६ ॥

भवनवासी, वानव्यन्तर, ज्योतिषी देव, उन सबकी देवियाँ तथा सौधर्म और ऐशान कल्पवासिनी देवियाँ, ये सब मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें पर्याप्त भी होते हैं और अपर्याप्त भी होते हैं॥ ९६ ॥

शंका—यह कैसे ?

समाधान—इन दोनों गुणस्थानवाले जीवोंकी उक्त देवों और देवियोंमें उत्पत्ति होती है इसलिये दोनों अवस्थाओंमें भी उनका अस्तित्व सिद्ध है।

उक्त देवों और देवियोंकी अपर्याप्त अवस्थामें नहीं होनेवाले गुणस्थानोंका निरूपण करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

सम्मामिच्छाइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठि-ट्ठाणे णियमा पज्जत्ता णियमा पज्जत्तियाओ ॥ ९७ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें पूर्वोक्त देव नियमसे पर्याप्त होते हैं तथा पूर्वोक्त देवियाँ नियमसे पर्याप्त होती हैं॥ ९७ ॥

शंका—सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवकी उक्त देवों और देवियोंमें भले ही उत्पत्ति न हो, क्योंकि सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानके साथ जीवका मरण नहीं होता। परन्तु यह बात नहीं बनती है कि मरनेवाला असंयतसम्यग्दृष्टि उक्त देवों और देवियोंमे उत्पन्न नहीं होता ?

समाधान—सम्यग्दृष्टिकी जघन्य देवोंमें उत्पत्ति नहीं होती।

शंका—जब सम्यग्दृष्टि जीव मरकर जघन्य नारकियों और तिर्यञ्चोंमें उत्पन्न हो सकते हैं तो उनसे उत्कृष्ट देवों और देवियोंमें क्यों उत्पन्न नहीं होते ?

समाधान—जो आयुकर्मका बन्ध करते समय मिथ्यादृष्टि थे और बादमें जिन्होंने सम्यग्दर्शनको ग्रहण किया है ऐसे जीवोंको नरकादि गतियोंमें उत्पत्तिको रोकनेकी सामर्थ्य सम्यग्दर्शनमें नहीं है।

शंका—तो जिस प्रकार सम्यग्दृष्टि जीवोंकी उत्पत्ति नरकादि गतिमें होती है उसी प्रकार देवोंमें क्यों नहीं होती ?

समाधान—होती तो है।

शंका—तब तो भवनवासी आदिमें भी असंयत सम्यग्दृष्टि जीवोंकी उत्पत्ति प्राप्त होती है ?

समाधान—नहीं होती; क्योंकि जिन्होंने पहले आयुकर्मका बन्ध कर लिया है और पीछे

सम्यग्दर्शनको ग्रहण किया है ऐसे जीवोंके सम्यग्दर्शनका उस गतिसम्बन्धी आयुसामान्यके साथ विरोध नहीं है किन्तु उस उस गति सम्बन्धी विशेष आयु उत्पत्ति होनेके साथ विरोध है। अतः भवनवासी व्यन्तर ज्योतिषी, प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्विषिक जातिके देवोंमें, नीचेके छै नरकोंमें, स्त्रियोंमें, नपुंसकोंमें, विकलत्रयमें, लब्ध्यपर्याप्तकोंमें और कर्मभूमिके तिर्यञ्चोंमें सम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न नहीं होता॥

शेष देवोंमें गुणस्थानोंकी अवस्था बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

सोधम्मीसाणप्पहुडि जाव उवरिम-उवरिम-गेवज्जं ति विमाणवासियदेवेसु मिच्छाइट्ठि-सासणसम्माइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठिट्ठाणे सिया पज्जत्ता सिया अपज्जत्ता॥ ९८॥

सौधर्म और ऐशान स्वर्गसे लेकर उपरिम ग्रैवेयकके उपरिमभाग पर्यन्त विमानवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानोंमें जीव पर्याप्त भी होते हैं और अपर्याप्त भी होते हैं॥ ९८॥

शंका—सौधर्म स्वर्गसे लेकर उपरिम ग्रैवेयकतकके देवोंके पर्याप्त और अपर्याप्त अवस्थामें पहले, दूसरे और चौथे गुणस्थानका अस्तित्व रहो; क्योंकि इन गुणस्थानवालोंकी उक्त देवोंमें उत्पत्ति हो सकती है। किन्तु सानत्कुमार स्वर्गसे लेकर ऊपर देवियां उत्पन्न नहीं होतीं; क्योंकि सौधर्म आदिकी तरह आगेके स्वर्गोंमें देवियोंको उत्पत्ति नहीं बतलाई। ऐसी स्थितिमें वहाँ देवियोंके न होनेसे देवोंको स्त्रीसम्बन्धी सुख कैसे हो सकता है?

समाधान—सानत्कुमार आदि कल्पोंकी देवियाँ सौधर्म और ऐशान कल्प स्वर्गमें उत्पन्न होती हैं। अतः भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देव तथा सौधर्म और ऐशान कल्पके देव मनुष्यों-के समान कायसे प्रवीचार (मैथुन सेवन) करते हैं। सानत्कुमार और माहेन्द्र कल्पके देव अपनी देवांगनाओंके स्पर्शमात्रसे ही तृप्त हो जाते हैं। यही बात देवियोंके सम्बन्धमें भी है। ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लांतव और कापिष्ठ स्वर्गके देव अपनी देवांगनाओंके शृंगार, विलास, मनोज्ञ रूप वगैरहके देखने मात्रसे ही परम सुखी हो जाते हैं। शुक्र, महाशुक्र, शतार और सहस्रार कल्पके देव अपनी देवांग-नाओंके मधुर संगीत, कोमल हास्य, ललित शब्द और भूषणोंकी ध्वनि सुननेमात्रसे ही परम प्रसन्न हो जाते हैं। आनत, प्राणत, आरण, और अच्युत कल्पके देव अपनी स्त्रीका मनमें संकल्प करने मात्रसे ही परम सुखको प्राप्त होते हैं। वेदनाके प्रतीकारका नाम प्रवीचार है। उस वेदनाके न होनेसे बाकीके सभी देव प्रवीचाररहित होनेसे सदा सुखी रहते हैं।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंका स्वरूप कहते हैं—

सम्मामिच्छाइट्ठिट्ठाणे णियमा पज्जत्ता॥ ९९॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमें देव नियमसे पर्याप्तक होते हैं॥ ९९॥

अब शेष देवोंमें गुणस्थानोंका स्वरूप कहते हैं—

अणुदिस-अणुत्तर-विजय-वइजयंत-जयंतावराजित-सव्वट्ठसिद्धि-विमाणवासियदेवा असंजदसम्माइट्ठिट्ठाणे सिया पज्जत्ता सिया अपज्जत्ता॥ १००॥

नौ अनुदिशोंमें तथा विजय, वैजयंत, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि इन पाँच अनुत्तर विमानोंमें रहनेवाले देव असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानमें पर्याप्त भी होते हैं और अपर्याप्त भी होते हैं ॥ १०० ॥

इसप्रकार योगमार्गणाके निरूपणके अवसरपर ही पर्याप्त और अपर्याप्तकालसे युक्त चारों गतियोंमें समस्त गुणस्थानोंकी सत्ता बतलाई गई है ।

शंका—गतिके सिवाय शेष मार्गणाओंमें यह विषय क्यों नहीं कहा ?

समाधान—इसी कथनसे शेष मार्गणाओंमें यह विषय आजाता है, इसलिये नहीं कहा, क्योंकि चारों गतियोंसे भिन्न मार्गणाएँ नहीं हैं ॥

अब वेद सहित गुणस्थानोंका निरूपण करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

वेदाणुवादेण अत्थि इत्थिवेदा पुरिसवेदा णवुंसयवेदा अवगदवेदा चेदि ॥ १०१ ॥

वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद और अपगतवेद वाले जीव होते हैं ॥ १०१ ॥

शंका—स्त्रीवेद किसे कहते हैं ?

समाधान—जो दोषोंसे अपनेको और दूसरेको आच्छादित करती है उसे स्त्री कहते हैं। और स्त्रीरूप वेदको स्त्रीवेद कहते हैं। अथवा जो पुरुषको इच्छा करती है उसे स्त्री कहते हैं जिसका अर्थ 'पुरुषको चाह करनेवाली' होता है। और जो इस स्त्रीरूपका वेदन—अनुभवन करता है उसे स्त्रीवेद कहते हैं। अथवा वेदन करनेको वेद कहते हैं और स्त्रीरूप वेदको स्त्रीवेद कहते हैं। कहा भी है—

> **'छादेदि सयं दोसेण यदो छादइ परं हि दोसेण ।**
> **छादणसीला जम्हा तम्हा सा वण्णिया इत्थी ॥**

'जो दोषोंसे अपनेको आच्छादित करती है और दूसरे पुरुषोंको भी दोषोंसे आच्छादित करती है; क्योंकि उसका स्वभाव ही आच्छादन करना है इसलिये उसे स्त्री कहते हैं ॥ ७० ॥

शंका—पुरुषवेद किसे कहते हैं ?

समाधान—जो उत्कृष्ट गुणोंमें और उत्कृष्ट भोगोंमें शयन करता है उसे पुरुष कहते हैं। अथवा, जिसके उदयसे जीव सोते हुए पुरुषके समान गुणोंसे अनुगत होता है और भोगोंको अप्राप्त होता है उसे पुरुष कहते हैं। अर्थात् स्त्रीकी अभिलाषा जिसके होती है उसे पुरुष कहते है। अथवा जो श्रेष्ठ कर्म करता है उसे पुरुष कहते हैं।

शंका—जिसके स्त्रीकी अभिलाषा है वह श्रेष्ठ कर्म कैसे कर सकता है ?

समाधान—श्रेष्ठ कर्मको करनेकी शक्तिसे युक्त जीवके ही स्त्रीकी अभिलाषा पाई जाती है अतः उपचारसे ऐसे जीवको श्रेष्ठ कर्मका कर्ता कहा है। उसके वेदको पुरुषवेद कहते हैं। कहा भी है—

> **'पुरुगुण-भोगे सेदे करेदि लोयम्मि पुरुगुणं कम्मं ।**
> **पुरु उत्तमो य जम्हा तम्हा सो वण्णिवो पुरिसो ॥**

जो उत्कृष्ट गुणोंमें और उत्तम भोगोंमें शयन करया है, लोकमें उत्कृष्ट गुण युक्त कार्योंको करता है और जो पुरुओंमें उत्तम है, इसलिये उसे पुरुष कहते हैं।

शंका—नपुंसकवेद किसे कहते है ?

समाधान—जो न स्त्री है और न पुरुष है उसे नपुंसक कहते हैं। अर्थात् जिसके स्त्री और पुरुष दोनोंकी अभिलाषा पाई जाती है वह नपुंसक है। कहा भी है—

णेवित्थी णेव पुमं णवुंसओ उभयलिंगवदिरित्तो।
इट्ठावग्गिसमाणग-वेयणगरुओ कलुसचित्तो ॥

'जो न स्त्री है और न पुरुष है, किन्तु स्त्री और पुरुष दोनोंके लिंगोंसे रहित है, और अवाकी आगके समान तीव्र वेदनासे युक्त है, तथा स्त्री और पुरुषसे मैथुन करनेकी अभिलाषासे उत्पन्न हुई वेदनाके कारण जिसका चित्त कलुषित है, उसे नपुंसक कहते हैं।

नपुंसकके वेदको नपुंसक वेद कहते हैं।

शंका—अपगतवेद किसे कहते हैं ?

समाधान—जिनके तीनों प्रकारके वेदोंसे उत्पन्न हुआ संताप दूर हो गया है उनको अपगत-वेद वाले जीव कहते हैं। कहा भी है—

'कारिस-तणिट्ठिवागग्गिसरिसपरिणामवेयणुम्मुक्का।
अवगयवेदा जीवा सगसंभवणंतवरसोक्खा ॥

'जो कण्डेकी आग, तृणकी आग और अवेकी आगके समान परिणामोंकी वेदनासे रहित हैं और अपनी आत्मामें उत्पन्न हुए उत्कृष्ट अनन्त सुखके भोक्ता हैं उन्हें अवगतवेदी जीव कहते हैं।

अब वेदवाले जीवोंका गुणस्थान आदिमें सत्त्व बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

इत्थिवेदा पुरिसवेदा असण्णिमिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ॥१०२॥

स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीव असंज्ञीमिथ्यादृष्टिसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक होते हैं ॥ १०२ ॥

शंका—इस कथनसे तो दोनों वेदोंका एक साथ एक जीवमें अस्तित्व प्राप्त होता है ?

समाधान—नहीं, क्यों कि दो विरुद्ध धर्मोका एक जीवमें सद्भाव माननेमें विरोध आता है।

शंका—तो फिर नौवें गुणस्थान तक दोनों वेदोंकी सत्ता कैसे बनेगी ?

समाधान—एक साथ नाना जीवोंमें अनेक वेद पाये जाते हैं, तथा एक जीवमें भी पर्यायकी अपेक्षा कालभेदसे अनेक वेद पाये जाते हैं। अतः नौवें गुणस्थान तक उक्त दोनों वेदोंकी सत्ता बन जाती है ॥

अब नपुंसकवेदका सत्त्व कहनेके लिये सूत्र कहते हैं—

णवुंसयवेदा एइंदियप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ॥ १०३ ॥

नपुंसकवेद वाले जीव एकेन्द्रियसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक होते हैं ॥ १०३ ॥

शङ्का—एकेन्द्रिय जीवोंके द्रव्यवेद नहीं देखा जाता। अतः द्रव्यवेदके न पाये जानेपर एकेन्द्रियोंमें नपुंसकवेदका सत्त्व कैसे हो सकता है?

समाधान—एकेन्द्रियोंमें द्रव्यवेद मत होओ, यहाँ द्रव्यवेदकी प्रधानता नहीं है। अथवा एकेन्द्रियोंमें द्रव्यवेदकी उपलब्धि न होनेसे द्रव्यवेदका अभाव नहीं माना जा सकता; क्योंकि सकल पदार्थोंको जाननेवाले केवलज्ञानसे एकेन्द्रियोंमें द्रव्यवेदका ग्रहण होता है।

शङ्का—स्त्री और पुरुषसे अनजान एकेन्द्रियोंमें स्त्री और पुरुष विषयक अभिलाषा कैसे हो सकती है?

समाधान—भूमिगृहके अन्दर रहकर ही बड़ा होनेके कारण जिसने कभी स्त्रीको नहीं जाना, ऐसे युवा पुरुषके भी स्त्री विषयक अभिलाषा देखी जाती है। अतः स्त्री और पुरुषका ज्ञान स्त्री और पुरुष विषयक अभिलाषाका कारण नहीं है, किन्तु वेदकर्मका उदय ही उसका कारण है॥

अब वेदरहित जीवोंका कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

तेण परमवगदवेदा चेदि ॥ १०४ ॥

नौवें गुणस्थानके सवेद भागसे आगे जीव वेद रहित होते हैं॥ १०४॥

शङ्का—तो क्या आगेके गुणस्थानोंमें द्रव्यवेदका अभाव हो जाता है?

समाधान—आगेके गुण स्थानोंमें द्रव्यवेदका अभाव नहीं होता, किन्तु केवल द्रव्यवेदसे विकार उत्पन्न नहीं होता। यहां पर भाववेदका अधिकार है। अतः नौवें गुणस्थानके सवेद भागसे आगे भाववेदका अभाव होनेसे जीवोंको वेद रहित कहा है।

अब वेदका मार्गणाओंमें कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

णेरइया चदुसु ट्ठाणेसु सुद्धा णवुंसयवेदा ॥ १०५ ॥

नारकी चारों गुणस्थानोंमें शुद्ध नपुंसकवेदी होते हैं॥ १०५॥

शङ्का—नारकियोंमें बाकीके दो वेद क्यों नहीं होते?

समाधान—जो जीव निरन्तर दुःखी रहते हैं उनके स्त्रीवेद और पुरुषवेदका सत्त्व नहीं होता।

शङ्का—स्त्रीवेद और पुरुषवेदसे भी तो दुःख ही होता है?

समाधान—नपुंसकवेदका सन्ताप अवाकी अग्निके समान होता है और पुरुषवेदका सन्ताप तृणकी अग्निके समान तथा स्त्रीवेदका सन्ताप कण्डेकी आगके समान होता है। अतः नपुंसकवेदसे पुरुषवेद और स्त्रीवेद सुखरूप हैं।

अब तिर्यंचगतिमें वेदोंका निरूपण करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

तिरिक्खा सुद्धा णवुंसगवेदा एइंदियप्पहुडि जाव चउरिंदिया त्ति ॥ १०६ ॥

तिर्यंच एकेन्द्रियसे लेकर चौइन्द्रियतक शुद्ध नपुंसकवेदी होते हैं॥ १०६॥

शंका—चिंटियोंके अण्डे देखे जाते हैं, अतः वे नपुंसकवेदी नहीं हो सकतीं?

समाधान—अण्डोंकी उत्पत्ति गर्भमें ही होती है ऐसा कोई नियम नहीं है।

शङ्का—विग्रहगतिमें वेदका अभाव होता है या नहीं?

समाधान—विग्रहगतिमें वेदका अभाव नहीं होता; क्योंकि वहाँ अव्यक्त वेद पाया जाता है॥

अब शेष तिर्यंचोंके वेद बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

तिरिक्खा तिवेदा असण्णिपंचिंदिय-प्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति ॥ १०७॥

तिर्यंच असंज्ञी पञ्चेन्द्रियसे लेकर संयतासंयततक तीनों वेदवाले होते हैं॥ १०७॥

शङ्का—तीनों वेदोंकी प्रवृत्ति क्रमसे होती है या एकसाथ ?

समाधान—तीनों वेदोंकी प्रवृत्ति क्रमसे ही होती है, एकसाथ नहीं होती; क्योंकि वेद पर्याय है। जैसे एक कषाय अन्तर्मुहूर्ततक रहती है, वैसे वेद अन्तर्मुहूर्ततक नहीं रहते। किन्तु जन्म से लेकर मरणतक वेदका उदय रहता है॥

मनुष्यगतिमें विशेष कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

मणुस्सा तिवेदा मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ॥ १०८ ॥

मनुष्य मिथ्यादृष्टिसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थानतक तीनों वेदवाले होते हैं॥ १०८॥

शंका—संयमी पुरुषोंके तीनों वेदोंका अस्तित्व कैसे सम्भव है ?

समाधान—अव्यक्त रूपसे वेदोंका अस्तित्व वहाँ पाया जाता है, इसलिये संयमी पुरुषोंके तीनों वेदोंकी सत्ता कही है॥

अब तीनोंसे रहित जीवोंका कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

तेण परमवगदवेदा चेदि ॥ १०९ ॥

नौवें गुणस्थानके सवेद भागसे आगे सभी जीव वेदरहित होते है॥ १०९॥

अब देवगतिमें विशेष कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

देवा चदुसु ट्ठाणेसु दुवेदा, इत्थिवेदा पुरिसवेदा ॥ ११० ॥

देव चारों गुणस्थानोंमें स्त्रीवेद और पुरुषवेद इस तरह दो वेदवाले होते हैं॥ ११०॥

विशेषार्थ—सानत्कुमार और माहेन्द्र कल्पसे लेकर ऊपर पुरुषवेदी ही होते हैं। इसीतरह लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यञ्च, लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य और सम्मूर्छन पञ्चेन्द्रियजीव नपुंसक ही होते हैं। असंख्यात वर्षको आयुवाले तिर्यञ्च और मनुष्य स्त्री और पुरुषवेदवाले ही होते हैं, नपुंसक नहीं होते॥

वेदमार्गणाके द्वारा जीव पदार्थको कहकर अब कषायमार्गणाके द्वारा गुणस्थानोंका निरूपण करते हैं—

कसायाणुवादेण अत्थि कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई अकसाई चेदि ॥ १११ ॥

कषायके अनुवादसे क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी, लोभकषायी और कषायरहित जीव होते हैं॥ १११॥

शंका—सूत्रमें क्रोधकषायी आदिके स्थानमें क्रोधकषाय, मानकषाय, मायाकषाय, लोभ-कषाय और अकषाय कहना चाहिये; क्योंकि कषायों और कषायवालोंमें भेद होता है ?

समाधान—नहीं कहना चाहिये; क्योंकि जीवसे भिन्न क्रोधादिकषाय नहीं पाई जातीं ?

शंका—यदि कषाय और कषायवान्‌जीवमें भेद नहीं है तो उन दोनोंका भिन्नरूपसे कथन कैसे बन सकता है ?

समाधान—अनेकान्तमें अभिन्नोंका भी भिन्न रूपसे कथन बन सकता है ।

शंका—कषायानुवादका क्या अभिप्राय है ?

समाधान—जिसप्रकार उपदेश दिया गया है उसीप्रकार कथन करनेको अनुवाद कहते हैं । और कषायके अनुवादको कषायानुवाद कहते हैं। अथवा प्रसिद्ध अर्थके अनुकथनको अनुवाद कहते हैं।

शंका—कथामार्ग प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध अर्थके आश्रयसे प्रवृत्त होता है ऐसा न्याय है । इस न्यायके अनुसार अनुवाद अर्थात् केवल प्रसिद्ध अर्थका ही अनुकथन करना व्यर्थ है; क्योंकि उससे अनजाने पदार्थोंका ज्ञान नहीं होता; किन्तु जाने हुए पदार्थोंका ही ज्ञान होता है ।

समाधान—इस ग्रन्थमें प्रतिपादित कथन प्रवाह रूपसे चला आया होनेके कारण अपौरुषेय है । अत. तीर्थङ्कर वगैरह उसके केवल व्याख्याता ही हैं, कर्ता नहीं है, यह बतलानेके लिये सूत्रमें अनुवाद पद रखा है । अतः वह व्यर्थ नहीं है ।

शंका—क्रोधकषाय किसे कहते हैं ?

समाधान—रोष, आमर्ष वगैरहको कहते हैं ।

शंका—मानकषाय किसे कहते हैं ?

समाधान—रोषसे अथवा विद्या, तप, जाति आदिके मदसे दूसरेको नमस्कार न करना मान-कषाय है ।

शङ्का—मायाकषाय किसे कहते हैं ?

समाधान—छल अथवा वंचनाको मायाकषाय कहते हैं ?

शङ्का—लोभकषाय किसे कहते हैं ?

समाधान—तृष्णा अथवा चाहको लोभकषाय कहते हैं ।

कहा भी है—

सिल-पुढवि-भेद-धूली-जलराईसमाणओ हवे कोहो ।
णारय-तिरिय-णरामरगईसु उप्पायओ कमसो ।।
सेलट्ठि-कट्ठ-वेत्तं णियभेएणणुहरंतओ माणो ।
णारय-तिरिय-णरामरगइविसयुप्पायओ कमसो ।।
वेलुवमूलोरब्भयसिंगे गोमुत्तएण खोरप्पे ।
सरिसी माया णारय-तिरिय-णरामरेसु जणइ जिअं ।।
किमिराय-चक्क-तणुमल-हरिद्दराएण सरिसओ लोहो ।
णारय-तिरिक्ख-माणुस-देवेसुप्पायओ कमसो ।।

क्रोधकषाय चार प्रकारकी है—पत्थरकी रेखाके समान, पृथिवीकी रेखाके समान, धूलिकी रेखाके समान और जलकी रेखाके समान। यह चारों ही प्रकारका क्रोध जीवको क्रमसे नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देवगतिमें उत्पन्न कराता है ॥ मान चार प्रकारका होता है—पत्थरके समान, हड्डीके समान, काठके समान और बेंतके समान। यह चारों प्रकारका मान क्रमसे नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देवगतिमें उत्पन्न कराता है ॥ माया चार प्रकारकी है—वांसकी जड़के समान, मेढ़ेके सींगके समान, गोमूत्रके समान, खुरपाके समान। यह चार प्रकारकी माया क्रमसे जीवको नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देवगतिमें ले जाती है ॥ लोभकषाय चार प्रकारकी है—क्रिमिचके रंगके समान, चकाके मलके समान, शरीरके मलके समान और हल्दीके रंगके समान। यह चार प्रकारकी लोभकषाय भी क्रमसे नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देवगतिमें उत्पन्न कराती है ॥

शङ्का—अकषाय किसे कहते हैं ?

समाधान—सम्पूर्ण कषायोंके अभावको अकषाय कहते हैं। कहा भी है—

अप्पपरोभयबाधण-बंधासंजमणिमित्त कोहादि।
जेसिं णत्थि कसाया अमला अकसाइणो जीवा ॥

जिनके स्वयं अपनेको, दूसरेको और दोनोंको बाधा देने, बन्ध करने तथा असंयममें निमित्त-भूत क्रोध आदि कषाय नहीं हैं, उन बाह्य और आभ्यन्तर मलसे रहित जीवोंको अकषाय कहते हैं ॥'

अब कषायमार्गणाका विशेष कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

कोधकसाई माणकसाई मायाकसाई एइंदियप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ॥११२॥

क्रोधकषायी, मानकषायी और मायाकषायी जीव एकेन्द्रियसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुण-स्थानतक होते हैं ॥ ११२ ॥

शंका—अपूर्वकरण आदि गुणस्थानवाले संयमियोंके कषायका अस्तित्व कैसे सम्भव है ?

समाधान—वहाँपर अव्यक्त कषाय पाई जाती है ॥

अब लोभ कषायका विशेष कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

लोभकसाई एइंदियप्पहुडि जाव सुहुमसांपराइय-सुद्धि-संजदा त्ति ॥ ११३ ॥

लोभ कषायवाले जीव एकेन्द्रियसे लेकर सूक्ष्मसांपरायशुद्धिसंयत गुणस्थानतक होते हैं ॥ ११३ ॥

अब कषायरहित जीवोंके गुणस्थानोंका कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

अकसाई चदुसु ट्ठाणेसु अत्थि उवसंतकसायवीयरायछदुमत्था खीणकसाय-वीयरायछदुमत्था सजोगिकेवली अजोगिकेवलि त्ति ॥ ११४ ॥

कषायरहित जीव उपशांतकषायवीतरागछद्मस्थ, क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ, सयोगिकेवली और अयोगिकेवली इन चार गुणस्थानोंमें होते हैं ॥ ११४ ॥

शंका—उपशांतकषायगुणस्थानको कषायरहित कैसे कहा; क्योंकि वहाँ अनन्त द्रव्यकषाय-का सद्भाव है। इसलिये उसे कषायरहित नहीं कह सकते ?

समाधान—उपशांतकषायगुणस्थानमें अनन्त द्रव्यकषायका सद्भाव होनेपर भी कषायका उदय नहीं है। इसलिये उसे कषायरहित कहा है ॥

अब ज्ञानमार्गणाके द्वारा जीवपदार्थका कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

णाणाणुवादेण अत्थि मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी विभंगणाणी आभिणिबोहियणाणी सुदणाणी ओहिणाणी मणपज्जवणाणी केवलणाणी चेदि ॥ ११५ ॥

ज्ञानमार्गणाके अनुवादसे मति अज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिक ज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी और केवलज्ञानी जीव होते हैं ॥ ११५ ॥

शङ्का—ज्ञानमार्गणाके अनुवादसे ज्ञानके प्रतिपक्षी अज्ञानका ग्रहण कैसे संभव है ?

समाधान—मिथ्यात्व सहित ज्ञान ज्ञानका कार्य नहीं कर सकता। इसलिये उसे ही अज्ञान कहा है। जैसे पुत्रके योग्य कार्य न करनेवाले पुत्रको ही अपुत्र कहते हैं।

शङ्का—ज्ञानका कार्य क्या है ?

समाधान—तत्त्वार्थमें रुचि, प्रत्यय, श्रद्धा और चारित्रका धारण करना ज्ञानका कार्य है।

शंका—ज्ञान किसे कहते हैं ?

जो जानता है उसे ज्ञान कहते हैं। अर्थात् साकार उपयोगका नाम ज्ञान है। अथवा, जिसके द्वारा यह आत्मा जानता है, जानता था अथवा जानेगा, ज्ञानावरण कर्मके एकदेश क्षयसे अथवा सम्पूर्ण ज्ञानावरण कर्मके क्षयसे उत्पन्न हुए ऐसे आत्मपरिणामको ज्ञान कहते हैं।

शंका—ज्ञानके कितने भेद हैं ?

समाधान—ज्ञानके दो भेद हैं—प्रत्यक्ष और परोक्ष।

शंका—परोक्षके कितने भेद हैं ?

समाधान—परोक्षके भी दो भेद हैं—मतिज्ञान और श्रुतज्ञान।

शंका—मतिज्ञान किसे कहते हैं ?

समाधान—पांचों इन्द्रियों और मनको सहायतासे जो पदार्थका ग्रहण होता है उसे मतिज्ञान कहते हैं।

शंका—मतिज्ञानके कितने भेद हैं ?

समाधान—मतिज्ञानके चार भेद हैं—अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा।

शंका—अवग्रह किसे कहते हैं ?

समाधान—विषय और विषयीके सम्बन्ध होनेके अनन्तर समयमें जो प्रथम ग्रहण होता है उसे अवग्रह कहते हैं। अवग्रह दो प्रकारका होता है—अर्थावग्रह और व्यञ्जनावग्रह। अप्राप्त अर्थके ग्रहणको अर्थावग्रह कहते हैं और प्राप्त अर्थके ग्रहणको व्यञ्जनावग्रह कहते हैं उनमें चक्षु और मनसे अर्थावग्रह ही होता है क्योंकि ये दोनों प्राप्त अर्थका ग्रहण नहीं करते। और शेष चारों इन्द्रियोंसे दोनों अवग्रह होते हैं।

शंका—ईहा ज्ञान किसे कहते हैं ?

समाधान—अवग्रहसे जाने हुए पदार्थको विशेष रूपसे जाननेके लिये जो अभिलाषारूप ज्ञान होता है उसे ईहा ज्ञान कहते हैं ।

शंका—अवाय ज्ञान किसे कहते हैं ?

समाधान—ईहासे जाने गये पदार्थके निश्चयरूप ज्ञानको अवाय कहते हैं ।

शंका—धारणा किसे कहते हैं ?

समाधान—कालान्तरमें भी विस्मरण न होने रूप संस्कारके उत्पन्न करनेवाले ज्ञानको धारणा कहते हैं ।

शंका—श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

समाधान—शब्द और धूमादि लिंगके द्वारा जो पदार्थान्तरका ज्ञान होता है उसे श्रुतज्ञान कहते हैं । उनमें शब्दके निमित्तसे होनेवाला श्रुतज्ञान दो प्रकारका है—अंग और अंगबाह्य । अंग-श्रुतके बारह भेद हैं और अंगबाह्यके चौदह भेद हैं ।

शंका—प्रत्यक्षके कितने भेद हैं ?

समाधान—प्रत्यक्षके तीन भेद हैं—अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान ।

शंका—अवधिज्ञान किसे कहते हैं ?

समाधान—सम्पूर्ण मूर्त पदार्थोंको साक्षात् जाननेवाले ज्ञानको अवधिज्ञान कहते हैं ।

शंका—मनःपर्यय ज्ञान किसे कहते हैं ?

समाधान—मनका आश्रय लेकर मनोगत पदार्थोंके साक्षात्कार करनेवाले ज्ञानको मनः-पर्यय ज्ञान कहते हैं ।

शङ्का—केवलज्ञान किसे कहते हैं ?

समाधान—त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थोंको साक्षात् जाननेवाले ज्ञानको केवलज्ञान कहते हैं

शंका—मति अज्ञान वगैरहका क्या स्वरूप है ?

समाधान—इन्द्रियोंसे उत्पन्न होनेवाले मिथ्यात्व समवेत ज्ञानको मत्यज्ञान कहते हैं । मिथ्यात्व समवेत शाब्दज्ञानको श्रुताज्ञान कहते हैं । और मिथ्यात्व समवेत अवधिज्ञानको विभंग ज्ञान कहते हैं । कहा भी है—

विस-जंत-कूड-पंजर-बंधादिसु विणुवदेसकरणेण ।
जा खलु पवत्तइ मदो मदि अण्णाणे त्ति तं वेंति ॥
आभीयमासुरक्खा भारहरामायणादि-उवएसा ।
तुच्छा असाहणीया सुद अण्णाणे त्ति तं वेंति ॥
विवरीयमोहिणाणं खइयुवसमियं च कम्मबीजं च ।
वेभंगो त्ति पउच्चइ समत्तणाणीहि समयम्हि ॥
अभिमुह-णियमिय-बोहणमाभिणिबोहियमणिदिइंदियजं ।
बहु-ओग्गहाइणा खलु कयछत्तीस-तिसय-भेयं ॥

अत्थादो अत्थंतर-उवलंभो तं भणंति सुदणाणं।
आभिणिबोहियपुव्वं णियमेणिह सद्दजं पमुहं ॥
अवहीयदि त्ति ओही सीमाणाणे त्ति वण्णिदं समए।
भवगुणपच्चयविहियं तमोहिणाणे त्ति णं बेंति ॥
चिंतियमचिंतियं वा अद्धं चिंतियमणेयभेयं च।
मणपज्जवं ति उच्चइ जं जाणइ तं खु णरलोए ॥
संपुण्णं तु समग्गं केवलमसवत्त सव्वभावविदं।
लोगालोगवितिमिरं केवलणाणं मुणेयव्वं ॥

बिना उपदेश किये विष, यंत्र, कूट, पंजर तथा बन्ध आदिके विषयमें जो बुद्धि स्वतः प्रवृत्त होती है उसे मत्यज्ञान कहते हैं ॥ चोरशास्त्र, हिंसाशास्त्र, भारत और रामायण वगैरहके तुच्छ और साधन करनेके अयोग्य उपदेशोंको श्रुताज्ञान कहते हैं ॥ सर्वज्ञोंने आगममें क्षयोपशमजन्य और मिथ्यात्व आदि कर्मोंके कारण रूप विपरीत अवधि ज्ञानको विभंग ज्ञान कहा है ॥ मन और इन्द्रियोंकी सहायतासे उत्पन्न हुए, अभिमुख और नियमित पदार्थके ज्ञानको आभिनिबोधिकज्ञान कहते हैं। उसके बहु आदि बारह प्रकारके पदार्थों और अवग्रह आदिकी अपेक्षा तीन सौ छत्तीस भेद होते हैं ॥ मति-ज्ञानसे जाने हुए पदार्थके अवलम्बनसे उससे सम्बन्ध रखने वाले दूसरे पदार्थके ज्ञानको श्रुतज्ञान कहते हैं। वह ज्ञान नियमसे मतिज्ञान पूर्वक होता है। इसके दो भेद हैं—शब्दजन्य अथवा अक्ष-रात्मक और लिंगजन्य अथवा अनक्षरात्मक। इनमेंसे शब्दजन्य श्रुतज्ञान मुख्य है ॥ द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी अपेक्षा जिस ज्ञानका विषय सीमित हो उसे अवधिज्ञान कहते हैं। इसे आगममें सीमाज्ञान भी कहा है। इसके दो भेद हैं—भवप्रत्यय और गुणप्रत्यय ॥ चिन्तित (जिसका पहले चिन्तवन किया है), अचिन्तित (जिसका भविष्यमें चिन्तवन किया जायेगा) और अर्धचिन्तित, इत्यादि अनेक प्रकारके दूसरेके मनमें स्थित पदार्थको जो जानता है उसे मनःपर्ययज्ञान कहते हैं। यह ज्ञान मनुष्यलोकमें ही होता है ॥ ज्ञानके समस्त अविभाग प्रतिच्छेदोंके व्यक्त हो जानेके कारण जो सम्पूर्ण है, ज्ञानावरण और वीर्यान्तराय कर्मका सर्वथा नाश हो जानेके कारण अप्रतिहत (बेरोक) शक्तिसे युक्त होनेसे जो समग्र है, इन्द्रिय और मनकी सहायतासे रहित होनेके कारण जिसे 'केवल' कहा जाता है, प्रतिपक्षी चार घातिया कर्मोंके नष्ट हो जानेसे सम्पूर्ण पदार्थोंमें एक साथ प्रवृत्त होनेके कारण जो असपत्न है और लोक तथा अलोकको प्रकाशित करता है उसे केवलज्ञान जानना चाहिये।

अब मति अज्ञान और श्रुताज्ञानका विशेष कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

मदि-अण्णाणी सुद-अण्णाणी एइंदियप्पहुडि जाव सासणसम्माइट्ठि त्ति ॥११६॥

मति अज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीव एकेन्द्रियसे लेकर सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक होते हैं ॥११६॥

शंका—मिथ्यादृष्टिके दोनों अज्ञान भले ही हों; क्योंकि उसके मिथ्यात्व कर्मका उदय होता है। किन्तु सासादनमें मिथ्यात्वका उदय नहीं होता अतः वहाँ दोनों मिथ्याज्ञान नहीं होने चाहिये?

समाधान—विपरीत अभिनिवेशको मिथ्यात्व कहते हैं और वह विपरीत अभिनिवेश

मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी, इन दोनोंके निमित्तसे होता है। तथा सासादनमें अनन्तानुबन्धीका उदय रहता है, इसलिये वहां दोनों अज्ञान होते हैं।

शङ्का—एकेन्द्रियोंके श्रोत्र इन्द्रिय नहीं होती। इसलिये उन्हें शब्दका ज्ञान नहीं हो सकता और शब्दका ज्ञान न होनेसे शब्दके अर्थका ज्ञान नहीं हो सकता। अतः एकेन्द्रियोंके श्रुतज्ञान कैसे हो सकता है?

समाधान--ऐसा कोई एकान्त नहीं है कि शब्दके निमित्तसे होनेवाले अर्थके ज्ञानको ही श्रुतज्ञान कहते हैं। किन्तु धूम आदि चिन्होंसे भी जो अर्थका ज्ञान होता है उसे भी श्रुतज्ञान कहते हैं।

शंका—मनरहित जीवोंके ऐसा श्रुतज्ञान भी कैसे हो सकता है?

समाधान—मनके बिना भी वनस्पतिकायिक जीवोंकी हितमें प्रवृत्ति और अहितसे निवृत्ति देखी जाती है। अतः मनरहित जीवोंके भी श्रुतज्ञान होता है॥

अब विभंग ज्ञानका विशेष कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

विभंगणाणं सण्णिमिच्छाइट्ठीणं वा सासणसम्माइट्ठीणं वा ॥११७॥

विभंग ज्ञान संज्ञीमिथ्यादृष्टि जीवोंके और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके होता है॥११७॥

शंका—विकलेन्द्रिय जीवोंके विभंग ज्ञान क्यों नहीं होता?

समाधान—विकलेन्द्रियोंके विभंग ज्ञानका कारण क्षयोपशम नहीं पाया जाता।

शंका—वह क्षयोपशम विकलेन्द्रियोंके क्यों नहीं होता?

समाधान—अवधिज्ञानावरणका क्षयोपशम या तो भवप्रत्यय (जन्मनिमित्तक) होता है या गुणप्रत्यय (सम्यग्दर्शनादि गुणनिमित्तक) होता है। ये दोनों कारण विकलेन्द्रियोंमें नहीं पाये जाते। इसलिये उनके विभंग ज्ञान नहीं होता॥

विभंगज्ञानको भवप्रत्यय मान लेनेपर पर्याप्त और अपर्याप्त दोनों अवस्थाओंमें उसका सद्भाव प्राप्त हुआ, अतः आगेका सूत्र कहते हैं—

पज्जत्ताणं अत्थि, अपज्जत्ताणं णत्थि ॥११८॥

विभंगज्ञान पर्याप्तकोंके ही होता है, अपर्याप्तकोंके नहीं होता॥११८॥

शङ्का—यदि देवों और नारकियोंका विभंगज्ञान भवप्रत्यय होता है तो अपर्याप्त अवस्थामें भी विभंगज्ञान होना चाहिये; क्योंकि विभंगज्ञानका कारण भव अपर्याप्त अवस्थामें भी रहता है?

समाधान—अपर्याप्त अवस्थासे युक्त देव और नारक पर्याय विभंगज्ञानका कारण नहीं है; किन्तु पर्याप्त अवस्थासे युक्त देव और नारक पर्याय विभंगज्ञानका कारण है इसलिये अपर्याप्त अवस्थामें विभंगज्ञान नहीं होता॥

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें ज्ञानका कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

सम्मामिच्छाइट्ठि-ट्ठाणे तिण्णि वि णाणाणि अण्णाणेण मिस्साणि। आभिणि-

बोहियणाणं मदि-अण्णाणेण मिस्सयं । सुदणाणं सुदअण्णाणेण मिस्सयं । ओहिणाणं विभंगणाणेण मिस्सयं । तिण्णि वि णाणाणि अण्णाणेण मिस्साणि वा इदि ॥११९॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें आदिके तीनों ज्ञान अज्ञानसे मिश्रित होते हैं । आभिनिबोधिक ज्ञान मत्यज्ञानसे मिश्रित होता है । श्रुतज्ञान श्रुताज्ञानसे मिश्रित होता है । अवधिज्ञान विभंग ज्ञानसे मिश्रित होता है । इस तरह तीनों ही ज्ञान अज्ञानसे मिश्रित होते हैं ॥११९॥

शंका—अज्ञान तीन हैं अतः सूत्रमें अज्ञानपदका एकवचनसे निर्देश क्यों किया है ?

समाधान—अज्ञानका कारण मिथ्यात्व एक है इसलिये अज्ञानको भी एक मान लेनेमें कोई विरोध नहीं आता ।

शंका—यथार्थ श्रद्धासे अनुविद्ध जाननेको ज्ञान कहते हैं और अयथार्थ श्रद्धासे अनुविद्ध जाननेको अज्ञान कहते हैं । ऐसी स्थितिमें भिन्न-भिन्न जीवोंमें रहनेवाले ज्ञान और अज्ञानका मिश्रण नहीं बन सकता ?

समाधान—यद्यपि उक्त कथन ठीक है किन्तु सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें उक्त कथनको नहीं लेना चाहिये; क्योंकि सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति मिथ्यात्व तो हो नहीं सकती; क्योंकि सम्यग्मिथ्यात्वकर्मकी शक्ति मिथ्यात्वकर्मसे अनन्त गुणी हीन होती है अतः सम्यग्मिथ्यात्वकर्ममें विपरीत अभिनिवेशको उत्पन्न करनेकी सामर्थ्यका अभाव है । तथा सम्यग्मिथ्यात्वकर्म सम्यक्त्वप्रकृति रूप भी नहीं हो सकता; क्योंकि सम्यक्त्वप्रकृतिसे सम्यक्मिथ्यात्वकर्मकी शक्ति अनन्तगुणी है अतः सम्यग्मिथ्यात्वकर्म यथार्थ श्रद्धाके साथ नहीं रह सकता । इसलिये सम्यक्मिथ्यात्वकर्म जात्यन्तर होनेसे जात्यन्तररूप परिणामोंका ही उत्पादक है । अतः उसके उदयसे उत्पन्न हुए परिणामोंसे युक्त ज्ञान ज्ञान नहीं है; क्योंकि उसके साथ यथार्थ श्रद्धा नहीं है, और न उसे अज्ञान ही कहा जा सकता है क्योंकि उसके साथ अयथार्थ श्रद्धा नहीं है । इसलिये वह ज्ञान सम्यग्मिथ्यात्व रूप परिणामोंकी तरह जात्यन्तर ही है । अतः एक होते हुए भी उसे मिश्र कहा जाता है ।

ज्ञानोंका गुणस्थानोंमें कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

आभिणिबोहियणाणं सुदणाणं ओहिणाणमसंजदसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव खीण-कसायवीदराग-छदुमत्था त्ति ॥ १२० ॥

आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर क्षीणकषाय-वीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक होते हैं ॥ १२० ॥

शङ्का—देव और नारक असंयतसम्यग्दृष्टियोंमें अवधिज्ञानका सद्भाव भले ही रहो, क्योंकि उनके अवधिज्ञान भवनिमित्तक होता है । तथा देशविरत आदि ऊपरके गुणस्थानोंमें भी अवधिज्ञान रहा आवे; क्योंकि अवधिज्ञानकी उत्पत्तिमें निमित्तभूत गुणोंका वहाँ सद्भाव पाया जाता है । किन्तु तिर्यञ्च और मनुष्य असंयत सम्यग्दृष्टियोंमें अवधिज्ञानका सद्भाव नहीं हो सकता; क्योंकि उनमें अवधिज्ञानकी उत्पत्तिके कारण भव और गुण नहीं पाये जाते ।

समाधान—उक्त कथन ठीक नहीं है क्योंकि असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्यों और तिर्यञ्चोंमें अवधिज्ञानकी उत्पत्तिमें कारण सम्यक्त्व गुणका सद्भाव पाया जाता है ।

शंका—चूंकि सब सम्यग्दृष्टियोंमें अवधिज्ञान नहीं पाया जाता । इससे मालूम पड़ता है कि सम्यग्दर्शन अवधिज्ञानकी उत्पत्तिका कारण नहीं है ?

समाधान—तब तो सब संयमियोंमें अवधि ज्ञान नहीं पाया जाता, इसलिये संयमको भी अवधिज्ञानकी उत्पत्तिमें कारण नहीं माना जा सकता।

शंका—विशिष्ट संयम ही अवधिज्ञानकी उत्पत्तिमें कारण है इसलिये सब संयमियोंके अवधि-ज्ञान नहीं होता ?

समाधान—तो विशिष्ट सम्यक्त्व ही अवधिज्ञानकी उत्पत्तिमें कारण है। इसलिये सभी सम्यग्दृष्टि तिर्यञ्च और मनुष्योंमें अवधिज्ञान नहीं होता, ऐसा मान लेनेमें क्या विरोध है ?

शंका—सम्यग्दर्शनके तीन भेद हैं—औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक। इन तीनों ही सम्यग्दर्शनोंमें अवधिज्ञान होता भी है और नहीं भी होता। इसलिये सम्यग्दर्शनविशेषको अवधिज्ञानकी उत्पत्तिमें कारण नहीं माना जा सकता ?

समाधान—तो सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय और यथाख्यात इन पाँच प्रकारके संयमों तथा देशविरतिके होते हुए भी अवधिज्ञान होता भी है और नहीं भी होता, इसलिये संयमविशेषको भी अवधिज्ञानकी उत्पत्तिमें कारण नहीं माना जा सकता।

शङ्का—असंख्यात लोकप्रमाण संयमरूप परिणामोंमें-से कुछ विशिष्ट परिणाम ही सम्यग्द-र्शनकी उत्पत्तिमें कारण हैं। इसलिये पूर्वोक्त दोष नहीं आता ?

समाधान—तो असंख्यात लोकप्रमाण सम्यग्दर्शनरूप परिणामोंमेंसे कुछ विशिष्ट सम्यक्त्व-रूप परिणाम सहकारीकारणकी अपेक्षासे अवधिज्ञानकी उत्पत्तिमें कारण होते हैं, यह निश्चित हो जाता है॥

अब मनःपर्ययज्ञानके स्वामीका कथन करनेके लिए सूत्र कहते हैं—

मणपज्जवणाणी पमत्तसंजदप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति ॥ १२१ ॥

मनःपर्ययज्ञानी प्रमत्तसंयतसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक होते हैं॥ १२१॥

शंका—देशविरत आदि नीचेके गुणस्थानवर्ती जीवोंके मनःपर्ययज्ञान क्यों नहीं होता ?

समाधान—संयमासंयम और असंयमके साथ मनःपर्ययज्ञानकी उत्पत्तिका विरोध है।

शंका—यदि मनःपर्ययज्ञानकी उत्पत्तिमें केवल संयम ही कारण है तो समस्त संयमियोंके मनःपर्ययज्ञान क्यों नहीं होता ?

समाधान—यदि केवल एक संयम ही मनःपर्ययज्ञानकी उत्पत्तिमें कारण होता तो ऐसा होता। किन्तु उसकी उत्पत्तिमें अन्य कारण भी हैं इसलिये उनके न रहनेसे सब संयमियोंके मनःपर्ययज्ञान नहीं होता।

शंका—वे अन्य कारण कौनसे हैं ?

समाधान—विशिष्ट द्रव्य, विशिष्ट क्षेत्र और विशिष्ट काल वगैरह अन्य कारण हैं उनके न होनेसे सभी संयमियोंके मनःपर्ययज्ञान नहीं होता॥

अब केवलज्ञानके गुणस्थान बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

केवलणाणी तिसु ट्ठाणेसु सजोगिकेवली अजोगिकेवली सिद्धा चेदि ॥ १२२ ॥

केवलज्ञानी सयोगिकेवली, अयोगिकेवली और सिद्ध इन तीन स्थानोंमें होते हैं ॥ १२२ ॥

शंका—अर्हन्त परमेष्ठीके केवलज्ञान नहीं है; क्योंकि उनके नोइन्द्रियावरणकर्मके क्षयोपशमसे उत्पन्न हुआ मन पाया जाता है?

समाधान—उक्त कथन ठीक नहीं है; क्योंकि अर्हन्तके सम्पूर्ण आवरणोंका क्षय हो जाता है। अतः उनके ज्ञानावरणकर्मका क्षयोपशम न होनेसे उस क्षयोपशमका कार्यरूप मन भी नहीं पाया जाता। उसी प्रकार उनके वीर्यान्तरायकर्मके क्षयोपशमसे उत्पन्न हुई शक्तिकी अपेक्षा भी मनका सद्भाव नहीं है; क्योंकि जिनके वीर्यान्तरायकर्मका क्षय हो गया है उनके वीर्यान्तरायके क्षयोपशमसे उत्पन्न होनेवाली शक्तिका सद्भाव कैसे पाया जा सकता है।

शंका—तो फिर अर्हन्तको सयोगी कैसे माना जाता है?

समाधान—सत्य और अनुभय वचनकी उत्पत्तिमें निमित्तभूत आत्मप्रदेशोंका परिस्पन्द वहां पाया जाता है इसलिये उसकी अपेक्षासे अर्हन्तके सयोगी होनेमे कोई विरोध नहीं आता।

शंका—जब अर्हन्तके मन नहीं है तो मनका कार्य वचन भी नहीं होना चाहिये?

समाधान—वचन मनका कार्य नहीं है किन्तु ज्ञानका कार्य है।

शंका—अक्रमिक ज्ञानसे क्रमिक वचनोंकी उत्पत्ति कैसे हो सकती है?

समाधान—घटविषयक अक्रमिक ज्ञानके होते हुए भी कुम्भकार क्रमसे ही घटको उत्पन्न करता है। इसी तरह अक्रमिक ज्ञानसे क्रमिक वचनोंकी उत्पत्ति हो सकती है।

शंका—यदि सयोगकेवलीके मनोयोग नहीं होता तो सूत्रके साथ विरोध आयेगा क्योंकि पहले बतलाया है कि सत्यमनोयोग और अ-सत्यमृषामनोयोग सयोग केवली पर्यन्त होते हैं?

समाधान—सत्य और अ-सत्यमृषावचन मनके कार्य हैं। अतः सयोगकेवलीमें दोनों वचनोंका सद्भाव होनेसे उपचारसे मनोयोगका सद्भाव मान लिया गया है। अथवा जीवप्रदेशोंके परिस्पन्दमें कारण नोकर्मसे उत्पन्न हुई शक्तिका सद्भाव होनेसे सयोगिकेवलीमें मनोयोगका सद्भाव मान लिया गया है।

अब संयम मार्गणाका कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

संजमाणुवादेण अत्थि संजदा सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदा परिहारसुद्धिसंजदा सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदा संजदासंजदा असंजदा चेदि ॥ १२३ ॥

संयममार्गणाके अनुवादसे सामायिकशुद्धिसंयत, छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत; परिहारशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायशुद्धिसंयत, यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत ये पांच प्रकारके संयत, संयतासंयत और असंयत जीव होते हैं ॥ १२३ ॥

शंका—संयत किसे कहते हैं?

समाधान—'सम्' उपसर्गका अर्थ 'सम्यक्' होता है। अतः सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानके अनुसार जो 'मत' हैं अर्थात् अन्तरंग और बहिरंग आस्रवसे विरत हैं, उन्हें संयत कहते हैं।

शंका—सामायिकशुद्धिसंयम किसे कहते हैं ?

समाधान—'मैं सब प्रकारके सावद्ययोगसे विरत हूँ' इस प्रकार समस्त सावद्ययोगके त्यागको सामायिकशुद्धिसंयम कहते हैं। इसमें चारित्रके सम्पूर्ण भेदोंका संग्रह होता है। अतः जिसने संयमके सम्पूर्ण भेदोंको अपने अन्तर्गत कर लिया है ऐसे एक यमको धारण करनेवाला जीव सामायिक-शुद्धिसंयत होता है।

शंका—छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयम किसे कहते हैं ?

समाधान—उस एक व्रतका छेद करके अर्थात् उसके दो तीन आदि भेद करके उपस्थापन अर्थात् व्रतोंके धारण करनेको छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयम कहते हैं। सामायिकसंयम द्रव्यार्थिकनय रूप है क्योंकि वह सम्पूर्ण व्रतोंको सामान्यकी अपेक्षा एक मानकर एक यम रूपसे ग्रहण करता है। और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयम पर्यायार्थिकनयरूप है; क्योंकि वह उसी एक व्रतको पाँच अथवा बहुत भेद करके धारण करता है। द्रव्यार्थिकनयका उपदेश तीक्ष्णबुद्धि मनुष्योंके लिये दिया है और पर्यायार्थिकनयका उपदेश मन्दबुद्धि प्राणियोंके लिये दिया है। अतः इन दोनों संयमोंमें अनु-ष्ठानकी अपेक्षा कोई भेद नहीं है।

शङ्का—तब तो ये दोनों संयम वास्तवमें एक ही हैं ?

समाधान—हाँ, इसीसे सूत्रमें सामायिक और छेदोपस्थापना पदके साथ शुद्धिसंयत पदका पृथक्-पृथक् ग्रहण नहीं किया है।

शंका—परिहारशुद्धिसंयत किन्हें कहते हैं ?

समाधान—परिहार प्रधान शुद्धिसंयतोंको परिहारशुद्धिसंयत कहते हैं। तीस वर्ष तक अपनी इच्छानुसार भोगोंको भोगकर, फिर सामायिक अथवा छेदोपस्थापना संयमको धारण कर, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके अनुसार परिमित और अपरिमित प्रत्याख्यानका कथन करनेवाले प्रत्याख्यान नामक पूर्वको अच्छी तरह जानकर जिसका समस्त संशय दूर हो गया है और जिसने विशेष तपके द्वारा परिहारऋद्धिको प्राप्त कर लिया है, ऐसा संयमी मनुष्य तीर्थङ्करके पादमूलमें परिहारशुद्धिसंयमको धारण करता है। इस प्रकार संयमको धारण करके जो स्थान, गमन, विहार और खान पान आदि सब व्यापारोंमें प्राणियोंकी हिंसाके परिहार (बचाव) में दक्ष होता है उसे परिहारशुद्धिसंयत कहते हैं।

शंका—सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयत किन्हें कहते हैं ?

समाधान—साम्पराय कहते हैं कषायको। जिनकी कषाय सूक्ष्म हो गई है उन्हें सूक्ष्म-साम्पराय कहते हैं। तथा विशुद्धिको प्राप्त संयतोंको शुद्धिसंयत कहते हैं। जो सूक्ष्म कषायवाले होते हुए शुद्धिप्राप्त संयत होते हैं, उन्हें सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयत कहते हैं। सारांश यह है कि सामायिक और छेदोपस्थापना संयमको धारण करनेवाले साधु जब सूक्ष्मकषायवाले हो जाते हैं तो उन्हें सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयत कहते हैं।

शंका—यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत किन्हें कहते हैं ?

समाधान—परमागममें विहार अर्थात् कषायोंके अभावरूप अनुष्ठानका जैसा कथन किया है वैसा ही विहार जिनके पाया जाता हे उन्हें यथाख्यातविहार कहते हैं। तथा जो यथाख्यात विहारवाले होते हुए शुद्धिप्राप्तसंयत होते हैं उन्हें यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत कहते हैं। कहा भी है—

> **संगहियसयलसंजममेय-जममणुत्तरं दुरवगम्मं।**
> **जीवो समुव्वहंतो सामाइयसंजदो होई॥**
> **छेत्तूण य परियायं पोराणं जो ठवेई अप्पाणं।**
> **पंचजमे धम्मे सो छेदोवट्ठावओ जीवो॥**
> **पंचसमिदो तिगुत्तो परिहरइ सदा वि जो हु सावज्जं।**
> **पंचजमेयजमो वा परिहारो संजदो सो हु॥**
> **अणुलोभं वेदंतो जीवो उवसामगो व खवओ वा।**
> **सो सुहुमसांपराओ जहक्खादेणूणओ किं पि॥**
> **उवसंते खीणे वा असुहे कम्मम्हि मोहणीयम्हि।**
> **छदुमत्थो व जिणो वा जहक्खादो संजदो सो हु॥**
> **पंच-ति-चउव्विहेहि अणु-गुण-सिक्खा-वएहि संजुत्ता।**
> **वुच्चंति देसविरया सम्माइट्ठी झरियकम्मा॥**
> **दंसण - वय - सामाइय-पोसह - सचित्त-राइभत्ते य।**
> **बह्मारंभ - परिग्गह-अणुमण उद्दिट्ठ देसविरदेदे॥**
> **जीवा चोद्दसभेया इंदियविसया तहट्ठवीसं तु।**
> **जे तेसु णेव विरदा असंजदा ते मुणेयव्वा॥**

'जिसमें सकल संयमोंका संग्रह कर लिया गया है, ऐसे सर्वोत्कृष्ट और दुरधिगम्य एक यमको धारण करनेवाला जीव सामायिकसंयत होता है॥ जो पुरानी पर्यायको छेदकर अपनेको पाँच यमरूप धर्ममें स्थित करता है वह जीव छेदोपस्थापक संयमी होता है॥ जो पाँच समिति और तीन गुप्तियोंसे युक्त होता हुआ सदा ही सावद्य योगका परिहार करता है तथा पाँच यमरूप छेदोपस्थापना संयमको अथवा एक यमरूप सामायिक संयमको धारण करता है वह परिहारविशुद्धि संयत कहलाता है॥ उपशमश्रेणिवाला अथवा क्षपकश्रेणिवाला जो जीव सूक्ष्म लोभकषायका अनुभवन करता है उसे सूक्ष्म सांपराय संयत कहते हैं। यह यथाख्यात संयतसे कुछ हीन होता है॥ अशुभ मोहनीय कर्मके उपशान्त अथवा क्षय हो जानेपर ग्यारहवें और बारहवें गुणस्थानवर्ती छद्मस्थ तथा तेरहवें और चौदहवें गुणस्थानवर्ती जिन यथाख्यातसंयत होते हैं॥ पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतोंसे संयुक्त सम्यग्दृष्टि जीवोंको देशविरत कहते हैं। उनके असंख्यातगुणी कर्मनिर्जरा होती है॥ दर्शनिक, व्रतिक, सामायिकी, प्रोषोपवासी, सचित्तविरत, रात्रिभुक्तिविरत, ब्रह्मचारी, आरम्भविरत, परिग्रहविरत, अनुमतिविरत और उद्दिष्टविरत, ये ग्यारह देशविरतके भेद हैं॥ चौदह जीव समासों और अट्ठाईस प्रकारके इन्द्रियोंके विषयोंमें जो विरत नहीं हैं उन्हें असंयत जानना चाहिये।

अब संयतोंके गुणस्थान बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

संजदा पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ॥१२४॥

संयत जीव प्रमत्तसंयतसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थानतक होते हैं ॥१२४॥

शंका—बुद्धिपूर्वक सावद्ययोगके त्यागको संयत कहना तो ठीक है, क्योंकि यदि ऐसा न माना जायेगा तो काष्ठ आदिमें भी संयमका प्रसंग आ जायेगा। किन्तु केवलीमें बुद्धिपूर्वक सावद्य-योगका त्याग नहीं होता। अतः उनमें संयमका होना दुर्घट है?

समाधान—चार अघातिया कर्मोंका विनाश हो जानेसे तथा प्रतिसमय असंख्यातगुणी श्रेणिनिर्जरा होनेसे और समस्त पापक्रियाके निरोधस्वरूप पारिणामिकगुणके प्रकट होनेसे केवलीमें उपचारसे संयम माना जाता है। अथवा प्रवृत्ति का अभाव होनेसे केवलीमें मुख्य संयम है। ऐसा माननेपर काष्ठसे व्यभिचार नहीं आता; क्योंकि काष्ठमें प्रवृत्ति नहीं पाई जाती, अतः उसकी निवृत्ति भी नहीं बनती॥

अब संयमके गुणस्थान बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदा पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ॥१२५॥

सामायिक और छेदोपस्थापनारूप शुद्धिको प्राप्त संयतजीव प्रमत्तसंयतसे लेकर अनिवृत्ति-करण गुणस्थान तक होते हैं ॥१२५॥

परिहारसुद्धिसंजदा दोसु ट्ठाणेसु पमत्तसंजदट्ठाणे अपमत्तसंजदट्ठाणे ॥१२६॥

परिहारशुद्धिसंयत प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत इन दो गुणस्थानोंमें होते हैं ॥१२६॥

शंका—ऊपरके आठवें आदि गुणस्थानोंमें यह संयम क्यों नहीं होता?

समाधान—जिनकी आत्माएँ ध्यानरूपी सागरमें निमग्न हैं, जो मौनी हैं और जिन्होंने आने जानेरूप समस्त कायव्यापारको संकुचित कर लिया है, ऐसे जीवोंके शुभाशुभ क्रियाओंका परिहार नहीं बन सकता; क्योंकि प्रवृत्ति करनेवाला ही परिहार कर सकता है, प्रवृत्ति नहीं करने-वाला नहीं। इसलिये ऊपरके गुणस्थानोंमें परिहारशुद्धिसंयम नहीं होता।

शंका—परिहारशुद्धिसंयम एकयमरूप है या पांचयमरूप। यदि एकयमरूप है तो उसका सामायिकमें अन्तर्भाव होना चाहिये। और यदि पांचयमरूप है तो छेदोपस्थापनमें अन्त-र्भाव होना चाहिये। इन दोनोंसे भिन्न तीसरे संयमकी सम्भावना नहीं है, अतः परिहारशुद्धिसंयम नहीं बन सकता?

समाधान—परिहारऋद्धिरूप अतिशयकी उत्पत्तिकी अपेक्षा सामायिक और छेदोपस्थापना-से परिहारशुद्धिसंयम कथंचित् भिन्न है।

शङ्का—सामायिक और छेदोपस्थापनाका त्याग किये बिना ही जीव परिहारऋद्धिको प्राप्त करता है अतः उन दोनोंसे भिन्न तीसरा संयम नहीं है?

समाधान—पहले सामायिक और छेदोपस्थापना संयम परिहारऋद्धिसे रहित होते हैं, पीछे उससे सहित होते हैं। अतः उन दोनोंसे इसका भेद है।

शंका—परिहारऋद्धि ऊपरके आठवें आदि गुणस्थानोंमें भी पाई जाती है, इसलिये वहाँ परिहारविशुद्धिसंयमका सद्भाव माननेमें क्या हानि है?

समाधान—ऊपरके गुणस्थानोंमें परिहारऋद्धिके होनेपर भी परिहार करने रूप उसका कार्य नहीं पाया जाता। अतः ऊपरके गुणस्थानोंमें परिहारविशुद्धिसंयम नहीं माना गया।

अब तीसरे संयमके गुणस्थान बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा एक्कम्मि चेव सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदट्ठाणे ॥१२७॥

सूक्ष्मसांपरायशुद्धिसंयत जीव एक सूक्ष्मसांपरायशुद्धिसंयत गुणस्थानमें ही होते हैं ॥१२७॥

शंका—सूक्ष्मसांपरायसंयम एकयमरूप है या पाँचयमरूप है? यदि एकयमरूप है तो पाँचयमरूप छेदोपस्थापनासंयमसे मुक्ति अथवा उपशमश्रेणिपर आरोहण नहीं बन सकता; क्योंकि सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानको प्राप्त किये बिना मुक्तिकी प्राप्ति और उपशमश्रेणिपर आरोहण नहीं बनता। यदि सूक्ष्मसांपरायसंयम पाँचयमरूप है तो एकयमरूप सामायिकसंयमको धारण करनेवाले जीव मुक्ति नहीं प्राप्त कर सकते और न उपशमश्रेणिपर चढ़ सकते हैं क्योंकि पाँचयमरूप सूक्ष्मसांपरायके बिना ये दोनों कार्य नहीं बनते। यदि सूक्ष्मसांपरायसंयम एकयम और पाँचयमरूप है तो उसके दो भेद हो जाते हैं?

समाधान—आदिके दो विकल्प हम नहीं मानते। तीसरे विकल्पमें जो दोष दिया है वह भी ठीक नहीं है, क्योंकि पंचयम और एकयमके भेदसे संयममें कोई भेद नहीं होता। अतः एकयम और पंचयमकी अपेक्षा सूक्ष्मसांपरायसंयमके दो भेद नहीं हो सकते।

शंका—यदि एकयम और पंचयमकी अपेक्षा संयमके दो भेद नहीं होते तो संयमके पाँच भेद कैसे बन सकेंगे?

समाधान—संयमके चार ही भेद हैं, पाँचवां भेद नहीं है। अर्थात् सामायिक और छेदोपस्थापना संयममें विवक्षाभेदसे ही भेद है, वैसे ये दोनों एक ही हैं ॥

अब चोथे संयमके गुणस्थान बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदा चदुसु ट्ठाणेसु उवसंतकसायवीयरायछदुमत्था खीणकसायवीयरायछदुमत्था सजोगिकेवली अजोगीकेवली त्ति ॥१२८॥

यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत जीव उपशांतकषायवीतरागछद्मस्थ, क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ, सयोगीकेवली और अयोगीकेवली इन चार गुणस्थानोंमें होते हैं ॥१२८॥

देशविरतके गुणस्थानका कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

संजदासंजदा एक्कम्मि चेय संजदासंजदट्ठाणे ॥१२९॥

सयतासंयत जीव एक संयतासंयत गुणस्थानमें ही होते हैं ॥१२९॥

अब असंयतोंके गुणस्थान बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

असंजदा एइंदियप्पहुडि जाव असंजदसम्माइट्ठि त्ति ॥१३०॥

असंयत जीव एकेन्द्रियसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक होते हैं ॥१३०॥

शंका—कितने ही मिथ्यादृष्टि जीव भी संयत देखे जाते हैं?

समाधान—सम्यग्दर्शनके बिना संयमकी उत्पत्ति नहीं होती।

शंका—सिद्ध जीवोंके कौन-सा संयम होता है ?

समाधान—सिद्ध जीवोंके एक भी संयम नहीं होता; क्योंकि उनमें बुद्धिपूर्वक निवृत्तिका अभाव है। इसीलिये वे संयतासंयत नहीं हैं तथा असंयत भी नहीं है क्योंकि उनकी सम्पूर्ण पाप-क्रियायें नष्ट हो चुकी हैं।

संयममार्गणाके द्वारा जोवपदार्थका कथनकरके अब दर्शनमार्गणाके द्वारा जोवके अस्तित्व-को कहनेके लिये सूत्र कहते हैं—

दंसणाणुवादेण अत्थि चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी ओधिदंसणी केवलदंसणी चेदि ॥१३१॥

दर्शनमार्गणाके अनुवादसे चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शनवाले जीव होते हैं ॥१३१॥

शंका—चक्षुदर्शन किसे कहते हैं ?

समाधान—चक्षुके द्वारा सामान्य पदार्थके ग्रहण करनेको चक्षुदर्शन कहते हैं।

शंका—विषय और विषयी अर्थात् पदार्थ और इन्द्रियके सम्बन्धके अनन्तर जो आद्य ग्रहण होता है उसे अवग्रह कहते हैं। वह अवग्रह सामान्यविशेषात्मक बाह्य अर्थको ग्रहण करता हैं। अतः वह दर्शनरूप नहीं हो सकता, क्योंकि जो सामान्यको ग्रहण करता है उसे दर्शन कहा है। इसलिये चक्षुदर्शन नहीं बनता ?

समाधान—दर्शन अन्तरंग पदार्थको विषय करता है और वह अन्तरंग पदार्थ भी सामान्य-विशेषात्मक होता है।

शंका—तब तो अन्तरंग उपयोगको भी दर्शन नहीं कहा जा सकता; क्योंकि उसका विषय भी सामान्यविशेषात्मक माना है ?

समाधान—यहां सामान्यशब्दसे सामान्यविशेषात्मक आत्माका ग्रहण किया है।

शंका—सामान्यशब्दसे सामान्यविशेषात्मक आत्माका ग्रहण कैसे किया ?

समाधान—चक्षुइन्द्रियसम्बन्धी क्षयोपशम रूपमें ही नियमित है; क्योंकि उससे रूप-विशिष्ट अर्थका ही ग्रहण होता है। उसमें भी वह रूपसामान्यमें ही नियमित है; क्योंकि उससे नीलादिकमेंसे किसी एक रूपसे विशिष्ट वस्तुकी उपलब्धि नहीं होती। अतः चक्षुइन्द्रियसम्बन्धी क्षयोपशम रूपी पदार्थोंके प्रति समान है। और आत्माको छोड़कर क्षयोपशम पाया नहीं जाता इसलिये क्षयोपशमकी अपेक्षा आत्मा भी समान है। उस समान आत्माके भावको सामान्य कहते हैं और वह दर्शनका विषय है।

शंका—चक्षुइन्द्रियसे जो प्रकाशित होता है उसे चक्षुदर्शन कहते हैं। किन्तु आत्मा चक्षुइन्द्रियसे प्रकाशित नहीं होता। चक्षुइन्द्रियसे तो रूपसामान्य और रूपविशेषसे युक्त पदार्थ ही प्रकाशित होता है। परन्तु वह दर्शन नहीं है; क्योंकि पदार्थ उपयोगरूप नहीं हो सकता। शायद कहा जाये कि पदार्थका उपयोग दर्शन है, किन्तु ऐसा कहना भी ठीक नहीं है; क्योंकि वह उपयोग ज्ञानरूप है। अतः चक्षुदर्शन नहीं बनता ?

समाधान—यदि चक्षुदर्शन न हो तो चक्षुदर्शनावरण कर्मका अस्तित्व नहीं बनता। इस लिये चक्षुदर्शन अन्तरंग पदार्थको विषय करता है यही मानना उचित है। दूसरे, निद्रानिद्रा आदि कर्म ज्ञानके प्रतिबन्धक नहीं हैं; क्योंकि ज्ञानावरणकर्मके भेदोंमें उन्हें नहीं गिनाया है। वे अन्तरंग और बहिरङ्ग पदार्थोंको विषय करनेवाले दोनों उपयोगोंके भी प्रतिबन्धक नहीं है; क्योंकि ऐसा माननेपर भी निद्रानिद्रा वगैरहका ज्ञानावरणमें ही अन्तर्भाव होना चाहिये था। निद्रानिद्रा आदि अन्तरंग और बहिरंग पदार्थोंको विषय करनेवाले उपयोग सामान्यके भी प्रतिबन्धक नहीं है; क्योंकि ऐसा माननेपर जागृत अवस्थामें छद्मस्थके ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोगकी युगपत् प्रवृत्तिका प्रसंग आयेगा। इसलिये यदि दर्शन न हो तो दर्शनावरणीय कर्मका अस्तित्व नहीं बन सकता। अतः अंतरंग पदार्थको विषय करनेवाले उपयोगका प्रतिबन्धक ज्ञानावरण कर्म हैं ऐसा मानना चाहिये।

शङ्का—आत्माको विषय करनेवाले उपयोगको दर्शन मान लेनेपर आत्मामें कोई विशेषता न होनेसे चारों दर्शनोंमें भी कोई भेद नहीं रहेगा ?

समाधान—जो स्वरूपसंवेदन जिस ज्ञानका उत्पादक है वह उसका दर्शन कहा जाता है। अतः दर्शनके चार भेद होनेका कोई नियम नहीं है। चक्षु इन्द्रियके क्षयोपशमसे उत्पन्न हुए ज्ञानके विषयभूत जितने पदार्थ होते हैं उतने ही आत्मस्थ क्षयोपशम उस उस नाम वाले होते हैं। उनके निमित्तसे आत्मा भी उतने ही प्रकारका होता है। अतः इस प्रकारकी शक्तियोंसे युक्त आत्माके संवेदनको दर्शन कहते हैं। यह सब कथन काल्पनिक नहीं है क्योंकि परोपदेशके बिना अनेक शक्तियोंसे युक्त आत्माकी वास्तविक उपलब्धि होती है। इसी प्रकार शेष दर्शनोंका भी कथन करना चाहिये। कहा भी है—

चक्खूण जं पयासदि दिस्सदि तच्चक्खु-दंसणं बेंति।
सेसिंदियप्पयासो णादव्वो सो अचक्खु त्ति॥
परमाणुआदियाइं अंतिम खंधं ति मुत्तिदव्वाइं।
तं ओधिदंसणं पुण जं पस्सइ ताइ पच्चक्खं॥
बहुविह बहुप्पयारा उज्जोवा परिमियम्हि खेत्तम्हि।
लोगालोगअतिमिरा जो केवलदंसणुज्जोवो॥

जो चक्षु इन्द्रियके द्वारा प्रकाशित होता है अथवा दिखाई देता है उसे चक्षुदर्शन कहते हैं। तथा शेष इन्द्रिय और मनसे जो प्रकाश होता है उसे अचक्षुदर्शन कहते हैं॥ परमाणुसे लेकर अन्तिम स्कन्ध पर्यन्त मूर्त पदार्थोंको जो प्रत्यक्ष देखता है उसे अवधि दर्शन कहते हैं॥ परिमित क्षेत्रको प्रकाशित करनेवाले अनेक प्रकारके बहुतसे प्रकाश हैं। परन्तु जो केवलदर्शनरूपी प्रकाश है वह लोक और अलोकको भी प्रकाशित करता है।

अब चक्षुदर्शनके गुणस्थानोंका कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

चक्खुदंसणी चउरिंदियप्पहुडि जाव खीणकसायवीयरायछदुमत्था त्ति॥१३२॥

चक्षुदर्शन वाले जीव चौइन्द्रियसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक होते हैं॥ १३२॥

अब अचक्षुदर्शनके स्वामी बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

अचक्खुदंसणी एइंदियप्पहुडि जाव खीणकसायवीयरायछदुमत्था त्ति ॥१३३॥

अचक्षुदर्शन वाले जीव एकेन्द्रियसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक होते हैं॥ १३३ ॥

शंका—ज्ञानको ही दो स्वभाव वाला क्यों नहीं मान लिया जाता ?

समाधान—ज्ञान अपनेसे भिन्न वस्तुको जानता है और दर्शन अपनेसे अभिन्न वस्तुको जानता है। इसलिये इन दोनोंमें एकपना नहीं हो सकता।

शंका—ज्ञान और दर्शनकी युगपत् प्रवृत्ति क्यों नहीं होती ?

समाधान—आवरणकर्मके नष्ट हो जानेपर केवलीके ज्ञान और दर्शन दोनों एक साथ होते हैं।

शंका—केवलीकी तरह छद्मस्थ अवस्थामें भी दोनोंकी एक साथ प्रवृत्ति क्यों नहीं होती ?

समाधान—आवरणकर्मके उदयसे दोनोंकी युगपत् प्रवृत्ति करनेकी शक्ति रुक जाती है इसलिये छद्मस्थ जीवोंके ज्ञान और दर्शनकी युगपद् प्रवृत्ति नहीं होती।

शंका—स्वसंवेदनसे रहित आत्मा तो कभी भी उपलब्ध नहीं होता ?

समाधान—जिस समय बहिरंग पदार्थोंका उपयोग रहता है उस समय अन्तरंग पदार्थका उपयोग नहीं पाया जाता।

शङ्का—श्रुतदर्शन क्यों नहीं कहा ?

समाधान—श्रुतज्ञान मतिपूर्वक होता है अतः उसे दर्शनपूर्वक माननेमें विरोध आता है। दूसरे, यदि दर्शन बहिरंग पदार्थको सामान्य रूपसे विषय करने वाला होता तो श्रुतज्ञान सम्बन्धी दर्शन भी होता, किन्तु ऐसा नहीं है। अतः श्रुतज्ञान दर्शनपूर्वक नहीं होता॥

अब अवधिदर्शनके गुणस्थान बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

ओधिदंसणी असंजदसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायछदुमत्था त्ति ॥१३४॥

अवधिदर्शनवाले जीव असंयत सम्यग्दृष्टिसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक होते हैं॥ १३४ ॥

शङ्का—विभंग (कुअवधि) दर्शनका अलग निर्देश क्यों नहीं किया।

समाधान—उसका अन्तर्भाव अवधिदर्शनमें हो जाता है।

शङ्का—तो मनःपर्ययदर्शनको अलगसे कहना चाहिये ?

समाधान—मनःपर्ययज्ञान मतिज्ञानपूर्वक होता है इसलिये मनःपर्यय दर्शन नहीं होता।

अब केवलदर्शनका स्वामी बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

केवलदंसणी तिसु ट्ठाणेसु सजोगिकेवली अजोगिकेवली सिद्धो चेदि ॥१३५॥

केवलदर्शनवाले जीव सयोगिकेवली, अयोगिकेवली और सिद्ध इन तीन स्थानोंमें होते हैं॥ १३५ ॥

शङ्का—केवलज्ञान त्रिकालवर्ती अनन्त बाह्य पदार्थोंको जानता है और दर्शन स्वरूप मात्रको जानता है। अतः ये दोनों समान कैसे हो सकते हैं ?

समाधान—आत्मा ज्ञानप्रमाण है और ज्ञान त्रिकालवर्ती अनन्त द्रव्योंकी पर्यायोंको जाननेसे तत्प्रमाण है। इसलिये ज्ञान और दर्शनमें समानता है।

शङ्का—जीवमें रहनेवाली स्वकीय पर्यायोंकी अपेक्षा ज्ञानसे दर्शन बड़ा है ? तब ज्ञानकी दर्शनके साथ समानता कैसे हो सकती है ?

समाधान—ज्ञान दर्शनात्मक है और दर्शन ज्ञानात्मक है इसलिये दोनों समान हैं। कहा भी है—

आदा णाणपमाणं णाणं णेयप्पमाणमुद्दिट्ठं।
णेयं लोआलोअं तम्हा णाणं तु सव्वगयं॥
एयदवियम्मि जे अत्थपज्जया वयणपज्जया चावि।
तीदाणागयभूदा तावदियं तं हवइ दव्वं॥

आत्मा ज्ञानप्रमाण है और ज्ञान ज्ञेयप्रमाण है। तथा समस्त लोक और अलोक ज्ञेय है। अतः ज्ञान सर्वगत है॥ एक द्रव्यमें जितनी अतीत, अनागत और वर्तमान अर्थपर्याय तथा व्यंजन-पर्याय होती हैं उतना ही वह द्रव्य होता है॥

अब लेश्याके द्वारा जीव पदार्थका अस्तित्व बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

लेस्साणुवादेण अत्थि किण्हलेस्सिया णीललेस्सिया काउलेस्सिया तेउलेस्सिया पम्मलेस्सिया सुक्कलेस्सिया अलेस्सिया चेदि॥ १३६॥

लेश्यामार्गणाके अनुवादसे कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या पद्मलेश्या और शुक्ललेश्यावाले तथा अलेश्यावाले जीव हैं॥ १३६॥

शंका—लेश्या किसे कहते हैं ?

समाधान—जो कर्मस्कन्धोंसे आत्माको लिप्त करती है उसे लेश्या कहते हैं।

शंका—पहले कहा है कि कषायसे अनुरंजित योगप्रवृत्तिको लेश्या कहते हैं ?

समाधान—वह अर्थ यहाँ नहीं ग्रहण करना चाहिये; क्योंकि उसके अनुसार सयोगकेवलीके अलेश्यावाले होनेकी आपत्ति आती है।

शंका—सयोगकेवलीको लेश्यारहित माननेमें हानि क्या है ?

समाधान—ऐसा माननेपर 'सयोगकेवली शुक्ललेश्यावाले होते हैं' इस वचनका व्याघात होता है।

शङ्का—लेश्या योगको कहते हैं अथवा कषायको कहते हैं अथवा योग और कषाय दोनोंको कहते हैं ? प्रथम दो विकल्प तो ठीक नहीं हैं क्योंकि योग अथवा कषायको लेश्या माननेसे उसका अन्तर्भाव योग अथवा कषाय मार्गणामें हो जायेगा। तीसरा विकल्प भी ठीक नहीं हैं क्योंकि योग और कषाय दोनोंको लेश्या माननेपर भी लेश्याका उक्त दोनों मार्गणाओंमें अथवा किसी एक मार्गणामें अन्तर्भाव हो जाता है। अतः लेश्याकी स्वतंत्र सत्ता सिद्ध नहीं होती ?

समाधान—पहले और दूसरे विकल्पमें जो दोष दिये हैं वे ठीक नहीं हैं क्योंकि हम लेश्या-को केवल योग अथवा केवल कषायरूप नहीं मानते। इसी तरह तीसरे विकल्पमें दिया हुआ दोष भी ठीक नहीं है; क्योंकि योग और कषाय इन दोनोंका अन्तर्भाव केवल योग अथवा केवल कषायमें नहीं किया जा सकता। तथा लेश्या दो रूप भी नहीं है क्योंकि कर्मलेपरूप एक कार्यको करनेकी अपेक्षा एकपनेको प्राप्त हुए योग और कषायको लेश्या कहा है। और एकपनेको प्राप्त हुए योग और कषायरूप लेश्याका अन्तर्भाव योग अथवा कषायमें नहीं किया जा सकता क्योंकि दो धर्मोंके मेलसे जात्यन्तररूप अवस्थाको प्राप्त हुए एक धर्मका उन दो धर्मोंमेंसे केवल किसी एक धर्मके साथ एकता अथवा समानता माननेमें विरोध आता है।

शङ्का—लेश्याका कार्य योग और कषायके कार्यसे भिन्न नहीं है इसलिये लेश्याको योग और कषायसे भिन्न नहीं माना जा सकता?

समाधान—योग और कषायके लेश्यारूप होनेपर संसारकी वृद्धिरूप उसका कार्य होता है वह कार्य न केवल योगका है और न केवल कषायका है। अतः लेश्या उन दोनोंसे भिन्न है। कषाय-का उदय छै प्रकारका होता है—तीव्रतम, तीव्रतर, तीव्र, मन्द, मन्दतर और मन्दतम। इन छै कषायोदयोंके क्रमसे छै लेश्याएँ होती हैं—कृष्ण लेश्या, नील लेश्या, कापोत लेश्या, पीत लेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ल लेश्या। इन लेश्याओंका लक्षण इस प्रकार कहा है—

चंडो ण मुयदि वेरं भंडणसीलो य धम्मदयरहिओ।
दुट्ठो ण य एदि वसं लक्खणमेदं तु किण्हस्स॥
मंदो बुद्धिविहीणो णिव्विण्णाणी य विसयलोलो य।
माणी मायी य तहा आलस्सो चेव भेज्जो य॥
णिद्दा-वंचण-बहुलो धणधण्णे होइ तिव्वसण्णो य।
लक्खणमेदं भणियं समासदो णीललेस्सस्स॥
रूसदि णिंददि अण्णे दूसदि बहुसो य सोयभय-बहुलो।
असुयदि परिभवदि परं पसंसदि य अप्पयं बहुसो॥
ण य पत्तियइ परं सो अप्पाणमिव परं पि मण्णंतो।
तूसदि अभित्थुवतो ण य जाणइ हाणि-वड्ढीओ॥
मरणं पत्थेइ रणे देदि सुबहुअं हि थुव्वमाणो दु।
ण गणइ अकज्जकज्जं लक्खणमेदं तु काउस्स॥
जाणइ कज्जमकज्जं सेयमसेयं च सव्वसमपासी।
दयदाणरदो य मिदू लक्खणमेदं तु तेउस्स॥
चागी भद्दो चोक्खो उज्जुवकम्मो य खमइ बहुअं हि।
साहु-गुरु-पूजणिरदो लक्खमेदं तु पम्मस्स॥
ण उ कुणइ पक्खवायं ण वि य णिदाणं समो य सव्वेसु।
णत्थि य रायद्दोसो णेहो वि य सुक्कलेस्सस्स॥

तीव्र क्रोधी हो, वैरको न छोड़े, लड़ना जिसका स्वभाव हो, धर्म और दयासे रहित हो, दुष्ट हो और किसीके वशमें न आता हो, ये सब कृष्ण लेश्यावालेके लक्षण हैं॥ जो काम करनेमें मन्द

हो, विवेकसे रहित हो, अज्ञानी हो, विषयोंमें लम्पट हो, मानी हो, मायाचारी हो, आलसी हो और भीरु हो ।। अति सोनेवाला हो, दूसरोंको ठगनेमें चतुर हो, धन और धान्यके विषयमें तीव्र लालसा हो, ये सब संक्षेपसे नील लेश्यावालेके लक्षण कहे हैं ।। जो दूसरोंपर क्रोध करता है, दूसरों की निन्दा करता है, दूसरोंको दोष लगाता है, शोक और भयसे व्याप्त रहता है, दूसरोंकी निन्दा और तिरस्कार करता है और अपनी बहुत प्रशंसा करता है, दूसरोंका विश्वास नहीं करता, अपने समान ही दूसरेको भी मानता है, स्तुति करनेवालेपर प्रसन्न होता है, फिर तो हानि लाभको भी परवाह नहीं करता, युद्धमें मरनेके लिये तैयार रहता है, स्तुति करनेसे खूब धन दे डालता है और कार्य-अकार्यको नहीं गिनता, ये सब कापोत लेश्याके लक्षण हैं ।। जो कार्य-अकार्यको और सेव्य असेव्यको जानता है, सबको समान रूपसे देखता है, दया और दानमें तत्पर रहता है, और कोमल परिणामी होता है, ये सब तेज लेश्यावालेके लक्षण हैं।। जो त्यागी है, भद्र परिणामी है, निरन्तर कार्य करनेमें तत्पर रहता है, अनेक अपराधोंको क्षमा कर देता है, साधुओं और गुरुजनोंकी पूजामें रत रहता है ये सब पद्म लेश्या वालेके लक्षण हैं ।। जो पक्षपात नहीं करता, निदान नहीं बांधता, सबके साथ समान व्यवहार करता है, इष्ट और अनिष्ट विषयोंमें राग-द्वेष नहीं करता तथा पुत्र मित्रादिमें स्नेह रहित है, ये सब शुक्ल लेश्या वालेके लक्षण हैं ।। १००-१०८ ।।

शंका—अलेश्य किन्हें कहते हैं ?

समाधान—जो छहों लेश्याओंसे रहित हैं उन्हें अलेश्य—लेश्यारहित जीव कहते हैं । कहा भी है—

किण्हादिलेस्सरहिदा संसारविणिग्गया अणंतसुहा ।
सिद्धिपुरं संपत्ता अलेस्सिया ते मुणेयव्वा ।।

जो कृष्णादि लेश्याओंसे रहित हैं, पञ्च परिवर्तन रूप संसारसे पार हो गये हैं, जो अतीन्द्रिय और अनन्त सुखको प्राप्त हैं और सिद्धिपुरीको प्राप्त हो गये हैं, उन्हें लेश्यारहित जानना चाहिये ।।१०९।।

अब लेश्याओंके गुणस्थान बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

किण्हलेस्सिया णीललेस्सिया काउलेस्सिया एइंदियप्पहुडि जाव असंजदसम्माइट्ठि त्ति ।।१३७।।

कृष्ण लेश्या, नील लेश्या, कापोत लेश्यावाले जीव एकेन्द्रियसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक होते हैं ।।१३७।।

शंका—तीनों अशुभ लेश्याएँ चौथे गुणस्थानतक ही क्यों होती हैं ?

समाधान—तीव्रतम, तीव्रतर और तीव्र कषायके उदयका सद्भाव चौथे गुणस्थान तक ही पाया जाता है इसलिये तीनों अशुभ लेश्याएं वहीं तक होती हैं ।।

अब पीत और पद्म लेश्याके गुणस्थान बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

तेउलेस्सिया पम्मलेस्सिया सण्णिमिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा त्ति ।।१३८।।

पीत लेश्या और पद्म लेश्यावाले जीव संज्ञी मिथ्यादृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक होते हैं ॥

शंका—ये दोनों लेश्याएं सातवें गुणस्थान तक क्यों होती हैं ?

समाधान—इन लेश्यावाले जीवोंके तीव्रतम आदि कषायोंका उदय नहीं होता।

अब शुक्ल लेश्याके गुणस्थान बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

सुक्कलेस्सिया सण्णिमिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ॥१३९॥

शुक्ललेश्यावाले जीव संज्ञी मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगकेवली गुणस्थान तक होते हैं॥ १३९॥

शङ्का—जिनकी कषाय क्षीण अथवा उपशान्त हो गई है उनके शुक्ललेश्या कैसे हो सकती है ?

समाधान—जिन जीवोंकी कषाय क्षीण अथवा उपशान्त हो गई है उनके भी कर्मलेपका कारण योग पाया जाता है, इस अपेक्षासे उनके शुक्ललेश्याका सद्भाव माननेमें कोई विरोध नहीं आता।

अब लेश्यारहित जीवोंके गुणस्थान बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

तेण परमलेस्सिया ॥१४०॥

तेरहवें गुणस्थानसे आगे सभी जीव लेश्यारहित होते हैं॥ १४० ॥

शंका—तेरहवें गुणस्थानसे आगे सभी जीव लेश्यारहित क्यों होते हैं ?

समाधान—क्योंकि वहाँ बन्धके कारणभूत योग और कषायका अभाव है ॥

लेश्यामार्गणाके द्वारा जीवपदार्थको कहकर भव्य और अभव्य मार्गणाके द्वारा जीवोंके अस्तित्वका कथन करने लिये सूत्र कहते हैं—

भवियाणुवादेण अत्थि भवसिद्धिया अभवसिद्धिया ॥ १४१ ॥

भव्यमार्गणाके अनुवादसे भव्यसिद्ध और अभव्यसिद्ध जीव होते हैं ॥ १४१ ॥

शंका—भव्यसिद्ध किन्हें कहते हैं ?

समाधान—जो आगे सिद्धिको प्राप्त होंगे उन्हें भव्यसिद्ध जीव कहते हैं।

शङ्का—इस तरहसे तो सब भव्यजीवोंके सिद्धिको प्राप्त होजानेपर भव्यजीवोंकी सन्ततिका उच्छेद हो जायेगा ?

समाधान—भव्यजीव अनन्त होते हैं अतः उनका अन्त नहीं होता; क्योंकि जो राशि सान्त होती है, वह अनन्त नहीं कही जा सकती।

शंका—जिस राशिमेंसे सदा व्यय होता रहता है, परन्तु उसमें आय नहीं होती, वह राशि अनन्त कैसे हो सकती है ?

समाधान—यदि व्ययसहित और आयसे रहित राशिको भी अनन्त न माना जायगा तो एकको भी अनन्त माना जा सकेगा। अतः व्यय होते हुए भी जिसका क्षय नहीं होता वही अनन्त है।

शंका—अर्धपुद्गलपरिवर्तनरूप काल अनन्त होता है फिर भी उसका क्षय देखा जाता है।

समाधान—भव्यराशि और अर्धपुद्गलपरिवर्तनरूप काल भिन्न-भिन्न कारणोंसे अनन्त हैं, किन्तु उन दोनोंमें समानता नहीं है। इसलिये अर्धपुद्गलपरावर्तनरूप काल वास्तवमें अनन्त नहीं है। इसका खुलासा इसप्रकार है—अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल क्षयसहित होते हुए भी इसलिये अनन्त है कि छद्मस्थ जीवोंके द्वारा उसका अन्त नहीं पाया जाता। किन्तु केवलज्ञान वास्तविक अनन्त है; क्योंकि वह अनन्तको जानता है। और जीवराशि निर्मूल नाश न होनेसे अनन्त है। यदि जिसमेंसे व्यय होता है उसका सर्वथा क्षय माना जायेगा तो कालका भी सर्वथा क्षय हो जायेगा क्योंकि वह भी व्ययसहित है। और कालका सर्वथा क्षय होनेपर दूसरे द्रव्योंकी भी स्वलक्षणरूप पर्यायोंका अभाव होनेसे समस्त वस्तुओंका अभाव हो जायेगा। अत: भव्यराशि व्ययसहित होनेपर भी अनन्त है, उसका कभी अन्त नहीं होता।

शंका—जो भव्यजीव कभी मुक्त नहीं होंगे उन्हें भव्य कैसे कहा जा सकता है?

समाधान—मुक्ति प्राप्त करनेकी योग्यताकी अपेक्षा उन्हें भव्य कहा जाता है। जितने भी जीव मुक्ति पानेके योग्य होते हैं वे सब नियमसे कलंकरहित होते हैं ऐसा कोई नियम नहीं है, ऐसा नियम माननेपर स्वर्णपाषाणसे व्यभिचार आता है। अत: जैसे जो स्वर्णपाषाण कभी स्वर्णपनेको प्राप्त नहीं होगा उसे अन्धपाषाण नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उसमें स्वर्णपाषाणरूप शक्ति है। वैसे ही जो भव्यजीव कभी मुक्ति प्राप्त नहीं करेंगे वे योग्यताको अपेक्षा भव्य ही हैं।

जीवराशिका प्रमाण बतलाते हुए कहा है—

एयणिगोदसरीरे जीवा दव्वपमाणदो दिट्ठा।
सिद्धेहि अणंतगुणा सव्वेण वितीदकालेण॥

द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा सिद्धराशिसे और समस्त अतीतकालसे अनन्तगुणे जीव एक निगोदिया-शरीरमें देखे गये हैं।

शंका—अभव्य किन्हें कहते हैं?

समाधान—जिनमें मुक्ति प्राप्त करनेकी योग्यता नहीं है उन जीवोंको अभव्य कहते हैं। कहा भी है—

भविया सिद्धी जेसिं जीवाणं ते भवंति भवसिद्धा।
तव्विवरीवाभव्वा संसारादो ण सिज्झंति॥

जिन जीवोंकी सिद्धि होनेवाली हो अथवा जिनमें वैसी योग्यता हो उन्हें भव्यसिद्ध कहते हैं। और उनसे विपरीत अभव्य होते हैं, जो संसारसे निकलकर कभी भी मुक्ति प्राप्त नहीं करते।

अब भव्यजीवोंके गुणस्थान बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

भवसिद्धिया एइंदियप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति॥ १४२॥

भव्यसिद्धजीव एकेन्द्रियसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थानतक होते हैं॥ १४२॥

अभव्य जीवोंके गुणस्थान बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

अभवसिद्धिया एइंदियप्पहुडि जाव सण्णिमिच्छाइट्ठि त्ति॥ १४३॥

अभव्यसिद्धजीव एकेन्द्रियसे लेकर संज्ञी मिथ्यादृष्टि गुणस्थानतक होते हैं॥ १४३॥

अब सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादसे जीवोंका अस्तित्व बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

सम्मत्ताणुवादेण अत्थि सम्माइट्ठी खइयसम्माइट्ठी वेदगसम्माइट्ठी उवसमसम्माइट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी, मिच्छाइट्ठी चेदि ॥१४४॥

सम्यक्त्व मार्गणाके अनुवादसे सामान्यसे सम्यग्दृष्टी और विशेषसे क्षायिक-सम्यग्दृष्टी, वेदक सम्यग्दृष्टी, उपशमसम्यग्दृष्टी, सासादनसम्यग्दृष्टी, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और मिथ्यादृष्टी जीव होते हैं ॥ १४४ ॥

शंका—सम्यक्त्वमार्गणामें मिथ्यादृष्टि आदिको क्यों गिनाया ?

समाधान—जैसे आम्रवनके भीतर खड़े हुए नीमके वृक्षोंकी आम्रवनमें गणना कर ली जाती है वैसे ही मिथ्यात्व आदिकी सम्यक्त्वमें गणना की जाती है। कहा भी है—

छप्पंच णव-विहाणं अत्थाणं जिणवरोवइट्ठाणं।
आणाए अहिगमेण व सद्दहणं होइ सम्मत्तं ॥
खीणे दंसणमोहे जं सद्दहणं सुणिम्मलं होई।
तं खाइयसम्मत्तं णिच्चं कम्मक्खवणहेऊ ॥
वयणेहि वि हेऊहि वि इंदिय-भय-आणएहि रूवेहि।
बीहच्छ-जुगुंच्छाहि ण सो तेलोक्केण चालेज्ज ॥
दंसणमोहुदयादो उप्पज्जइ जं पयत्थसद्दहणं।
चल-मलिनमगाढं तं वेदयसम्मत्तमिह मुणसु ॥
दंसणमोहुवसमदो उप्पज्जइ जं पयत्थसद्दहणं।
उवसमसम्मत्तमिणं पसण्ण-मल-पंक-तोय-समं ॥

जिनवर भगवानके द्वारा उपदिष्ट छह द्रव्य, पाँच अस्तिकाय, और नौ पदार्थोंका जिनवर भगवानकी आज्ञा मानकर अथवा समझबूझकर श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है ॥ दर्शनमोहनीय कर्मका सर्वथा क्षय हो जानेपर जो निर्मल श्रद्धान होता है वह क्षायिक सम्यक्त्व है। वह क्षायिक सम्यक्त्व नित्य होता है तथा कर्मोंके क्षपणका कारण है ॥ श्रद्धानको भ्रष्ट करनेवाले वचनों और हेतुओंसे, इन्द्रियोंको भय उत्पन्न करनेवाले रूपोंसे या घृणित पदार्थोंके देखनेसे उत्पन्न हुई ग्लानिसे, अधिक क्या, तीनों लोकोंसे भी क्षायिक सम्यग्दर्शन चलायमान नहीं होता ॥ सम्यक्त्वमोहनीय कर्मके उदयसे पदार्थोंका जो चल, मलिन और अगाढ़रूप श्रद्धान होता है उसे वेदक सम्यक्त्व जानो ॥ दर्शनमोहनीय कर्मके उपशमसे कीचड़के नीचे बैठ जानेसे निर्मल हुए जलके समान पदार्थोंका जो निर्मल श्रद्धान होता है वह उपशमसम्यग्दर्शन है ॥

सामान्य सम्यग्दर्शन तथा क्षयिक सम्यग्दर्शनके गुणस्थान बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

सम्माइट्ठी खइय-सम्माइट्ठी असंजद-सम्माइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ॥ १४५ ॥

सामान्यसे सम्यग्दृष्टि और विशेषकी अपेक्षा क्षायिकसम्यग्दृष्टी जीव असंयतसम्यग्दृष्टी गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक होते हैं ॥ १४५ ॥

शंका—सामान्य सम्यग्दर्शन क्या वस्तु है ?

समाधान—तीनों ही सम्यग्दर्शनोंमें जो साधारण धर्म पाया जाता है वही सामान्य सम्यग्दर्शनसे विवक्षित है।

शंका—क्षायिक, क्षायोपशमिक और औपशमिक सम्यग्दर्शन तो परस्परमें भिन्न हैं, उनमें सदृशता कैसी ?

समाधान—यथार्थ श्रद्धानकी अपेक्षा उन तीनोंमें समानता पाई जाती है।

शङ्का—क्षय, क्षयोपशम और उपशमसे विशिष्ट यथार्थ श्रद्धानोंमें समानता कैसे हो सकती है ?

समाधान—क्षय, क्षयोपशम और उपशम विशेषणोंमें भेद होनेपर भी यथार्थ श्रद्धानरूप विशेष्यमें भेद नहीं पड़ता।

अब वेदकसम्यग्दर्शनके गुणस्थानोंको बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

वेदगसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा त्ति ॥१४६॥

वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अप्रमत्तगुणस्थानतक होते हैं ॥ १४६ ॥

शङ्का—ऊपरके आठवें आदि गुणस्थानोंमें वेदकसम्यग्दर्शन क्यों नहीं होता ?

समाधान—क्योंकि अगाढ़ आदि मलसे सहित श्रद्धानके साथ क्षपक और उपशम श्रेणिपर नहीं चढ़ा जा सकता।

शंका—वेदकसम्यक्त्वसे औपशमिक सम्यक्त्व कैसे बड़ा है ?

समाधान—सम्यक्त्वप्रकृतिके उदयसे उत्पन्न हुई शिथिलता वगैरह औपशमिक सम्यग्दर्शनमें नहीं पाई जाती, इसलिये वेदकसम्यग्दर्शनसे औपशमिकसम्यग्दर्शन बड़ा है।

शंका—इसे वेदकसम्यग्दर्शन क्यों कहते हैं ?

समाधान—सम्यक्त्वमोहनीयकर्मके उदयका वेदन करने वाले जीवको वेदक कहते हैं उसके जो सम्यग्दर्शन होता है उसे वेदक सम्यग्दर्शन कहते हैं।

शंका—जिनके दर्शनमोहनीयकर्मका उदय वर्तमान है उनके सम्यग्दर्शन कैसे हो सकता है ?

समाधान—दर्शनमोहनीयकर्मको सम्यक्त्वमोहनीयनामक देशघाति प्रकृतिकाउदय होते हुए भी जीवके स्वभाव रूप श्रद्धानका एकदेश रहनेमें कोई विरोध नहीं है।

शंका—दर्शनमोहनीयकी देशघातिप्रकृतिको सम्यक्त्वप्रकृति क्यों कहा जाता है ?

समाधान—सम्यक्त्वप्रकृति सम्यग्दर्शनकी सहचारी है इसलिये उसे सम्यक्त्वप्रकृति कहते हैं।

अब औपशमिक सम्यग्दर्शनके गुणस्थान कहनेके लिये सूत्र कहते हैं—

उवसमसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव उवसंतकसायवीयरायछदुमत्था त्ति ॥१४७॥

उपशम सम्यग्दृष्टि जीव असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर उपशान्तकषायवीतराग छद्मस्थ गुणस्थानतक होते हैं ॥१४७॥

अब सासादनसम्यक्त्व आदिसे सम्बन्ध रखनेवाले गुणस्थानोंका कथन करनेके लिये तीन सूत्र कहते हैं—

सासणसम्माइट्ठी एक्कम्मि चेय सासणसम्माइट्ठिट्ठाणे ॥१४८॥

सासादनसम्यग्दृष्टि जीव एक सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें ही होते हैं ॥१४८॥

सम्मामिच्छाइट्ठी एक्कम्मि चेय सम्मामिच्छाइट्ठिट्ठाणे ॥१४९॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें ही होते हैं ॥१४९॥

मिच्छाइट्ठी एइंदियप्पहुडि जाव सण्णिमिच्छाइट्ठि त्ति ॥१५०॥

मिथ्यादृष्टी जीव एकेन्द्रियसे लेकर संज्ञी मिथ्यादृष्टि तक होते हैं ॥१५०॥

अब सम्यग्दर्शनका मार्गणाओंमें निरूपण करनेके लिए सूत्र कहते हैं—

णेरइया अत्थि मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी असंजदसम्माइट्ठि त्ति ॥१५१॥

नारकी जीव मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टी, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवाले होते हैं ॥१५१॥

शंका—गतिमार्गणाका कथन करते समय यह बतला आये हैं कि इस गतिमें इतने गुणस्थान होते हैं और इतने नहीं होते। अतः इस सूत्रको कहना अनावश्यक है। तथा सम्यग्दर्शनका कथन करते समय गुणस्थानोंके कथनका अवसर भी नहीं है?

समाधान—जो शिष्य पूर्वोक्त कथनको भूल गया हो उसके लिये उस अर्थका पुनः स्मरण कराकर उन उन गतियोंमें सम्यग्दर्शनके भेदोंका कथन करनेके लिये इस सूत्रका कथन किया है॥

एवं जाव सत्तसु पुढवीसु ॥१५२॥

इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें प्रारम्भके चार गुणस्थान होते हैं ॥१५२॥

अब सम्यग्दर्शनका विशेष कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

णेरइया असंजदसम्माइट्ठिट्ठाणे अत्थि खइयसम्माइट्ठी वेदगसम्माइट्ठी उवसमसम्माइट्ठी चेदि ॥१५३॥

नारकी जीव असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि होते हैं ॥१५३॥

एवं पढमाए पुढवीए णेरइया ॥१५४॥

इसी प्रकार प्रथम पृथ्वीमें नारकी जीव होते हैं ॥१५४॥

विदियादि जाव सत्तमाए पुढवीए णेरइया असंजदसम्माइट्ठि ट्ठाणे खइयसम्माइट्ठी णत्थि, अवसेसा अत्थि ॥१५५॥

दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक नारकी जीव असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि नहीं होते, शेष दो सम्यग्दर्शनोंसे युक्त होते हैं ॥१५५॥

शंका—सात प्रकृतियोंके क्षय हो जानेपर क्षायिकसम्यग्दृष्टी जीव दूसरी आदि पृथिवियोंमें क्यों उत्पन्न नहीं होते ?

समाधान—ऐसा स्वभाव ही है कि क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव दूसरी आदि पृथिवियोंमें उत्पन्न नहीं होते।

शंका—दूसरी आदि पृथिवियोंके नारकी सात प्रकृतियोंका क्षय करके क्षायिकसम्यक्त्वको क्यों नहीं प्राप्त करते ?

समाधान—वहां जिनदेवका अभाव है और सात प्रकृतियोंमेंसे मिथ्यात्वके क्षयका आरम्भ जिनदेवके पादमूलमें ही होता है।

अब तिर्यञ्च गतिमें कथन करनेके लिए सूत्र कहते हैं—

तिरिक्खा अत्थि मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी संजदासंजदा त्ति ॥१५६॥

तिर्यञ्च मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टी, सम्यक्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और संयता-संयत गुणस्थानवाले होते हैं ॥१५६॥

शंका—शरीरसे संन्यास ग्रहण कर लेनेके कारण जिन्होंने आहारका त्यागकर दिया है ऐसे तिर्यञ्चोंके संयम क्यों नहीं होता ?

समाधान—तिर्यञ्चोंके अन्तरंगमें सकलनिवृत्ति नहीं है।

शंका—उनके अन्तरंगमें सकलनिवृत्तिका अभाव क्यों है ?

समाधान—तिर्यञ्च जातिमें संयम नहीं होता, यह नियम है।

एवं जाव सव्वदीवसमुद्देसु ॥१५७॥

इसी प्रकार सब द्वीप और सब समुद्रोंमें रहनेवाले तिर्यञ्चोंके समझना चाहिये ॥१५७॥

शंका—मानुषोत्तर पर्वतसे आगे स्वयंभूरमणद्वीपमें स्थित स्वयंप्रभ पर्वतके इस ओर तक असंख्यात द्वीपों और समुद्रोंमें भोगभूमिके समान स्थिति होनेसे वहाँ देशव्रती तिर्यञ्च नहीं पाये जाते। इसलिये इस सूत्रका कथन घटित नहीं होता।

समाधान—पूर्व वैरके सम्बन्धसे देवों अथवा दानवोंके द्वारा कर्मभूमिसे उठाकर डाले गये कर्मभूमिया तिर्यञ्चोंका सब द्वीपों और समुद्रोंमें सद्भाव पाया जाता है अतः सब द्वीपों और समुद्रोंमें तिर्यञ्चोंके पाँच गुणस्थान बतलाये हैं॥

अब तिर्यञ्चोंमें सम्यग्दर्शनका विशेष कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

तिरिक्खा असंजदसम्माइट्ठि-ट्ठाणे अत्थि खइयसम्माइट्ठी वेदगसम्माइट्ठी उवसमसम्माइट्ठी ॥१५८॥

तिर्यञ्च असंयतसम्यग्दृष्टी गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टी, वेदकसम्यग्दृष्टी और उपशम-सम्यग्दृष्टी होते हैं ॥ १५८ ॥

तिरिक्खा संजदासंजदट्ठाणे खइयसम्माइट्ठी णत्थि अवसेसा अत्थि ॥१५९॥

तिर्यञ्च संयतासंयतगुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टी नहीं होते, शेष दो सम्यग्दर्शनोंसे युक्त होते हैं ॥ १५९ ॥

शंका—तिर्यञ्चोंमें क्षायिकसम्यग्दृष्टी जीव संयतासंयत क्यों नहीं होते ?

समाधान—यदि क्षायिकसम्यग्दृष्टी जीव मरकर तिर्यञ्चोंमें उत्पन्न होते हैं तो भोगभूमिया तिर्यञ्चोंमें ही उत्पन्न होते हैं। और भोगभूमिमें उत्पन्न हुए जीवोंके अणुव्रत नहीं होते; क्योंकि वहाँ अणुव्रतके होनेमें आगमसे विरोध है ॥

एवं पंचिंदियतिरिक्खा पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्ता ॥ १६० ॥

इसीप्रकार पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च और पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यञ्च होते हैं ॥ १६० ॥

पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु असंजदसम्माइट्ठि-संजदासंजदट्ठाणे खइयसम्माइट्ठी णत्थि, अवसेसा अत्थि ॥ १६१ ॥

योनिमती पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंमें असंयतसम्यग्दृष्टी और संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिक-सम्यग्दर्शनवाले तिर्यञ्च नहीं होते, शेष दो सम्यग्दर्शनवाले होते हैं ॥ १६१ ॥

शंका—ऐसा क्यों होता है ?

समाधान—योनिमती पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंमें क्षायिकसम्यग्दृष्टिजीव मरकर उत्पन्न नहीं होते और जो वहाँ उत्पन्न होते हैं उनके दर्शनमोहनीयका क्षय नहीं होता। इसलिये वहाँ क्षायिक-सम्यग्दर्शन नहीं पाया जाता ॥

अब मनुष्योंमें कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

मणुस्सा अत्थि मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी असंजदसम्मा-इट्ठी संजदासंजदा संजदा त्ति ॥१६२॥

मनुष्य मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टी, सम्यक्‌मिथ्यादृष्टी, असंयतसम्यग्दृष्टी, संयतासंयत और संयत होते हैं ॥ १६२ ॥

एवमड्ढाइजदीवसमुद्देसु ॥१६३॥

इसी प्रकार ढाई द्वीप और दो समुद्रोंमें जानना चाहिये ॥ १६३ ॥

शङ्का—वैरके सम्बन्धसे उठाकर डाले गये संयत और संयतासंयत मनुष्योंका सब द्वीप-समुद्रोंमें सद्भाव होना चाहिये।

समाधान—नहीं, क्योंकि मानुषोत्तर पर्वतसे परे देवोंके प्रयत्नसे भी मनुष्योंका गमन नहीं हो सकता ॥

अब मनुष्योंमें सम्यग्दर्शनका विशेष कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

मणुसा असंजदसम्माइट्ठि-संजदासंजद-संजदट्ठाणे अत्थि खइयसम्म-इट्ठी वेदय-सम्माइट्ठी उवसमसम्माइट्ठी ॥१६४॥

मनुष्य असंयतसम्यग्दृष्टी, संयतासंयत और संयतगुणस्थानोंमें क्षायिकसम्यग्दृष्टी वेदक-सम्यग्दृष्टी और उपशमसम्यग्दृष्टी होते हैं ॥ १६४ ॥

एवं मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु ॥ १६५ ॥

इसीप्रकार पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यिणियोंमे जानना चाहिये ॥ १६५ ॥

अब देवोंमें विशेष कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

देवा अत्थि मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी असंजदसम्माइट्ठि त्ति ॥ १६६ ॥

देव मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टी, सम्यक्मिथ्यादृष्टी और असंयतसम्यग्दृष्टि होते हैं ॥ १६६ ॥

एवं जाव उवरिम-उवरिमगेवेज्जविमाणवासिय देवा त्ति ॥ १६७ ॥

इसीप्रकार उपरिम ग्रैवेयकके उपरिम पटलतकके देव जानना चाहिये ॥ १६७ ॥

देवा असंजदसम्माइट्ठिट्ठाणे अत्थि खइयसम्माइट्ठी वेदयसम्माइट्ठी उवसम-सम्माइट्ठि त्ति ॥ १६८ ॥

देव असंयतसम्यग्दृष्टी गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टी, वेदकसम्यग्दृष्टी और उपशमसम्यग्दृष्टी होते हैं ॥ १६८ ॥

भवणवासिय-वाणवेंतर-जोइसियदेवा देवीओ च सोधम्मीसाणकप्पवासिय-देवीओ च असंजदसम्माइट्ठिट्ठाणे खइयसम्माइट्ठी णत्थि अवसेसा अत्थि अवसेसियाओ अत्थि ॥१६९॥

भवनवासी, वानव्यन्तर, और ज्योतिषी देव, उनकी देवियाँ तथा सौधर्म और ईशान कल्प-वासी देवियाँ असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि नहीं होते। शेषके दो सम्यग्दर्शनोंसे युक्त होते हैं अथवा होती हैं ॥ १६९ ॥

शङ्का—क्षायिकसम्यग्दृष्टि उक्त स्थानोंमें क्यों नहीं होते ?

समाधान—देवोंमें दर्शनमोहनीयका क्षपण नहीं होता। दूसरे जिन जीवोंने दर्शनमोह-नीयका क्षय कर दिया है उनकी भवनवासी आदि अधम देवोंमें तथा सब देवियोंमें उत्पत्ति नहीं होती।

शंका—शेष दो सम्यग्दर्शन उक्त स्थानोंमें कैसे होते हैं ?

समाधान—उक्त स्थानोंमें उत्पन्न हुए जीवोंके बादको सम्यग्दर्शन उत्पन्न हो जाता है इसलिये शेष दो सम्यग्दर्शनोंका वहाँ सद्भाव पाया जाता है।

सोधम्मीसाणप्पहुडि जाव उवरिम-उवरिमगेवज्जविमाणवासियदेवा असंजद-सम्माइट्ठिट्ठाणे अत्थि खइयसम्माइट्ठी वेदगसम्माइट्ठी उवसमसम्माइट्ठी ॥१७०॥

सौधर्म और ऐशान कल्पसे लेकर उपरिम ग्रैवेयकके उपरिम भाग तकके देव असंयत सम्यग्दृष्टी गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टी, वेदकसम्यग्दृष्टी और उपशमसम्यग्दृष्टी होते हैं ॥ १७० ॥

शंका—ऐसा कैसे होता है ?

समाधान—उक्त देवोंमें तीनों ही प्रकारके सम्यग्दर्शनोंके साथ जीवोंकी उत्पत्ति देखी जाती है तथा वहाँ उत्पन्न होनेके पश्चात् जीव वेदक और औपशमिक सम्यग्दर्शनको उत्पन्न कर सकता है इसलिये उक्त देवोंमें तीनों सम्यग्दर्शनोंका सद्भाव उचित ही है।

अब शेष देवोंमें सम्यग्दर्शनके भेद बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

अणुदिस-अणुत्तर-विजय-वइजयंत-जयंतावराजिद - सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा असंजदसम्माइट्ठिट्ठाणे अत्थि खइयसम्माइट्ठी वेदगसम्माइट्ठी उवसमसम्माइट्ठी ॥१७१॥

नौ अनुदिशोंमें तथा विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि इन पाँच अनुत्तरोंमें रहनेवाले देव असंयतसम्यग्दृष्टी गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टी, वेदकसम्यग्दृष्टी और उपशमसम्यग्दृष्टी होते हैं ॥ १७१ ॥

शंका—उक्त देवोंमें औपशमिक सम्यग्दर्शनका सद्भाव कैसे पाया जा सकता है, क्योंकि उनमें क्षायिक और क्षायोशमिक सम्मग्दृष्टी ही उत्पन्न होते हैं और क्षायिक तथा क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन पूर्वक औपशमिक सम्यग्दर्शनकी उत्पत्ति नहीं होती। तथा जो मिथ्यादृष्टि जीव उपशम सम्यक्त्वको ग्रहण करते हैं वे वहाँ उत्पन्न नहीं होते; क्योंकि ऐसे उपशमसम्यग्दृष्टियोंका उपशम सम्यक्त्वके साथ मरण नहीं होता ?

समाधान—उपशमश्रेणी पर चढ़े हुए और चढ़कर उतरे हुए उपशम सम्यग्दृष्टि जीवोंकी अनुदिश और अनुत्तरोंमें उत्पत्ति होती है, इसलिये वहाँ उपशम सम्यक्त्वके सद्भावमें कोई विरोध नहीं है।

शंका—अन्य उपशमसम्यग्दृष्टियोंकी तरह उपशमश्रेणीपर चढ़े हुए उपशमसम्यग्दृष्टी जीव भी नहीं मरते; क्योंकि वे उपशमसम्यग्दर्शनसे युक्त होते हैं।

समाधान—साधारण उपशमसम्यग्दृष्टियों और उपशमश्रेणीपर चढ़े हुए उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें बहुत अन्तर है। प्रथम उपशमसम्यक्त्व मिथ्यात्वपूर्वक होता है जबकि दूसरा उपशम सम्यक्त्व सम्यग्दर्शनपूर्वक ही होता है। प्रथम उपशमसम्यक्त्वमें चारित्रमोहनीयका उपशम नहीं

होता। किन्तु दूसरे उपशमसम्यक्त्वमें चारित्रमोहनीयका उपशम होता है। अतः प्रथमका धर्म दूसरे पर लागू नहीं किया जा सकता।

इस प्रकार सम्यग्दर्शनके द्वारा जीवपदार्थको कहकर अब संज्ञी मार्गणाके द्वारा जीवपदार्थ-का कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

सण्णियाणुवादेण अत्थि सण्णी असण्णी ॥१७२॥

संज्ञीमार्गणाके अनुवादसे संज्ञी और असंज्ञी जीव होते हैं ॥ १७२ ॥

अब संज्ञियोंके गुणस्थान कहनेके लिये सूत्र कहते हैं—

सण्णी मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीयरायछदुमत्था त्ति ॥१७३॥

संज्ञी जीव मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक होते हैं ॥ १७३ ॥

शंका—मन सहित होनेसे सयोग केवली संज्ञी क्यों नहीं हैं ?

समाधान—उनके आवरणकर्म नष्ट हो गये हैं इसलिये वे मनकी सहायतासे बाह्य पदार्थोंको नहीं जानते। अतः उन्हें संज्ञी नहीं कहा जा सकता।

शंका—तो केवलीको असंज्ञी कहना चाहिये ?

समाधान—जिन्होंने समस्त पदार्थोंका साक्षात्कार कर लिया है उन्हें असंज्ञी नहीं माना जा सकता।

शङ्का—केवली असंज्ञी होते हैं; क्योंकि वे विकलेन्द्रियोंकी तरह मनकी सहायताके बिना ही बाह्य पदार्थोंको जानते हैं ?

समाधान—यदि मनकी अपेक्षा न लेकर ज्ञानकी उत्पत्ति होना मात्र ही असंज्ञीपनेमें कारण होता तो केवलीको असंज्ञी कहा जा सकता था। किन्तु ऐसा नहीं है। अतः केवली न संज्ञी हैं और न असंज्ञी हैं।

अब असंज्ञी जीवोंके गुणस्थान बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

असण्णी एइंदियप्पहुडि जाव असण्णिपंचिंदिया त्ति ॥१७४॥

असंज्ञी जीव एकेन्द्रियसे लेकर असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्यन्त होते हैं ॥ १७४ ॥

अब आहारमार्गणाके द्वारा जीवोंका कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

आहाराणुवादेण अत्थि आहारा अणाहारा ॥१७५॥

आहारमार्गणाके अनुवादसे आहारक और अनाहारक जीव होते हैं ॥ १७५ ॥

अब आहार मार्गणामें गुणस्थानोंका कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

आहारा एइंदियप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ॥१७६॥

आहारक जीव एकेन्द्रियसे लेकर सयोगकेवली गुणस्थान तक होते हैं ॥ १७६ ॥

शंका—यहाँ आहारसे कौन-सा आहार ग्रहण किया है ?

समाधान—यहाँ आहारशब्दसे कवलाहार, लेपाहार, ऊष्माहार, मानसिक आहार और कर्माहारको छोड़कर नोकर्म आहारका ग्रहण किया है।

अब अनाहारक जीवोंके गुणस्थान कहनेके लिये सूत्र कहते हैं—

अणाहारा चदुसु ट्ठाणेसु विग्गहगइसमावण्णाणं केवलीणं वा समुग्घादगदाणं अजोगिकेवली सिद्धाचेदि ॥१७७॥

विग्रहगतिमें स्थित मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और अविरतसम्यग्दृष्टी तथा समुद्घातगत सयोगकेवली, अयोगकेवली और सिद्ध अनाहारक होते हैं ॥ १७७ ॥

शंका—उक्त जीव अनाहारक क्यों होते हैं?

समाधान—ये जीव शरीरके योग्य पुद्गलोंको ग्रहण नहीं करते, इसलिये अनाहारक होते हैं।

•

षट्खण्डागमके शेष भागोंमें आगत
कुछ स्वाध्यायोपयोगी चर्चाएँ

णमो जिणाणं।

अप्रकृतका निवारण करते हुए प्रकृत अर्थका निरूपण करनेके लिये निक्षेप किया जाता है। वह इस प्रकार है—नाम, स्थापना, द्रव्य और भावके भेदसे जिनके चार प्रकार हैं। 'जिन' शब्द नामजिन है। स्थापनाजिन सद्भाव स्थापना, और असद्भाव स्थापनाके भेदसे दो प्रकार है। जिन भगवानके आकाररूपसे स्थित द्रव्य सद्भावस्थापनाजिन है। जिनाकारसे रहित जिस द्रव्यमें जिन भगवानकी स्थापना की जाय वह असद्भावस्थापनाजिन हैं। द्रव्यजिन आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकार है। जिनप्राभृतका जानकार किन्तु उसमें अनुपयुक्त जीव आगमद्रव्यजिन है। नोआगमद्रव्यजिन ज्ञायकशरीर, भावि और तद्व्यतिरिक्तके भेदसे तीन प्रकार है।

शङ्का—अचेतन भूत, भावि और वर्तमान शरीरोंको 'जिन' संज्ञा कैसे संभव है?

समाधान—जिनाधाररूप पर्यायसे अतीत, अनागत और वर्तमान शरीरोंको द्रव्यजिन मानने में कोई विरोध नहीं है?

भविष्यकालमें जिनपर्यायसे परिणमन करनेवाला भाविद्रव्यजिन है।

शंका—भविष्यकालमें जिनप्राभृतको जाननेवाले व भूतकालमें जानकर विस्मरणको प्राप्त हुए जीवको नोआगमभावीजिन क्यों नहीं स्वीकार करते?

समाधान—नहीं, क्योंकि आगमसंस्कार पर्यायका आधार होनेसे अतीत, अनागत व वर्तमान आगमद्रव्यके नोआगमद्रव्यपना होनेमें विरोध है।

आगम और नोआगमके भेदसे भावजिन दो प्रकार है। जिन प्राभृतका जानकार तथा उसमें उपयुक्त जीव आगमभावजिन है। नोआगम सहित उपयुक्त और तत्परिणतके भेदसे दो प्रकार है। जिन स्वरूपको ग्रहण करनेवाले ज्ञानसे परिणत जीव उपयुक्त भावजिन है। जिनपर्यायसे परिणत जीव तत्परिणत भावजिन है।

शंका—इन जिनोंमेंसे यहाँ किसको नमस्कार किया है?

समाधान—तत्परिणतभावजिन और स्थापनाजिनको यहाँ नमस्कार किया है।

शंका—अनन्तज्ञान, दर्शन, वीर्य, विरति और क्षायिक सम्यक्त्वादिगुणोंसे परिणत जिनको भले ही नमस्कार किया जाये, क्योंकि उनमें देवत्व पाया जाता है किन्तु जिनगुणसे रहित स्थापनाको नमस्कार करना ठीक नहीं है क्योंकि उसमें विघ्न उत्पन्न करनेवाले कर्मोंको विनाश करनेकी शक्ति नहीं है?

समाधान—जिनदेव अपनी वन्दना करनेवाले जीवोंके ही पापनाशक नहीं हैं क्योंकि ऐसी अवस्थामें उनमें वीतरागताके अभावका प्रसंग आता है। न वे सभी जीवोंके पापनाशक हैं क्योंकि ऐसा होनेपर जिननमस्कारको विफलताका प्रसंग आता है। पारिशेषसे जिनपरिणत भाव और

जिनगुणपरिणामको पापनाशक मानना चाहिये क्योंकि उसके बिना कर्मोंका क्षय नहीं होता। वह जिनगुणपरिणाम भावजिनेन्द्रके समान अनन्त ज्ञान, दर्शन, वीर्य, विरति और सम्यक्त्वादि गुणों-के अध्यारोपसे युक्त स्थापनासे भी उत्पन्न होता है, इसी कारण जिनेन्द्रनमस्कारके समान स्थापना-जिननमस्कार भी पापनाशक है।

शंका—नामजिन, द्रव्यजिन और नोआगमउपयुक्तभावजिनको नमस्कार क्यों नहीं करते?

समाधान—क्योंकि उनमें जिनत्वका और स्थापनाजिनत्वका अभाव है।

शङ्का—यदि ऐसा है तो तीन कालोंसे विशेषित मुनि व जिनका शरीर एवं ऊर्जयन्त, चम्पापुर, पावापुर आदिको नमस्कार करना निष्फल होगा?

समाधान—ऐसी शंका नहीं करना चाहिये, क्योंकि उनके सद्भावस्थापना या असद्भाव-स्थापनाके अन्तर्गत होनेसे नमस्कारकी निष्फलताका विरोध है। सद्भावस्थापनानमस्कार और असद्भावस्थापनानमस्कारके फलवान् होनेपर स्थापनाजिनपनेको प्राप्त सबोंको किया गया नमस्कार फलवान होता है। उक्त सूत्रके द्वारा पांचों गुरुओं व उनकी स्थापनाओंको भी नमस्कार किया गया है। वह इस प्रकार है—सकलजिन और देशजिनके भेदसे जिन दो प्रकार हैं। जो घातियाकर्मोंका क्षय कर चुके वे सकलजिन हैं—अरहन्त और सिद्ध। शेष आचार्य, उपाध्याय और साधु तीव्रकषाय, इन्द्रिय एवं मोहको जीत लेनेके कारण देशजिन हैं।

शंका—सकलजिनका नमस्कार पापनाशक भले ही हो; क्योंकि उनमें सब गुण पाये जाते हैं। किन्तु देशजिनोंको किया गया नमस्कार पापनाशक नहीं हो सकता, क्योंकि उनमें वे सब गुण नहीं पाये जाते?

समाधान—नहीं, क्योंकि सकलजिनोंके समान देशजिनोंमें भी तीन रत्न पाये जाते हैं। और तीन रत्नोंके सिवाय सकलजिनमें देवत्वके कारणभूत अन्य कोई गुण नहीं है। इसलिये सकलजिनोंके समान देशजिनोंका नमस्कार भी कर्मोंका क्षयकारक है।

शंका—सकलजिनों और देशजिनोंमें स्थित तीन रत्नोंमें समानता नहीं हो सकती क्योंकि सम्पूर्ण और असम्पूर्ण कैसे समान हो सकते है? अतः सम्पूर्ण रत्नत्रयका काम असम्पूर्ण रत्नत्रय नहीं कर सकते?

समाधान—असमानोंका कार्य असमान ही हो ऐसा कोई नियम नहीं है। सम्पूर्ण अग्निके द्वारा किया जानेवाला दाहकार्य उसका अवयव भी कर सकता है। इसके सिवाय देशजिनोंमें स्थित तीन रत्नोंका सकल जिनोंमें स्थित रत्नत्रयसे कोई भेद नहीं है क्योंकि बाह्य और अभ्यन्तर समस्त अर्थोंसे प्रतिबद्धपनेकी अपेक्षा उनमें समानता पाई जाती है। आविर्भाव और अनाविर्भाव से किया गया भेद उनकी स्वरूपतासे समानताका विनाशक नहीं है क्योंकि प्रकट हुए सूर्यमण्डल और अप्रकट सूर्यमण्डलमें सूर्यमण्डलपनेकी अपेक्षा समानता पाई जाती है।

[धवला, पु. ९, २–१२]

णमो चोद्दसपुव्वियाणं ॥

समस्त श्रुतज्ञानके धारक चौदह पूर्वी कहे जाते हैं। उन चौदहपूर्वी जिनोंको नमस्कार हो॥

शंका—चौदह पूर्वका ही नाम निदश करके किसलिये नमस्कार किया है ?

समाधान—क्योंकि विद्यानुवादकी समाप्तिके समान चौदह पूर्वकी समाप्तिमें भी जिन वचनपर विश्वास देखा जाता है। चौदह पूर्वोंको समाप्त करके रात्रिमें कायोत्सर्गसे स्थित साधुकी प्रभात समयमें भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और कल्पवासी देव पूजा करते हैं।

शंका—जिनवचन होनेसे सभी अंग और पूर्व समान हैं अतः उन सभीका नाम लेकर नमस्कार क्यों नहीं किया ?

समाधान—इस दृष्टिसे समानता होनेपर भी विद्यानुवाद और लोकबिन्दुसारका महत्व है क्योंकि इनको लेकर ही देवपूजा पाई जाती है। तथा चौदह पूर्वका धारक मिथ्यात्वको प्राप्त नहीं होता और उस भवमें असंयमको भी प्राप्त नहीं होता।

शङ्का—ज्ञानसे विशिष्ट जिनोंको पहले नमस्कार क्यों किया ?

समाधान—चारित्रकी अपेक्षा ज्ञानकी प्रधानता बतलानेके लिये ज्ञान विशिष्ट जिनोंको पहले नमस्कार किया है।

शङ्का—चारित्रसे ज्ञानकी प्रधानता क्यों है ?

समाधान—ज्ञानके बिना चारित्र नहीं होता, अतः ज्ञान प्रधान है।

[धवला, पु. ९, सूत्र १४–१५]

क्रियाकर्म

तमादाहीणं पदाहिणं तिक्खुत्तं तियोणदं चदुसिरं बारसावत्तं तं सव्वं किरिया-कम्मं णाम ॥ २८ ॥

आत्माधीन होना आदिके भेदसे क्रियाकर्म छह प्रकार है। प्रथम, क्रियाकर्म करते समय आत्माधीन होना चाहिये; क्योंकि पराधीन भावसे क्रियाकर्म करनेवालेके कर्मक्षय नहीं होता। बल्कि जिनदेवकी आसादना होनेसे कर्मबन्ध होता है। वन्दना करते समय गुरु, जिन और जिन-गृहकी प्रदक्षिणा करके नमस्कार करना प्रदक्षिणा है। प्रदक्षिणा और नमस्कार आदिका तीनवार करना 'तिक्खुत्तं' है। अथवा एक ही दिनमें जिन, गुरु और ऋषियोंकी वन्दना तीन बार की जाती है इसलिये इसे तिक्खुत्तं कहा है। 'ओणद' का अर्थ भूमिमें बैठना है। यह तीन बार किया जाता है। यथा—शुद्ध मन हो, पैर धोकर जिनेन्द्रके दर्शनसे उत्पन्न हुए हर्षसे पुलकित वदन होकर जिनदेवके आगे बैठना यह प्रथम बैठना है। तथा उठकर जिनेन्द्र आदिके सामने विज्ञप्तिकर बैठना यह दूसरा बैठना है। फिर उठकर सामायिक दण्डकके द्वारा आत्मशुद्धि करके, कषायके साथ शरीरका उत्सर्गकरके जिनेन्द्र देवके अनन्त गुणोंका ध्यान करके, चौबीस तीर्थंकरोंकी वन्दना करके फिर जिन, जिनालय और गुरुकी स्तुति करके भूमिमें बैठना यह तीसरा बैठना है। इस प्रकार एक एक क्रियाकर्म करते हुए समय तीन अवनति होती है। सब क्रिया कर्म चतुःशिर होता है। यथा—सामायिकके आदिमें जो जिनेन्द्रदेवको सिर नवाना वह एक सिर है। उसीके अन्तसे सिर नवाना यह दूसरा सिर है। थोस्सामि दण्डकके आदिमें जो सिर नवाना है वह तीसरा सिर है। तथा उसीके अन्तमें जो नमस्कार करना यह चौथा सिर है।

इस प्रकार एक क्रियाकर्म चतुः सिर होता है। इसके सिवाय भी नमस्कार करनेका कोई निषेध नहीं है। अथवा सभी क्रिया कर्म चतुःशिर अर्थात् चतुः प्रधान होता है क्योंकि अरहन्त, सिद्ध, साधु और धर्मको प्रधान करके सब क्रिया कर्मोकी प्रवृत्ति देखी जाती है। सामायिक और 'थोस्सामि' दण्डक के आदि और अन्तमें मन, वचन, कायकी विशुद्धिके परावर्तनके वार बारह होते हैं। इसलिये एक क्रियाकर्म बारह आवर्तसे युक्त कहा है। यह सब क्रिया कर्म है। (धवला, पु. १३, पृ० ८८-९०)

सम्यग्दर्शन

एदेसिं चेव सव्वकम्माणं जावे अंतोकोडाकोडिट्ठिदिं बंधदि तावे पढमसम्मत्तं लभदि ॥ ३ ॥

इन ही सब कर्मोंकी जब अन्तः कोड़ाकोड़ी स्थितिको बांधता है तब यह जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करता है॥ ३ ॥

इस सूत्रके द्वारा क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि, देशनालब्धि और प्रायोग्यलब्धि ये चारों लब्धियां कही गई हैं। पूर्व संचित कर्मोंके मलपटलके अनुभाग स्पर्द्धक जिस समय विशुद्धिके द्वारा प्रति समय अनन्तगुणहीन होते हुए उदीरणाको प्राप्त होते हैं उस समय क्षयोपशमलब्धि होती है। प्रतिसमय अनन्त गुणित हीन क्रमसे उदीरित अनुभाग स्पर्धकोंसे उत्पन्न हुआ, साता आदि शुभकर्मों के बन्धका निमितभूत और असाता आदि अशुभकर्मोंका विरोधी जो जीवका परिणाम है उसे विशुद्धि कहते हैं उसकी प्राप्तिका नाम विशुद्धिलब्धि है। छहों द्रव्य और नौ पदार्थोंके उपदेशका नाम देशना है। उस देशनासे परिणत आचार्य आदिकी लब्धिको और उपदिष्ट अर्थके ग्रहण, धारण और विचारणाकी शक्तिके समागमको देशनालब्धि कहते हैं। सब कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति और उत्कृष्ट अनुभागको घातकर अन्तः कोडाकोडी स्थितिमें और द्विःस्थानीय अनुभागमें स्थित करनेको प्रायोग्य लब्धि कहते हैं, क्योंकि इनके होनेपर करणलब्धिके योग्य भाव पाये जाते हैं।

शंका—सूत्रमें तो केवल काल लब्धिकी ही प्ररूपणाकी गई है उसमें इन शेष लब्धियोंका होना कैसे सम्भव है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि प्रति समय अनन्त गुनहीन अनुभागकी उदीरणाका अनन्त गुणित क्रम द्वारा वर्धमान विशुद्धिका और आचार्यके उपदेशको प्राप्तिका काललब्धिमें होना सम्भव है।

ये चारों लब्धियां भव्य और अभव्य मिथ्यादृष्टि जीवोंमें होती है।

सो पुण पंचिंदिओ सण्णी मिच्छाइट्ठी पज्जत्तओ सव्वविसुद्धो ॥ ४ ॥

वह प्रथमोपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करनेवाला जीव पञ्चेन्द्रिय, संज्ञी मिथ्यादृष्टि पर्याप्त और सर्वविशुद्ध होता है ॥४॥

सम्यक्त्वको प्राप्त करनेवाला जीव एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, अथवा चौन्द्रिय नहीं होता उनमें सम्यक्त्वको ग्रहण करनेके परिणाम नहीं होते। पञ्चेन्द्रियोंमें भी वह असंज्ञी नहीं होता; क्योंकि असंज्ञी जीवोंमें मनके बिना विशिष्ट ज्ञानकी उत्पत्ति नहीं होती। सासादन सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि अथवा वेदक सम्यग्दृष्टि जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्वको नहीं प्राप्त करते क्योंकि इन जीवोंके भी उस रूप परिणमन करनेकी शक्ति नहीं है। उपशमश्रेणीपर चढ़नेवाले वेदक

सम्यग्यदृष्टि जीव उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करते हैं किन्तु उस सम्यक्त्वका नाम प्रथमोपशम सम्यक्त्व नहीं है। उपशमश्रेणीवाला उपशमसम्यक्त्व सम्यक्त्वपूर्वक ही होता है अतः प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करनेवाला जीव मिथ्यादृष्टि ही होना चाहिये। वह देव, मनुष्य, तिर्यञ्च या नारकी भी हो सकता है। स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी या नपुंसकवेदी हो, किन्तु हीयमान कषायवाला होना चाहिये, असंयमी हो, साकार उपयोगसे युक्त हो क्योंकि अनाकार उपयोगकी बाह्य अर्थमें प्रवृत्ति नहीं होती। अशुभ लेश्या हो तो हीयमान होना चाहिये। आयुकर्मको छोड़कर शेष सात कर्मोंकी अन्तः कोड़ाकोड़ी प्रमाण स्थिति सत्त्ववाला हो।

सूत्रमें सर्वविशुद्ध कहा है। अर्थात् प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीवके अधःप्रवृत्तिकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणके भेदसे तीन प्रकारकी विशुद्धियां होती है। उपरितन समयवर्ती परिणाम अधस्तन समयवर्ती परिणामोंसे समान भी होते हैं इसलिये अधःप्रवृत्त नाम सार्थक है। करण नाम परिणामका है। अपूर्व जो करण होते हैं उन्हें अपूर्वकरण कहते हैं अर्थात् अपूर्वकरण कालके विभिन्न समयवर्ती परिणामोंमें समानता नहीं होती, जैसा कि अधःप्रवृत्तमें होती है। इसका काल अन्तर्मुहूर्त है। अनिवृत्तिकरणका काल अन्तर्मुहूर्त है। इसमें एक समयमें एक ही परिणाम होता है अतः यहां एक समयमें अनेक परिणाम न होनेसे जघन्य उत्कृष्ट रूप भेद नहीं है। एक समयमें वर्तमान जीवोंके परिणामोंकी अपेक्षा निवृत्ति या भिन्नता न होनेसे इसे अनिवृत्तिकरण कहते हैं।

एदेसिं चेव सव्वकम्माणं जाधे अंतोकोडाकोडिट्ठिदिं ठवेदि संखेज्जेहि सागरोवमसहस्सेहि ऊणियं ताधे पढमसम्मत्तमुप्पादेदि ॥५॥

जिस समय इन सब ही कर्मोंकी संख्यात हजार सागरोपमसे हीन अंतः कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण स्थितिको स्थापित करता है उस समय यह जीव प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करता है॥ ५ ॥

पढमसम्मत्तमुप्पादेंतो अंतोमुहुत्तमोहट्टेदि ॥६॥

प्रथमोपशमसम्यक्त्वको उत्पन्न करता हुआ सातिशय मिथ्यादृष्टि जीव अन्तर्मुहूर्तकाल तक हटाता है॥ ६ ॥

यह सूत्र अन्तरकरणका कथन करता है। अर्थात् प्रथमोपशमसम्यक्त्वके अभिमुख जीव अनिवृत्तिकरणके कालमें संख्यात भाग जाकर मिथ्यात्व कर्मका अन्तर करता है। अन्तरके लिये उकेरे गये प्रदेशाग्रको उस समय बन्धनेवाले मिथ्यात्व कर्ममें-उसकी आबाधाकाल हीन द्वितीय स्थितिमें और प्रथम स्थितिमें स्थापित करता है किन्तु अन्तर काल स्थितियोंमें नहीं। अन्तरकरणसे नीचेकी स्थितिको प्रथम स्थिति और ऊपरकी स्थितिको द्वितीय स्थिति कहते हैं। इस प्रकार अन्तरकरण किया जाता है उसके समाप्त होनेके समयसे वह जीव उपशामक कहलाता है।

शङ्का—यदि ऐसा है तो उससे पूर्व अर्थात् अधःकरणादिके प्रारम्भसे लेकर अन्तरकरण होने तक उसे उपशामक नहीं कहा जायेगा ?

समाधान—अन्तरकरण होनेसे पूर्व भी वह जीव उपशामक ही है।

ओहट्टेदूण मिच्छत्तं तिण्णि भागं करेदि सम्मत्तं मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं ॥७॥

अन्तरकरण करके मिथ्यात्वकर्मके तीन भाग करता हैं—सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और सम्यक् मिथ्यात्व ।। ७ ।।

इस सूत्रके द्वारा मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिको गलाकर सम्यक्त्वको प्राप्त होनेके प्रथम समयसे लेकर उपरिम कालमें जो कार्य होता है उसका कथन किया है। 'अन्तरकरण करके' इस पदके द्वारा पहलेसे ही स्थिति, अनुभाग और प्रदेशकी अपेक्षा घातको प्राप्त मिथ्यात्वकर्मको अनुभागद्वारा पुनः घात कर उसके तीन भाग करता है यह कहा है। इसका कारण यह है मिथ्यात्वकर्मके अनुभागसे सम्यक्मिथ्यात्वकर्मका अनुभाग अनन्तगुणा होन होता है और सम्यक् मिथ्यात्व कर्मके अनुभागसे सम्यक्त्व प्रकृतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन होता है। ऐसा कषायप्राभृतिके चूर्णि सूत्रोंमें कहा है। तथा उपशमसम्यक्त्व सम्बन्धी कालके भीतर अनन्तानुबन्धी कषायकी विसंयोजनारूप क्रियाके बिना मिथ्यात्वकर्मका स्थितिकाण्डक घात और अनुभागकाण्डक घात नहीं होता; क्योंकि ऐसा उपदेश नहीं है। इसलिये अन्तरकरण करके ऐसा कहनेपर काण्डक घातके विना मिथ्यात्वकर्मके अनुभागको घातकर और उसे सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यक्मिथ्यात्वप्रकृतिके अनुभागरूप आकारसे परिणमाकर प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त होनेके प्रथम समयमें ही मिथ्यात्वरूप एक कर्मके तीन कर्मांश करता है।

दंसणमोहणीयं कम्मं उवसामेदि ।।८।।

मिथ्यात्वके तीन भाग करनेके पश्चात् दर्शनमोहनीय कर्मको उपशमाता है ।। ८ ।।

उवसामेंतो कम्हि उवसामेदि ? चदुसु वि गदीसु उवसामेदि । चदुसु वि गदीसु उवसामेंतो पंचिंदिएसु उवसामेदि, णो एइंदियविगलिंदिएसु । पंचिंदिएसु उवसामेंतो सण्णीसु उवसामेदि, णो असण्णीसु । सण्णीसु उवसामेंतो गब्भोवक्कंतिएसु उवसामेदि, णो सम्मुच्छिमेसु । गब्भोवक्कंतिएसु उवसामेंतो पज्जत्तएसु उवसामेदि, णो अपज्जत्तएसु । पज्जत्तएसु उवसामेंतो संखेज्जवस्साउगेसु वि उवसामेदि असंखेज्जवस्साउगेसु वि ।। ९ ।।

दर्शनमोहनीयकर्मको उपशमाता हुआ जीव कहाँ उपशमाता है ? चारों ही गतियोंमें उपशमाता है। चारों ही गतियोंमें उपशमाता हुआ पञ्चेन्द्रियोंमें उपशमाता है, एकेन्द्रिय विकलेन्द्रियोंमें नहीं। पञ्चेन्द्रियोंमें उपशमाता हुआ संज्ञियोंमें उपशमाता है, असंज्ञियोंमें नहीं। संज्ञियोंमें उपशमाता हुआ गर्भजोंमें उपशमाता है, सम्मूर्छिमोंमें नहीं। गर्भोपक्रान्तिकोंमें उपशमाता हुआ पर्याप्तकोंमें उपशमाता है अपर्याप्तकोंमें नहीं। पर्याप्तकोंमें उपशमाता हुआ संख्यातवर्षकी आयुवाले जीवोंमें भी उपशमाता है और असंख्यातवर्षकी आयुवाले जीवोंमें भी उपशमाता है ।। ९ ।।

दंसणमोहणीयं कम्मं खेवदुमाढवेंतो कम्हि आढवेदि, अड्ढाइज्जेसु दीवसमुद्देसु पण्णारसकम्मभूमीसु जम्हि जिणा केवली तित्थयरा तम्हि आढवेदि ।। ११ ।।

दर्शनमोहनीयकर्मका क्षपण करनेके लिये आरम्भ करता हुआ यह जीव कहाँ आरम्भ करता है ? अढाई द्वीप समुद्रोंमें स्थित पन्द्रह कर्मभूमियोंमें जहाँ जिस कालमें जिन, केवली और तीर्थंकर होते हैं वहाँ उस कालमें आरम्भ करता है ।। ११ ।।

शंका—'पन्द्रह कर्मभूमियोंमें' ऐसा सामान्य पद कहनेपर कर्मभूमियोंमें स्थित देव, मनुष्य, तिर्यञ्च इन सभीका ग्रहण प्राप्त होता है ?

समाधान—नहीं प्राप्त होता, क्योंकि कर्मभूमिमें उत्पन्न हुए मनुष्योंकी कर्मभूमि संज्ञा है।

शंका—तो भी तिर्यञ्चोंका ग्रहण प्राप्त होता है क्योंकि उनकी भी कर्मभूमिमें उत्पत्ति होती है।

समाधान—नहीं, क्योंकि जिनकी वहींपर उत्पत्ति होती है, अन्यत्र उत्पत्ति संभव नहीं है उन ही मनुष्योंके लिये 'पन्द्रह कर्मभूमि' व्यपदेश किया गया है न कि तिर्यञ्चोंके लिये क्योंकि तिर्यञ्च तो स्वयंप्रभपर्वतके पर भागमें भी उत्पन्न होते हैं।

शंका—मनुष्योंमें उत्पन्न हुए जीव समुद्रोंमें दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भ कैसे करते हैं?

समाधान—विद्या आदिके वश समुद्रोंमें आये हुए जीवोंके दर्शनमोहका क्षपण होना सम्भव है।

दुषमा (दुषम दुषमा) सुषमासुषमा, सुषमा, और सुषमादुषमाकालमें उत्पन्न हुए मनुष्योंके दर्शनमोहके क्षपणका निषेध करनेके लिये 'जहाँ जिन होते हैं' ऐसा वचन कहा है। जिस कालमें जिन होते हैं उसकालमें ही दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रस्थापक होता है।

देशजिनोंका निषेध करनेके लिये सूत्रमें 'केवली' पदका ग्रहण किया है। जहाँ केवलीजिन होते हैं उसीकालमें दर्शनमोहकी क्षपणा होती है, अन्यत्र नहीं। तीर्थंकरनामकर्मके उदयसे रहित सामान्यकेवलियोंके निषेधके लिये सूत्रमें तीर्थंकर पदका ग्रहण किया है। अर्थात् तीर्थंकरके ही पादमूलमें दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भ होता है अन्यत्र नहीं। अथवा 'जिन' कहनेसे चतुर्दश-पूर्वधारियोंका ग्रहण करना चाहिये, और 'केवली' ऐसा कहनेसे तीर्थंकरनामकर्मके उदयसे रहित केवलज्ञानियोंका ग्रहण करना चाहिये। और 'तीर्थंकर' कहनेसे तीर्थंकरनामकर्मके उदयसे उत्पन्न अतिशयसहित तीर्थंकरकेवलियोंका ग्रहण करना चाहिये। इन तीनोंके पादमूलमें कर्मभूमिज मनुष्य दर्शनमोहके क्षपणका प्रारम्भ करता है।

यहाँ 'जिन' शब्दको दुबारा ग्रहण करके 'जिन दर्शनमोहनीयके क्षपणका प्रारम्भ करते हैं' ऐसा कहना चाहिये। अन्यथा तीसरी पृथिवीसे निकले हुए कृष्ण आदिके तीर्थंकरपना नहीं बन सकता। ऐसा किन्हीं आचार्योंका व्याख्यान है। इस व्याख्यानके अभिप्रायसे दुषमा, अतिदुषमा, सुषमासुषमा, और सुषमाकालोंमें उत्पन्न हुए जीवोंके ही दर्शनमोहनीयकी क्षपणा नहीं होती, शेष दोनों कालोंमें उत्पन्न हुए जीवोंके दर्शनमोहनीयकी क्षपणा होती है। इसका कारण यह है कि एकेन्द्रिय पर्यायसे आकर (इस अवसर्पिणीके) तीसरे कालमें उत्पन्न हुए वर्धन कुमार आदिके दर्शनमोहकी क्षपणा देखी जाती है। यहाँ यही व्याख्यान प्रधानरूपसे ग्रहण करना चाहिये॥

णिट्ठवओ पुण चदुसु वि गदीसु णिट्ठवेदि ॥१२॥

दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका निष्ठापक तो चारों ही गतियोंमें उसका निष्ठापन करता है॥ १२॥

कृतकृत्य वेदक होनेके प्रथम समयसे लेकर ऊपरके समयमें दर्शनमोहकी क्षपणा करनेवाला जीव निष्ठापक कहलाता है। दर्शनमोहकी क्षपणाका प्रारम्भ करनेवाला जीव कृतकृत्य वेदक होनेके पश्चात् आयुबन्धके वश चारों भी गतियोंमें उत्पन्न होकर दर्शनमोहकी क्षपणाको पूर्ण करता है। [षट्० धव०, पु० ६, पृ० २०३ आदि]

सम्यक्त्वके बाह्य कारण

नारकी मिथ्यादृष्टि तीन कारणोंसे सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं—जातिस्मरण, धर्मश्रवण और वेदनाभिभव।

शंका—सभी नारकियोंको जातिस्मरण होता है क्योंकि विभंग ज्ञानसे सभी अपने पूर्वभवको जान लेते हैं अतः सभीको सम्यक्त्व होना चाहिये ?

समाधान—सामान्य भवस्मरण सम्यक्त्वका कारण नहीं है किन्तु धर्मबुद्धिसे पूर्वभवमें किये गये कार्योंकी विफलताके दर्शनसे ही ऐसा संभव है। जिन नारकियोंके तीव्र मिथ्यात्वका उदय है उनको पूर्वभवका स्मरण होनेपर भी उक्त प्रकारका उपयोग नहीं होता।

शङ्का—वेदनाभिभव भी सभी नारकी करते हैं यदि वह सम्यक्त्वकी उत्पत्तिमें कारण है तो सभीको सम्यक्त्व होना चाहिये ?

समाधान—जिन जीवोंके ऐसा उपयोग होता है कि अमुक वेदना मिथ्यात्व या असंयमके कारण हुई उन्हीं जीवोंकी वेदना सम्यक्त्वकी उत्पत्तिमें कारण होती है।

नीचेकी चार पृथिवीयोंके नारकी जातिस्मरण और वेदनाभिभवसे ही सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं।

तिर्यञ्च मिथ्यादृष्टि जातिस्मरण, धर्मश्रवण और जिनबिम्बदर्शनसे सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं। मिथ्यादृष्टि मनुष्य भी इन्हीं तीन कारणोंसे सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं।

शङ्का—जिन महिमाको देखकर भी कितने ही मनुष्य प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं ?

समाधान—जिनमहिमदर्शनका अन्तर्भाव जिनबिम्बदर्शनमें हो जाता है। अथवा, मिथ्यादृष्टि मनुष्योंमें आकाशमें गमन करनेकी शक्ति न होनेसे उनके लिये देवोंके द्वारा किये जानेवाले नन्दीश्वर द्वीपवर्ती जिनेन्द्र प्रतिमाओंके महोत्सवको देखना संभव नहीं है। किन्तु मेरुपर्वतपर किये जानेवाले महोत्सवोंको विद्याधर मिथ्यादृष्टि देखते हैं इसलिये उपर्युक्त अर्थ नहीं करना चाहिये ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं। अतः पूर्वोक्त अर्थ ही ग्रहण करना योग्य है। उर्जयन्त पर्वत, चम्पापुर व पावापुर आदिके दर्शनका भी जिन बिम्बदर्शनमें ग्रहण कर लेना चाहिये क्योंकि उक्त प्रदेशवर्ती जिनबिम्बोंके दर्शन तथा जिनभगवानके मोक्षगमनके कथनके बिना प्रथम सम्यक्त्वका ग्रहण नहीं हो सकता।

तत्त्वार्थसूत्रमें नैसर्गिक प्रथम सम्यक्त्वका कथन किया है उसका भी पूर्वोक्त कारणोंसे उत्पन्न हुए सम्यक्त्वमें ही ग्रहण कर लेना चाहिये क्योंकि जातिस्मरण और जिन बिम्बदर्शनके बिना नैसर्गिक प्रथम सम्यक्त्व नहीं होता॥

मिथ्यादृष्टि देव चार कारणोंसे प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं—जातिस्मरण, धर्मस्मरण, जिनमहिमदर्शन और देवर्द्धिदर्शन। जिनबिम्बदर्शनका अन्तर्भाव जिन महिमदर्शनमें हो जाता है।

शंका—स्वर्गावतरण, जन्माभिषेक और तपकल्याणकरूप जिनमहिमाएँ जिनबिम्बके बिना ही होती हैं, अतः जिनमहिमादर्शन जिनबिम्बदर्शनका अविनाभावी नहीं है ?

समाधान—उक्त महिमाओंमें भी भावि जिनबिम्बकादर्शन है। अथवा, इन महिमाओंमें

उत्पन्न होनेवाला प्रथम सम्यक्त्व जिनबिम्बदर्शननिमित्तक नहीं है किन्तु जिनगुणश्रवण निमित्तक है।

शंका—देवर्द्धिदर्शनका अन्तर्भाव जाति स्मरणमें क्यों नहीं होता ?

समाधान—नहीं होता; क्योंकि अपनी अणिमादिक ऋद्धियोंको देखकर जब यह विचार उत्पन्न होता है कि ये ऋद्धियां जिनभगवान द्वारा उपदिष्ट धर्मके अनुष्ठानसे उत्पन्न हुई हैं तब प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्ति जातिस्मरण निमित्तक होती है। किन्तु जब सौधर्म ईन्द्र आदिकी ऋद्धियोंको देखकर यह ज्ञान उत्पन्न होता है कि वे ऋद्धियां सम्यग्दर्शनसे युक्त संयमके फलसे प्राप्त हुई हैं किन्तु मैं सम्यक्त्वसे रहित द्रव्यसंयमके फलसे नीच देवोंमें उत्पन्न हुआ हूँ तब प्रथम सम्यक्त्वका ग्रहण देवर्द्धिदर्शन निमित्तक होता है। इससे ये दोनों कारण एक नहीं हो सकते तथा जातिस्मरण उत्पन्न होनेके प्रथम समयसे लेकर अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर होता है किन्तु देवर्द्धिदर्शन उत्पन्न होनेके अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् होता है। अतः दोनोंमें एकत्व नहीं है।

इस प्रकार भवनवासी देवोंसे लगाकर शतार-सहस्रार पर्यन्त देव प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं। आनतादिचार कल्पोंके देव तीन कारणोंसे प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं-जातिस्मरण, धर्मश्रवण और जिनमहिमादर्शन।

शंका—यहां देवर्द्धिदर्शनको क्यों नहीं कहा ?

समाधान—आनतादि कल्पोंमें महर्धिसे युक्त ऊपरके देवोंका आगमन नहीं होता। और उन्हीं कल्पोंमें स्थित देवोंको महर्द्धिका दर्शन प्रथम सम्यक्त्वको उत्पत्तिमें निमित्त नहीं होता क्योंकि उसी ऋद्धिको बार बार देखनेसे विस्मय नहीं होता। अथवा उक्त कल्पोंमें शुक्ललेश्याका सद्भाव होनेसे महर्द्धिके दर्शनसे कोई संक्लेशभाव नहीं होता।

नौ ग्रैवेयक विमानवासी देव मिथ्यादृष्टि दो कारणोंसे सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं—जातिस्मरणसे और धर्मश्रवणसे। इनमें महर्द्धिदर्शन नहीं है क्योंकि यहाँ ऊपरके देवोंका आगमन नहीं है तथा जिनमहिमदर्शन भी नहीं है क्योंकि ग्रैवेयकवासी देव नन्दीश्वर आदि महोत्सव देखने नहीं जाते।

शंका—ग्रैवेयकवासी देव अपने विमानोंमें रहते हुए ही अवधिज्ञानसे जिनमहिमाको देखते हैं ?

समाधान—वीतराग होनेसे उन्हें जिनमहिमा देखकर विस्मय नहीं होता।

शङ्का—इनमें धर्मश्रवण कैसे संभव है ?

समाधान—इनमें परस्परमें संलाप होता है, उससे अहमिन्द्रत्वमें कोई बाधा नहीं आती।

अनुदिशोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक सभी देव नियमसे सम्यग्दृष्टि होते हैं।

[धवला पु. ६, पृ. ४२० आदि]

शङ्का—अनुदिश आदि विमानोंमें मिथ्यादृष्टि आदि जीवोंका अभाव होते हुए उपशम सम्यग्दृष्टियोंका होना कैसे संभव है ? क्योंकि कारणके अभावमें कार्यकी उत्पत्तिका विरोध है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है क्योंकि उपशम सम्यक्त्वके साथ उपशमश्रेणीपर चढ़ते और उतरते हुए मरणकर देवोंमें उत्पन्न होनेवाले संयतोंके उपशम सम्यक्त्व पाया जाता है।

सम्यग्दृष्टि जीवोंकी गति आगति

असंयतसम्यग्दृष्टि संख्यातवर्षायुष्क तिर्यञ्च जीव मरकर एकमात्र देवगतिमें जाते हैं क्योंकि देवायुको छोड़कर अन्य आयुओंका बन्ध उनके नहीं होता। तथा वे सौधर्म-ऐशानसे लेकर आरण-अच्युतकल्प तक ही जन्म लेते हैं।

शंका—संख्यातवर्षायुष्क असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यञ्च मरकर आरण-अच्युत कल्पसे ऊपर क्यों नहीं जाते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सम्यग्दृष्टि तिर्यञ्चोंके संयमका अभाव होता है और संयमके बिना आरण-अच्युत कल्पसे ऊपर जन्म नहीं होता। जो मिथ्यादृष्टि आरण-अच्युत कल्पसे ऊपर उत्पन्न होते हैं उनके भी भावसंयमरहित द्रव्य संयम होता है।

संख्यातवर्षायुष्क सम्यग्दृष्टि मनुष्य एकमात्र देवगतिमें ही जाते हैं।

शंका—यहाँ 'संख्यातवर्षायुष्क सम्यग्दृष्टि मनुष्य चारों गतियोंको जाते हैं' ऐसा कहना चाहिये; क्योंकि सम्यग्दृष्टी मनुष्योंका चारों गतियोंमें गमन पाया जाता है। वह इस प्रकार है—सम्यग्दृष्टी मनुष्य देवगतिमें तो जाते ही हैं यह कथन तो सूत्रमें ही किया है। और सम्यग्दृष्टी मनुष्य नरकगतिको भी जाते हैं क्योंकि सूत्रमें ही कहा है कि नारकी सम्यक्त्वके साथ नरकमें जाकर नियमसे सम्यक्त्व सहित वहाँसे निकलते हैं। तिर्यञ्च सम्यग्दृष्टी तो नरकमें जाते नहीं हैं। क्योंकि उनमें दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका अभाव होनेसे क्षायिक सम्यक्त्वका अभाव है। और न वेदक सम्यग्दृष्टी तिर्यञ्च नरकमें जाते हैं क्योंकि उनके मरणकालमें नरकायुकर्मकी सत्ता नहीं होती। देव और नारकी सम्यग्दृष्टी मरकर नरकमें जाते नहीं हैं इसलिये पारिशेष न्यायसे सम्यग्दृष्टि मनुष्य ही नरकगतिको जाते हैं यह बात सिद्ध हुई। सम्यग्दृष्टी मनुष्य मरकर तिर्यञ्चगतिमें भी जाते हैं क्योंकि तिर्यञ्चगतिमें सम्यक्त्व सहित जानेवाले जीव नियमसे सम्यक्त्वसहित ही वहाँसे निकलते हैं ऐसा जिनभगवानका उपदेश है। तिर्यञ्चोंमें देव, नारकी और तिर्यञ्च सम्यग्दृष्टी जीव तो उत्पन्न होते नहीं क्योंकि ऐसा भगवानका उपदेश नहीं पाया जाता। इसलिये तिर्यञ्चोंमें सम्यग्दृष्टी मनुष्य ही उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार मनुष्योंमें मनुष्य सम्यग्दृष्टी जीवोंकी उत्पत्ति साध लेनी चाहिये ?

समाधान—इस शंकाका परिहार यह है कि जिन मिथ्यादृष्टियोंने देवायुको छोड़ अन्य आयु बाँधकर पश्चात् सम्यक्त्व ग्रहण किया है उनका यहाँ ग्रहण नहीं किया है इसीलिये ऐसा कहा गया है कि सम्यग्दृष्टि मनुष्य एकमात्र देवगतिको ही जाते हैं।

शंका—देवगतिको छोड़ अन्य गतियोंकी आयु बाँधकर जिन मनुष्योंने पश्चात् सम्यक्त्व ग्रहण किया है उनका यहाँ ग्रहण क्यों नहीं किया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि पुनः मिथ्यात्वमें जाकर अपनी बाँधी हुई आयुके वशसे उत्पन्न होने वाले उन जीवोंके सम्यक्त्वका अभाव पाया जाता है।

शंका—सम्यक्त्वको ग्रहण करके और दर्शनमोहनीयका क्षपण करके नरकादिकमें उत्पन्न होने वाले भी सम्यग्दृष्टि होते हैं, उनका यहाँ क्यों नहीं ग्रहण किया ?

समाधान—सम्यक्त्वका माहात्म्य दिखलाने और पूर्वमें बाँधे हुए आयुकर्मका माहात्म्य दिखलानेके लिये उक्त जीवोंका यहाँ ग्रहण नहीं किया है।

सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देव वहाँसे च्युत होकर एक मनुष्यगतिमें ही आते हैं।

शंका—सर्वार्थसिद्धिसे च्युत होकर मनुष्य होनेवाले वासुदेव क्यों नहीं होते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि वासुदेव होनेमें उससे पूर्व मिथ्यात्वके अविनाभावी निदानका होना आवश्यक है।

शंका—उनके नियमसे अवधिज्ञान कैसे होता है ?

समाधान—सर्वार्थसिद्धिवालोंके अननुगामी, हीयमान और प्रतिपाति अवधिज्ञान नहीं होता अतः मनुष्योंमें उत्पन्न होनेपर भी अवधिज्ञान जन्मसे होता है।

[धवला, पु० ६, पृ० ४७४-५०१]

द्वितीयोपशमसम्यक्त्वमें मरण

द्वितीयोपशमसम्यक्त्वकालके भीतर जीव उपशमश्रेणिसे गिरकर असंयमको भी प्राप्त हो सकता है, संयमासंयमको भी प्राप्त हो सकता है और छह आवली काल शेष रहनेपर सासादनको भी प्राप्त हो सकता है। परन्तु सासादनको प्राप्त होकर यदि मरता है तो नरकगति, तिर्यञ्चगति अथवा मनुष्यगतिको प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं होता, नियमसे देवगतिको ही प्राप्त होता है। यह कषायप्राभृतचूर्णिसूत्रका अभिप्राय है। किन्तु भगवान भूतबलिके उपदेशानुसार उपशमश्रेणिसे उतरता हुआ जीव सासादनगुणस्थानको प्राप्त नहीं करता। तथा नरकायु, तिर्यञ्चायु और मनुष्यायु इन तीन आयुमेंसे पूर्वमें बाँधी गई एक भी आयुसे कषायोंको उपशमानेमें समर्थ नहीं होता। इसी कारणसे नरक, तिर्यञ्च और मनुष्यगतिमें नहीं जाता।

[धवला, पु. ६, पृ० ३३१]

सासादनसम्यक्त्व

सासणसम्माइट्ठी णाम कधं भवदि ? ॥७६॥ पारिणामिएण भावेण ॥ ७७ ॥

जीव सासादनसम्यग्दृष्टी कैसे होता है ? पारिणामिकभावसे जीव सासादनसम्यग्दृष्टी होता है।

यह सासादन परिणाम क्षायिक नहीं होता; क्योंकि दर्शनमोहनीयके क्षयसे उसको उत्पत्ति नहीं होती। सासादन परिणाम क्षायोपशमिक भी नहीं होता, क्योंकि दर्शनमोहनीयके देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे उसकी उत्पत्ति नहीं होती। सासादन परिणाम औपशमिक भी नहीं है क्योंकि दर्शनमोहनीयके उपशमसे उसकी उत्पत्ति नहीं होती। सासादन परिणाम औदयिक भी नहीं है क्योंकि दर्शनमोहनीयके उदयसे उसकी उत्पत्ति नहीं होती। अतएव पारिशेष न्यायसे पारिणामिक भावसे ही सासादन परिणाम होता है।

शङ्का—अनन्तानुबन्धीकषायोंके उदयसे सासादन गुणस्थान पाया जाता है अतः उसे औदयिक भाव क्यों नहीं कहते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि दर्शनमोहनीयके उदय, उपशम, क्षय व क्षयोपशमके बिना उत्पन्न होनेसे सासादनगुणस्थानका कारण चारित्रमोहनीयकर्म ही हो सकता है और चारित्रमोहनीयको दर्शनमोहनीय माननेमें विरोध है।

शंका—अनन्तानुबन्धी तो दर्शन और चारित्र उभयमोहनीय है ?

समाधान—भले ही अनन्तानुबन्धी उभयमोहनीय हो किन्तु यहाँ वैसी विवक्षा नहीं है। अनन्तानुबन्धीचतुष्क चारित्रमोहनीय ही है इसी विवक्षासे सासादनगुणस्थानको पारिणामिक कहा है। [धवला, पु० ७, पृ० १०९-११०]

सासणसम्मादिट्ठि त्ति को भावो, पारिणामिओ भावो ॥ ३ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है ? पारिणामिक भाव है ॥ ३ ॥

शंका—'भाव पारिणामिक है' यह बात घटित नहीं होती; क्योंकि दूसरोंसे नहीं उत्पन्न होनेवाले परिणामका अस्तित्व नहीं है। और यदि अन्यसे उत्पत्ति मानी जाती है तो वह पारिणामिक नहीं रह सकता है क्योंकि निष्कारण वस्तुके सकारणत्वका विरोध है ?

समाधान—जो कर्मोंके उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशमके बिना अन्य कारणोंसे उत्पन्न हुआ परिणाम है वह पारिणामिक कहा जाता है। निष्कारणभावको पारिणामिक नहीं कहते; क्योंकि कारणके बिना उत्पन्न होनेवाला परिणाम नहीं है।

शंका—सत्त्व, प्रमेयत्व आदि भाव कारणके बिना भी होते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि विशेषसत्त्व आदिके स्वरूपसे नहीं परिणत होनेवाले सत्त्वादि सामान्य नहीं पाये जाते।

शङ्का—सासादन सम्यग्दृष्टिपना भी सम्यक्त्व और चारित्र इन दोनोंके विरोधी अनन्तानुबन्धीचतुष्कके बिना उदयके नहीं होता इसलिये उसे औदयिक क्यों नहीं मानते ?

समाधान—यह कहना सत्य है परन्तु उस प्रकारकी विवक्षा नहीं है, क्योंकि आदिके चार गुणस्थान सम्बन्धी भावोंकी प्ररूपणामें दर्शनमोहनीय कर्मके सिवाय शेष कर्मोंके उदयकी विवक्षाका अभाव है। इसलिये विवक्षित दर्शनमोहनीय कर्मके उदयसे, उपशमसे, क्षयसे अथवा क्षयोपशमसे न होनेसे सासादनसम्यक्त्व निष्कारण है और इसीलिये वह पारिणामिक है।

शंका—इस न्यायसे तो सभी भाव पारिणामिक ठहरेंगे ?

समाधान—यदि उक्त न्यायके अनुसार सभी भावोंके पारिणामिक होनेका प्रसंग आता है तो आवे, उसमें कोई दोष नहीं है।

शंका—यदि ऐसा है तो अन्य भावोंमें पारिणामिकपनेका व्यवहार क्यों नहीं किया जाता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सासादनसम्यक्त्वको छोड़कर विवक्षित कर्मसे नहीं उत्पन्न होनेवाला अन्य कोई भाव नहीं पाया जाता। [धवला, पु. ५, पृ. १९६-१९७]

शङ्का—यदि एकेन्द्रियोंमें सासादनसम्यग्दृष्टी जीव उत्पन्न होते हैं तो एकेन्द्रियोंमें दो गुण-स्थान होना चाहिये ? यदि कहा जाय कि एकेन्द्रियोंमें दो गुणस्थान होते हैं तो होने दो, सो भी नहीं बन सकता, क्योंकि द्रव्यानुयोगद्वारमें एकेन्द्रिय सासादनगुणस्थानवर्ती जीवोंका प्रमाण नहीं बतलाया ?

समाधान—चूँकि एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेवाले सासादनसम्यग्दृष्टी जीव अपनी आयुके अन्तिम समयमें सासादनपरिणामसहित होकर उससे ऊपरके समयमें मिथ्यात्वको प्राप्त हो जाते हैं इसलिये एकेन्द्रियोंमें दो गुणस्थान नहीं होते। [धवला पु. ६, पृ. ४७१]

शंका—यदि सासादनसम्यग्दृष्टी जोव एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होते हैं तो उनमें दो गुणस्थान प्राप्त होते हैं। किन्तु ऐसा नहीं है क्योंकि सत्प्ररूपणाअनुयोगद्वारमें एकेन्द्रियोंमें एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान हो बतलाया है तथा द्रव्यानुयोगद्वारमें भी उनमें एक हो गुणस्थानके द्रव्यका प्रमाण कहा है ?

समाधान—कौन कहता है कि सासादनसम्यग्दृष्टी जीव एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होते हैं किन्तु वे उस गुणस्थानमें मारणान्तिक समुद्घात करते हैं ऐसा हमारा निश्चय है न कि वे उस गुणस्थानमें उत्पन्न होते हैं क्योंकि उनमें आयुष्यके छिन्न होनेके समय सासादन गुणस्थान नहीं पाया जाता।

शंका—जहाँ पर सासादनसम्यग्दृष्टियोंका उत्पाद नहीं है वहाँ पर भी यदि सासादन सम्यग्दृष्टि जोव मारणान्तिक समुद्घात करते हैं तो सातवीं पृथिवीके नारकियोंको सासादनगुण-स्थानके साथ पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चोंमें मारणान्तिक समुद्घात करना चाहिये, क्योंकि सासादन गुण-स्थानकी अपेक्षा दोनोंमें कोई भेद नहीं है ?

समाधान—यह दोष नहीं है क्योंकि देव और नारकी दोनोंको भिन्न जाति है। सातवीं पृथिवीके नारकी गर्भजन्मवाले पञ्चेन्द्रियोंमें ही उपजनेके स्वभावाले हैं और देव पञ्चेन्द्रियोंमें तथा एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होने रूप स्वभाववाले हैं इसीलिये दोनों समानजातीय नहीं हैं। अतः सातवीं पृथिवीके नारकी सासादनगुणस्थानके साथ देवोंके समान मारणान्तिक समुद्घात नहीं करते।

शंका—सासादनसम्यग्दृष्टि देव जब एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते ही हैं तो फिर सर्वलोकवर्ती एकेन्द्रियोंमें क्यों नहीं मारणान्तिक समुद्घात करते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उनके सासादनगुणस्थानकी प्रधानतासे लोकनालीके बाहर उत्पन्न होनेके स्वभावका अभाव है और लोकनालीके भीतर मारणान्तिकसमुद्घातको करते हुए भी भवन-वासी लोकके मूलभागसे ऊपर ही देव या तिर्यञ्च सासादनसम्यग्दृष्टि मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, नीचे नहीं, इसका कारण है सासादन गुणस्थानकी प्रधानता।

[धवला, पु० ४, पृ० १६३]

शंका—तिर्यञ्च सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सुमेरुपर्वतके मूलभागसे नीचे मारणान्तिक-समुद्घात क्यों नहीं करते ?

प्रतिशंका—यदि ऐसो शंका करते हैं तो बताइये कि तिर्यञ्च सासादनसम्यग्दृष्टो नारकियोंमें क्यों नहीं उत्पन्न होते ?

समाधान—वे नारकियोंमें स्वभावसे ही उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्रतिसमाधान—यदि ऐसा है तो सुमेरुपर्वतके मूलभागसे नीचे भी वे स्वभावसे ही मारणान्तिक समुद्घात नहीं करते ऐसा क्यों नहीं स्वीकार कर लेते ?

शंका—यदि सासादन सम्यग्दृष्टी जीव मेरुतलसे नीचे मारणान्तिक समुद्घात नहीं करते हैं तो मेरुतलसे नीचे स्थित भवनवासी देवोंमें उनकी उत्पत्ति भी प्राप्त नहीं होती।

समाधान—यह कोई दोष नहीं है क्योंकि मेरुतलसे नीचे सासादन सम्यग्दृष्टियोंका मारणान्तिक समुद्धात नहीं होता, यह सामान्य कथन है। किन्तु विशेषरूपसे कथन करनेपर वे नारकियोंमें और मेरुतलसे अधोभागवर्ती एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात नहीं करते हैं, यही परमार्थ है।

[पु. ४, पृ. २०४]

सम्यक्मिथ्यात्व गुणस्थान

सम्मामिच्छादिट्ठि त्ति को भावो, खओवसमिओ भावो ॥४॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि यह कौन-सा भाव है ? क्षायोपशमिक भाव है ॥ ४ ॥

शङ्का—प्रतिबन्धी कर्मका उदय रहनेपर भी जो जीवके गुणका अंश पाया जाता है वह क्षायोपशमिक कहलाता है क्योंकि गुणोंको सम्पूर्ण रूपसे घातनेकी शक्तिके अभावको क्षय कहते हैं। क्षयरूप जो उपशम वह क्षयोपशम कहलाता है। उस क्षयोपशमके होनेपर उत्पन्न होनेवाला भाव क्षायोपशमिक है। किन्तु सम्यक्मिथ्यात्व कर्मका उदय रहते हुए सम्यक्त्वकी कणिका भी शेष नहीं रहती। अन्यथा सम्यक्मिथ्यात्वका सर्वघातीपना नहीं बनता। इसलिये सम्यक्मिथ्यात्व क्षायोपशमिक है यह घटित नहीं होता ?

समाधान—उक्त शंकाका परिहार करते हैं। सम्यक्मिथ्यात्वके उदय होते हुए श्रद्धानाश्रद्धानात्मक मिश्रित जीवभाव उत्पन्न होता है। उसमें जो श्रद्धानांश है वह सम्यक्त्वका अवयव है। उसे सम्यक्मिथ्यात्वका उदय नष्ट नहीं करता इसलिये सम्यक्मिथ्यात्व क्षायोपशमिक है।

शंका—अश्रद्धान भागके विना केवल श्रद्धान भागको ही सम्यक्मिथ्यात्व संज्ञा नहीं है। इसलिये सम्यक्मिथ्यात्व क्षायोपशमिक नहीं है ?

समाधान—उक्त प्रकारकी विवक्षा होनेपर सम्यक्मिथ्यात्व क्षायोपशमिक भले ही न हो, किन्तु अवयवीके निराकरण और अवयवके अनिराकरणकी अपेक्षा वह क्षायोपशमिक है। सम्यक्मिथ्यात्वद्रव्यकर्म भी सर्वघाती ही होवे; क्योंकि जात्यन्तरभूत सम्यक्मिथ्यात्वको सम्यक्त्वपनेका अभाव है। किन्तु श्रद्धानभाग अश्रद्धानभाग नहीं होता; क्योंकि श्रद्धान और अश्रद्धानके एक होनेका विरोध है। और श्रद्धानभाग कर्मके उदयसे उत्पन्न हुआ नहीं है क्योंकि उसमें विपरीतताका अभाव है तथा उसमें सम्यक्मिथ्यात्व संज्ञाका भी अभाव नहीं है क्योंकि समुदायोंमें प्रवृत्त हुए शब्दोंकी उनके एक देशमें भी प्रवृत्ति देखी जाती है। इसलिये यह सिद्ध हुआ कि सम्यक्मिथ्यात्व क्षायोपशमिक है।

मिथ्यात्वके सर्वघाती स्पर्द्धकोंके उदयक्षयसे उन्हींके सदवस्था रूप उपशमसे, सम्यक्प्रकृतिके देशघाति स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे अथवा अनुदयरूप उपशमसे और सम्यक्मिथ्यात्व कर्मके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयसे सम्यक्मिथ्यात्वभाव होता है। इस प्रकार कुछ आचार्य सम्यक्मिथ्यात्वके क्षायोपशमिकपनेका कथन करते हैं। किन्तु वह घटित नहीं होता क्योंकि

इस प्रकारसे तो मिथ्यात्वभावके भी क्षायोपशमिकपनेका प्रसंग प्राप्त होगा; क्योंकि सम्यक्मिथ्यात्व-के सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे और सम्यक्त्वदेशघाती स्पर्धकों-के उदयक्षयसे, उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे अथवा अनुदयरूप उपशमसे तथा मिथ्यात्वके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयसे मिथ्यात्व भावकी उत्पत्ति पाई जाती है। [धवला, पु. ५, पृ. १९८-९९]

शंका—अप्रमत्तसंयत जीव सम्यक्मिथ्यात्व गुणस्थानमें क्यों नहीं जाता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि यदि अप्रमत्तसंयत जीवके संक्लेशकी वृद्धि हो तो प्रमत्तसंयत गुण-स्थानको और विशुद्धिकी वृद्धि हो तो अपूर्वकरण गुणस्थानको छोड़कर दूसरे गुणस्थानोंमें नहीं जाता। यदि अप्रमत्तसंयतका मरण भी हो तो असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानको छोड़कर दूसरे गुण-स्थानोंमें नहीं जाता।

शङ्का—सम्यक्मिथ्यादृष्टि जीव अपना काल पूरा करके पीछे संयमको अथवा संयमासंयम-को क्यों नहीं प्राप्त होता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उस सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवका मिथ्यादृष्टि गुणस्थान अथवा असं-यतसम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानको छोड़कर दूसरे गुणस्थानोंमें गमन नहीं होता।

[धवला, पु. ४, पृ. ३६३]

उपशमकगुणस्थानोंमें भाव

चदुण्हमुवसमा त्ति को भावो, ओवसमिओ भावो ॥ ८ ॥

अपूर्वकरण आदि चार गुणस्थानवर्ती उपशामकोंमें कौन भाव है? औपशमिक भाव है ॥ ८ ॥

शंका—समस्त कषाय और नोकषायोका उपशम करनेसे उपशान्तकषायवीतराग-छद्मस्थ जीवके औपशमिक भाव रहो, किन्तु अपूर्वकरणादि शेष गुणस्थानवर्ती जीवोंके औपशमिक भाव नहीं माना जा सकता; क्योंकि उन गुणस्थानोंमें समस्त मोहनीयके उपशमका अभाव है?

समाधान—नहीं, क्योंकि कुछ कषायोंका उपशमन किये जानेसे अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्म-साम्पराय गुणस्थानोंमें उपशम भावका अस्तित्व माननेमें कोई विरोध नहीं है।

शंका—किन्तु अपूर्वकरणमें तो किसी भी कषायका उपशम नहीं होता, वहाँ कैसे औपशमिक भाव माना जा सकता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि अपूर्वकरण परिणामोंके द्वारा प्रतिसमय असंख्यात गुणश्रेणिरूपसे कर्मोंकी निर्जरा करनेवाले, तथा स्थिति और अनुभाग काण्डकोंका घात करके क्रमसे कषायोंकी स्थिति और अनुभागको असंख्यात और अनन्तगुणा हीन करनेवाले तथा उपशमन क्रियाका प्रारम्भ करनेवाले अपूर्वकरणसंयतके औपशमिक भाव माननेमें कोई विरोध नहीं है।

शंका—कर्मोंके उपशमनसे उत्पन्न होनेवाला भाव औपशमिक है। किन्तु अपूर्वकरणमें कर्मों-के उपशमनका अभाव है अतः वहाँ औपशमिक भाव नहीं मानना चाहिये।

समाधान—नहीं, क्योंकि उपशमनशक्तिसे युक्त अपूर्वकरण संयतके औपशमिक भाव मानने-

में कोई विरोध नहीं है। इस प्रकार उपशम होनेपर उत्पन्न होनेवाला और उपशमन होने योग्य कर्मोंके उपशमनके लिये उत्पन्न हुआ भाव औपशमिक कहलाता है। अथवा, भविष्यमें होनेवाले उपशम भावमें भूतकालका उपचार करनेसे अपूर्वकरणके औपशमिकभाव बन जाता है। जैसे सब प्रकारके असंयममे प्रवृत्त हुए चक्रवर्ती तीर्थङ्करके तीर्थङ्कर व्यपदेश बन जाता है।

क्षपकगुणस्थानोंमें भाव

चदुण्हं खवा सजोगिकेवली अजोगिकेवलि त्ति को भावो, खइओ भावो ॥९॥

चारों क्षपक, सयोगकेवली, अयोगकेवली इनमें कौनसा भाव है? क्षायिक भाव है॥ ९॥

शंका—घातिकर्मोंका क्षय करनेवाले सयोगकेवली और अयोगकेवलीके तो क्षायिक भाव मानना उचित है। क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थके भी क्षायिकभाव हो सकता है क्योंकि उसके मोहनीयकर्मका क्षय हो गया है। किन्तु सूक्ष्मसाम्पराय आदि शेष क्षपकोंके क्षायिकभाव मानना युक्तिसंगत नहीं है क्योंकि उनमें किसी भी कर्मका क्षय नहीं पाया जाता?

समाधान—नहीं, क्योंकि मोहनीयकर्मके एकदेशके क्षपण करने वाले बादरसाम्पराय और सूक्ष्मसाम्पराय क्षपकोंके भी कर्मक्षयजनित भाव पाया जाता है।

शंका—किसी भी कर्मका क्षय न करनेवाले अपूर्वकरण संयतके क्षायिकभाव कैसे माना जा सकता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि उसके भी कर्मक्षयके निमित्तभूत परिणाम पाये जाते हैं।

यहांपर भी कर्मोंके क्षयसे उत्पन्न होनेवाला भाव क्षायिक है तथा कर्मोंके क्षयके लिये उत्पन्न हुआ भाव क्षायिक है ऐसी दो प्रकारकी शब्दव्युत्पत्ति लेनी चाहिये। अथवा उपचारसे अपूर्वकरण संयतके क्षायिक भाव मानना चाहिये।

शंका—इस प्रकार सर्वत्र उपचारका आश्रय करनेपर अतिप्रसंगदोष क्यों नहीं आता?

समाधान—नहीं, क्योंकि प्रत्यासत्तिसे अर्थात् समीपवर्ती अर्थके प्रसंगसे अतिप्रसंगदोषका प्रतिषेध हो जाता है॥ [धवला, पु. ५, पृ. २०४–२०६]

प्रकृतिअनुयोगद्वार

णाणावरणीयकम्मपयडी एवं दंसणावरणीय-वेयणीय-मोहणीय-आउअ-णामा-गोद-अंतराइयकम्मपयडी चेदि ॥ १९ ॥

ज्ञानावरणीयकर्मप्रकृति, इसी प्रकार दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय कर्मप्रकृति ॥ १९ ॥

जो ज्ञानको आवृत करता है वह ज्ञानावरणीय कर्म है। बाह्य अर्थका परिच्छेद करनेवाली जीवकी शक्ति ज्ञान है। वह जीवका यावद् द्रव्यभावी गुण है क्योंकि उसके बिना जीवके अभावका प्रसंग आता है।

शंका—ज्ञानावरणके स्थानपर ज्ञानविनाशक नाम क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि जीवके लक्षणस्वरूप ज्ञान और दर्शनका विनाश नहीं होता। यदि ज्ञान और दर्शनका विनाश माना जाय तो जीवका भी विनाश हो जायगा; क्योंकि लक्षणसे रहित लक्ष्य नहीं पाया जाता।

शंका—ज्ञानका विनाश नहीं मानने पर सभी जीवोंके ज्ञानका अस्तित्व प्राप्त होता है।

समाधान—प्राप्त होता है तो होने दो, उसमें कोई विरोध नहीं है। अथवा 'अक्षरका अनन्तवाँ भाग नित्य उद्घाटित रहता है' इस सूत्रके अनुकूल होनेसे सब जीवोंके ज्ञानका अस्तित्व सिद्ध होता है।

शंका—यदि सभी जीवोंके ज्ञान है तो सर्व अवयवोंके साथ ज्ञानका उपलम्भ होना चाहिये ?

समाधान—यह कहना उचित नहीं है क्योंकि आवरण किये गये ज्ञानके भागोंका उपलम्भ माननेमें विरोध आता है।

शंका—आवरणयुक्त जीवमें आवरण किये गये ज्ञानके भाग हैं या नहीं ? यदि हैं तो उन्हें आवरित नहीं कहा जा सकता। यदि नहीं हैं तो उनका आवरण नहीं माना जा सकता ?

समाधान—द्रव्यार्थिक नयका अवलम्बन करने पर आवरण किये गये ज्ञानके अंश सावरण जीवमें भी होते हैं क्योंकि जीवद्रव्यसे भिन्न ज्ञानका अभाव है।

शंका—ज्ञानके आवरण किये गये और आवरण नहीं किये गये अंशोंमें एकता कैसे हो सकती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि राहु और मेघोंके द्वारा सूर्यमण्डल और चन्द्रमण्डलमें आवरित और अनावरित भागोंमें एकता पाई जाती है।

शङ्का—ज्ञानको आव्रियमाण कैसे कहा ?

समाधान—अपने विरोधी द्रव्यके समीप्यमें जो मूलसे नष्ट नहीं होता उसे आव्रियमाण कहते हैं और दूसरे विरोधी द्रव्यको आवारक कहते हैं। विरोधी कर्मद्रव्यका सन्निधान होने पर ज्ञानका निर्मूल विनाश नहीं होता, क्योंकि वैसा मानने पर जीवद्रव्यके विनाशका प्रसंग आता है।

शङ्का—ज्ञानरहित पुद्गल और आकाश द्रव्योंके समान ज्ञानरहित जीवका अस्तित्व क्यों नहीं होता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि विशेषगुणोंके बिना जीवद्रव्यको अजीवद्रव्योंसे पृथक् नहीं माना जा सकता। इसलिये जीवको उपयोगलक्षण वाला माना है।

शंका—उपयोगवान् जीव है और उपयोगसे रहित अजीव है ऐसा क्यों नहीं स्वीकार करते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उपयोगको जीवसे भिन्न मानने पर उपयोगके बिना आकाश और जीवमें कोई अन्तर न रहनेसे आकाशकी तरह जीवके साथ उपयोगका सम्बन्ध नहीं बन सकता फिर भी यदि सम्बन्ध माना जाता है तो जीवके समान आकाश आदिके साथ भी उपयोगका सम्बन्ध हो जायगा।

शंका—यदि जीव और उपयोगका सम्बन्ध न होता तो 'उपयोगवान्' उसे नहीं कहते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि नित्ययोगमें भी मतुप् प्रत्यय होता है। वह उपयोग दो प्रकारका है—साकारोपयोग और अनाकारोपयोग। साकार उपयोग का नाम ज्ञान है और अनाकार उपयोग का नाम दर्शन है।

शंका—साकार उपयोगके द्वारा सब पदार्थ विषय किये जाते हैं अतः विषयका अभाव होनेसे अनाकार उपयोग नहीं बनता।

समाधान—यह दोष नहीं है क्योंकि अन्तरङ्गको विषय करने वाले उपयोगको अनाकार उपयोग स्वीकार किया है। अन्तरङ्ग उपयोग विषयाकार नहीं होता। कर्तृ-कर्मभावका नाम आकार है। दर्शन में कर्त्तासे भिन्न कर्म नहीं पाया जाता। ज्ञानका विषय बाह्य पदार्थ है अतः उसमें कर्तृ-कर्मभाव होनेसे साकारता है।

जीवमें आभिनिबोधिक ज्ञान (मतिज्ञान), श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान ये पाँच ज्ञान हैं और पाँच ही ज्ञानावरणीयकी प्रकृतियां हैं।

उनमें अभिमुख नियमित अर्थका ज्ञान होना आभिनिबोधिक ज्ञान है। इन्द्रिय और नो इंद्रिय के द्वारा ग्रहण करने योग्य अर्थ का नाम अभिमुख है। मतिज्ञानके द्वारा ग्रहण किये गये अर्थके निमितसे जो अन्य अर्थोंका ज्ञान होता है वह श्रुत ज्ञान है। शब्दके निमित्तसे उत्पन्न हुआ शब्दार्थ-का ज्ञान भी श्रुतज्ञान है।

शंका—शब्दको श्रुतनाम कैसे मिल सकता है ?

समाधान—कारणमें कार्यके उपचारसे।

शङ्का—एकेन्द्रिय जीव श्रोत्र और मनसे रहित होते हैं। उनके श्रुतज्ञानकी उत्पत्ति कैसे हो सकती है ?

समाधान—उनमें मनके बिना भी जातिविशेषके कारण लिंगी विषयक ज्ञानकी उत्पत्ति माननेमें कोई विरोध नहीं है।

शंका—महाविषय वाले अवधिज्ञानसे अल्पविषय वाला मनःपर्ययज्ञान उनके बाद क्यों कहा ?

समाधान—यह सही हे कि अवधिज्ञानकी अपेक्षा मनःपर्ययज्ञान अल्प है। किन्तु मनः-पर्ययज्ञान संयमके निमित्तसे होता है इस कारणसे अवधिज्ञानसे मनःपर्यय ज्ञान महान् है।

शंका—जीव क्या पाँच ज्ञान स्वभाव वाला है या केवलज्ञान स्वभाव है। पाँच ज्ञान स्व-भाव वाला तो हो नहीं सकता; क्यों कि जीवद्रव्यमें पांच ज्ञानोंका एक साथ अस्तित्व नहीं माना है। केवलज्ञान स्वभाव भी नहीं हो सकता, क्योकि ऐसा मानने पर शेष आवरणीय ज्ञानोंका अभाव होनेसे शेष आवरण कर्मों का अभाव प्राप्त होता है।

समाधान—जीव केवलज्ञान स्वभावही है। फिर भी ऐसा मानने पर आवरणीय शेष ज्ञानों-का अभाव होने से उनके आवारक कर्मोंका अभाव नहीं होता; क्योंकि केवलज्ञानावरणीयके द्वारा आवृत हुए भी केवलज्ञानके कुछअवयवोंकी जो रूपी द्रव्योंको प्रत्यक्ष ग्रहण करनेमें समर्थ हैं संभा-वना देखी जाती है। वे जीवसे निकलती हुई ज्ञान किरणें प्रत्यक्ष औरपरोक्षके भेदसे दो प्रकार हैं। उनमेंसे प्रत्यक्षभाग दो प्रकारका है—एक संयमप्रत्यय, दूसरा सम्यक्त्व और संयम प्रत्यय तथा

भवप्रत्यय। उनमें संयमप्रत्यय मनःपर्यय ज्ञान है और दूसरा अवधिज्ञान है। जो परोक्षभाग है वह भी दो प्रकार है—इन्द्रियनिबन्धन और इन्द्रियजन्यज्ञाननिबन्धन। इन्द्रियजन्यभाग मति-ज्ञान है दूसरा श्रुतज्ञान है। इन चार ज्ञानोंके आवारक कर्म मतिज्ञानावरणीय, श्रुतज्ञानावरणीय अवधिज्ञानावरणीय और मनःपर्ययज्ञानावरणीय कर्म कहे जाते हैं। इस लिए जीवके केवलज्ञान स्वभाव होने पर भी ज्ञानावरणीयके पाँच भेद सिद्ध होते हैं।

शंका—केवलज्ञानावरणीय कर्म क्या सर्वघाती है या देशघाती? सर्वघाती तो हो नहीं सकता; क्योंकि केवलज्ञानका सम्पूर्ण अभाव मान लेने पर जीवके अभावका प्रसंग आता है। केवल-ज्ञानावरणीय कर्म देशघाती भी नहीं हो सकता, क्योंकि ऐसा मानने पर केवलज्ञानावरणीय और केवलदर्शनावरणीय कर्म सर्वघाती हैं, इस सूत्रके साथ विरोध आता है?

समाधान—केवलज्ञानावरण सर्वघाती ही है क्योंकि वह केवलज्ञानका विशेष आवरण करता है फिर भी जीवका अभाव नहीं होता, क्योंकि केवलज्ञानके आवृत्त होने पर भी चार ज्ञानों का अस्तित्व पाया जाता है।

शङ्का—जीवमें केवल एक ज्ञान है। उसे जब पूर्णतया आवृत्त कहते हो तो चार ज्ञानोंका सद्भाव कैसे सम्भव है?

समाधान—नहीं, क्योंकि जिस प्रकार राखसे ढकी हुई अग्निसे वाष्पकी उत्पत्ति होती है उसी प्रकार सर्वघाती आवरणके द्वारा केवलज्ञानके आवृत्त होने पर भी उससे चार ज्ञानोंकी उत्पत्ति माननेमें कोई विरोध नहीं आता।

शंका—ये चारों ही ज्ञान केवलज्ञानके अवयव नहीं है क्योंकि ये विकल हैं, परोक्ष हैं, क्षयसहित हैं, और वृद्धि-हानियुक्त हैं अतः उन्हें सकलप्रत्यक्ष, तथा क्षय और वृद्धि-हानिसे रहित केवलज्ञान का अवयव माननेमें विरोध आता है। अतः चारों ज्ञानोंको केवलज्ञानका अवयव कहना ठीक नहीं है?

समाधान—नहीं, क्योंकि ज्ञानसामान्यकी अपेक्षा उन्हें केवलज्ञानका अवयव माननेमें कोई विरोध नहीं आता।

शंका—सूक्ष्मनिगोदियालब्ध्यपर्याप्तकका जो जघन्य ज्ञान होता है उसका नाम लब्ध्यक्षर है, इसे अक्षर क्यों कहते हैं?

समाधान—क्योंकि यह नाश हुए विना एकरूपसे रहता है अथवा केवलज्ञान अक्षर है क्योंकि उसमें हानि-वृद्धि नहीं होती। द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा सूक्ष्मनिगोदियाका ज्ञान भी वही है इसलिये भी उस ज्ञानको अक्षर कहते हैं। इसका प्रमाण केवलज्ञानका अनन्तवां भाग है। यह ज्ञान निरावरण है। इस ज्ञानमें सब जीव राशिसे अनन्तगुणे अविभाग प्रतिच्छेद हैं।

गोत्रकर्म

गोदस्स कमस्स दुवे पयडीओ उच्चागोदं चेव णीचागोदं चेव ॥ १३५ ॥

गोत्रकर्म की दो प्रकृतियां हैं—उच्चगोत्र और नीचगोत्र।

शंका—उच्चगोत्रका व्यापार कहाँ होता है? राज्यादिरूप सम्पदाकी प्राप्तिमें तो उसका

व्यापार होता नहीं है; क्योंकि उसकी उत्पत्ति सात वेदनीय कर्मके निमित्तसे होती हैं। पाँच महाव्रतोंके ग्रहण करनेकी योग्यता भी उच्चगोत्रके द्वारा नहीं की जाती है क्योंकि ऐसा मानने पर जो सब देव और अभव्य जीव पांच महाव्रतोंको ग्रहण नहीं कर सकते उनमें उच्चगोत्रके उदयका अभाव प्राप्त होता है। सम्यग्ज्ञानकी उत्पत्तिमें उसका व्यापार होता है यह मानना भी ठीक नहीं है क्योंकि उसकी उत्पत्ति ज्ञानावरणके क्षयोपशमसे सहकृत सम्यग्दर्शनसे होती है। तथा ऐसा मानने पर नारकियों और तिर्यञ्चोंके भी उच्चगोत्रका उदय मानना पड़ेगा; क्योंकि उनके सम्यग्ज्ञान होता है। आदेयता, यश और सौभाग्यकी प्राप्तिमें इसका व्यापार होता है यह कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि इनकी उत्पत्तिनाम कर्मके निमित्तसे होती है। इक्ष्वाकुकुल आदिकी उत्पत्तिमें भी इसका व्यापार नहीं होता, क्योंकि वे काल्पनिक हैं, अतः परमार्थसे उनका आस्तित्व नहीं है। इसके अतिरिक्त वैश्य और ब्राह्मण साधुओंमें उच्चगोत्रका उदय देखा जाता है। सम्पन्न जनोंसे जीवोंकी उत्पत्तिमें इसका व्यापार होता है यह कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि इस तरह तो म्लेच्छराजसे उत्पन्न हुए बालक के भी उच्चगोत्रका उदय प्राप्त होता है। अणुव्रतियोंसे उत्पत्तिमें उसका व्यापार होता है यह कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि ऐसा मानने पर औपपादिक देवोंमें उच्चगोत्रके उदयका अभाव प्राप्त होता है तथा नाभिपुत्र नीचगोत्री ठहरते हैं। इसलिए उच्चगोत्र निष्फल है और इसीलिये उसमें कर्मपना घटित नहीं होता। उसका अभाव होनेपर नीचगोत्र भी नहीं रहता; क्योंकि दोनों एक दूसरेके अविनाभावी हैं, अतः गोत्रकर्म नहीं ही है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि जिनवचनके असत्य होनेमें विरोध आता है। यह विरोध भी वहाँ उसके कारणोंके नहीं होने से जाना जाता है। दूसरे, केवलज्ञानके द्वारा विषय किये गये सभी अर्थों में छद्मस्थोंका ज्ञान प्रवृत्त नहीं होता। इसलिय यदि छद्मस्थोंको कोई अर्थ उपलब्ध नहीं होते हैं तो इससे जिनवचनको अप्रमाण नहीं कहा जा सकता। तथा गोत्रकर्म निष्फल है यह बात भी नहीं हैं क्योंकि जिनका दीक्षा योग्य साधु आचार है, साधु आचार वालोंके साथ जिन्होंने सम्बन्ध स्थापित किया है तथा जो 'आर्य' इस प्रकारके ज्ञान और वचन व्यवहारके निमित्त हैं उन पुरुषोंकी परम्पराको उच्चगोत्र कहा है। तथा उनमें उत्पत्तिका कारणभूत कर्म भी उच्चगोत्र है। इसमें पूर्वोक्ति दोष सम्भव नहीं है।

[धवल पु. १३, प्रकृति अनुयोगद्वार]

संयम जीवका स्वभाव नहीं

असंजदो णाम कधं भवति ।। ५४ ।। संजमघादीणं कम्माणमुदएण ।। ५५ ।।

जीव असंयत कैसे होता है ? संयमके घाती कर्मोंके उदयसे जीव असंयत होता है ।। ५४-५५।।

शङ्का—एक अप्रत्याख्यानावरणका उदय ही असंयमका हेतु है क्योंकि वही संयमासंयमके प्रतिषेध द्वारा सर्वसंयमका घाती होता है। ऐसी स्थितिमें 'संयमघाती कर्मोंके उदयसे असंयत होता है, यह कैसे घटित होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि दूसरे भी चारित्रावरणीय कर्मोंके उदयके बिना केवल अप्रत्याख्यानावरणमें देशसंयमको घात करनेका सामर्थ्य नहीं होता।

शंका—संयम तो जीवका स्वभाव है इसलिये वह अन्यके द्वारा नष्ट नहीं किया जा सकता, क्योंकि उसका विनाश होनेपर जीवद्रव्यके विनाशका प्रसंग आयेगा ?

समाधान—नहीं आयेगा; क्योंकि जिस प्रकार उपयोग जीवका लक्षण माना गया है उस प्रकार संयम जीवका लक्षण नहीं होता।

शंका—लक्षण किसे कहते हैं ?

समाधान—जिसके अभावमें द्रव्यका भी अभाव हो जाता है वही उस द्रव्यका लक्षण है। जैसे, पुद्गलला.लक्षण रूपादि और जीवका लक्षण उपयोग।

इसलिये संयमके अभावमें जीवका अभाव नहीं होता।

[धवला, पु० ७, पृ० ९५-९६]

दर्शनोपयोग

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी ओहिदंसणी णाम कधं भवदि ? ॥ ५६ ॥

दर्शनमार्गणानुसार जीव चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, व अवधिदर्शनी कैसे होता है ॥ ५७ ॥

शंका—दर्शन है ही नहीं, क्योंकि उसका कोई विषय नहीं है। बाह्य पदार्थोंके सामान्य ग्रहणको दर्शन तो नहीं माना जा सकता, क्योंकि वैसा माननेपर केवलज्ञानके अभावका प्रसंग आता है। इसका कारण यह है कि जब केवलज्ञानके द्वारा त्रिकाल गोचर अनन्त अर्थ और व्यंजन पर्याय स्वरूप समस्त द्रव्योंको जान लिया जाता है तब केवलदर्शनके लिये कोई विषय ही नहीं रहता। ऐसा तो हो नहीं सकता कि केवलज्ञानके द्वारा ग्रहण किये गये पदार्थको ही केवलदर्शन ग्रहण करता है; क्योंकि जो वस्तु ग्रहण की जा चुकी है उसे ही पुनः ग्रहण करनेका कोई फल नहीं होता। यह भी नहीं हो सकता कि समस्त विशेष मात्रका ही ग्रहण करनेवाला केवलज्ञान हो जिससे समस्त पदार्थोंका सामान्य धर्म केवलदर्शनका विषय हो जाय, क्योंकि ऐसा माननेपर तो संसारावस्थामें जब आवरणके वशसे ज्ञान और दर्शनकी प्रवृत्ति क्रमसे होती है तब द्रव्यके ज्ञान होनेके अभावका का ही प्रसंग आजाएगा। इसका कारण यह है कि ज्ञान द्रव्यका परिच्छेदक नहीं रहा क्योंकि उसका व्यापार सामान्य रहित विशेषोंमें ही परिमित हो गया। तथा न दर्शन ही द्रव्यका परिच्छेदक रहा; क्योंकि उसका व्यापार विशेष रहित सामान्यमें सीमित हो गया। इस प्रकार न केवल संसारावस्था में ही द्रव्यके ग्रहण नहीं होगा किन्तु केवली अवस्थामें भी द्रव्यका ग्रहण नहीं होगा; क्योंकि एकांत रूपी दुरन्तपथमें स्थित सामान्य व विशेषमें प्रवृत्त हुए केवलदर्शन और केवलज्ञानका द्रव्यमात्रमें व्यापार माननेमें विरोध आता है। एकान्त सामान्य और विशेष तो होते नहीं जिससे कि वे केवलदर्शन और केवलज्ञानके विषय हो सकें। और जो नहीं है उसको भी प्रमेयरूपसे मानना इष्ट हो तो गधेके सींग भी प्रमेय हो जायेंगे क्योंकि अभावकी अपेक्षा दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है। तथा प्रमेयके अभावमें प्रमाण भी नहीं रहता क्योंकि प्रमाण प्रमेयमूलक होता है इसलिये दर्शनकी कोई अलग सत्ता नहीं है यह सिद्ध हुआ ?

समाधान—उक्त शंकाका परिहार करते है—दर्शन हैं क्योंकि सूत्रमें आठ कर्मोंका निर्देश किया गया है। आवरणीयके अभावमें आवारक हो नहीं सकता; क्योंकि अन्यत्र वैसा नहीं पाया जाता है। यह भी नहीं कह सकते कि दर्शनावरणका निर्देश केवल उपचारसे किया गया है; क्योंकि मुख्यके अभावमें केवल उपचारकी उपपत्ति बन नहीं सकती। आवरणीय है ही नहीं सो भी बात नहीं, क्योंकि चक्षुर्दशनी, अचक्षुदर्शनी और अवधिदर्शनी क्षायोपशमिक लब्धिसे तथा केवलदर्शन क्षायिक लब्धिसे होनेवाले आवरणीयके अस्तित्वका कथन करनेवाले जिन वचन देखे जाते हैं।

शंका—आगमप्रमाणसे भले ही दर्शनका अस्तित्व हो किन्तु युक्तिसे तो दर्शनका अस्तित्व सिद्ध नहीं होता?

समाधान—नहीं, क्योंकि युक्तियोंसे आगममें बाधा नहीं आती।

शंका—आगमसे भी तो युक्तिमें बाधा नहीं आना चाहिये?

समाधान—सचमुच ही आगमसे युक्तिमें बाधा नहीं आती; किन्तु प्रस्तुत युक्तिमें बाधा अवश्य आती है क्योंकि यह उत्तम युक्ति नहीं है। वह इस प्रकार है ज्ञानद्वारा केवल विशेषका ही ग्रहण नहीं होता; क्योंकि सामान्यविशेषात्मक होनेसे ही द्रव्यका जात्यन्तर स्वरूप पाया जाता है। और दोनों नयोंके विषयोंको न ग्रहण करनेवाले ज्ञानमें साकारता नहीं बन सकती क्योंकि वैसा मानने में विरोध आता है। ऐसी स्थितिमें दर्शनका अभाव नहीं हो सकता; क्योंकि बाह्य पदार्थोको छोड़-कर दर्शनका व्यापार अन्तरंग वस्तुमें होता है। ऐसा भी नहीं कह सकते कि केवलज्ञान ही दो शक्तियोंसे युक्त होनेके कारण बहिरङ्ग और अन्तरङ्ग दोनोंका परिच्छेदक है क्योंकि ज्ञान स्वयं एक पर्याय है और पर्याय की पर्याय नहीं होती। यदि पर्यायमें भी और पर्याय मानी जाय तो अवस्थान का कोई कारण न होनेसे अनवस्था दोष आता है। इसीलिए अन्तरंग उपयोगसे बहिरंग उपयोग भिन्न ही होना चाहिए, अन्यथा सर्वज्ञता नहीं बनती। अतएव आत्माको अन्तरंग उपयोग और बहिरंग उपयोग नामवाली दो शक्तियोंसे युक्त मानना चाहिये।

जं सामण्णं गहणं भावाणं णेव कट्टु आयारं।
अविसेसदूण अत्थे दंसणमिदि भण्णदे समए॥

वस्तुओंका आकार न करके व पदार्थोंमें विशेषता न करके जो सामान्यका ग्रहण होता है उसे आगममें दर्शन कहा है।

इस सूत्रसे प्रस्तुत व्याख्यान विरुद्ध भी नहीं पड़ता है क्योंकि उक्त सूत्रमें सामान्यशब्दका प्रयोग आत्माके लिए किया है। जीवका सामान्यपना असिद्ध भी नहीं है क्योंकि नियमके विना ज्ञान-के विषयभूत किये गये त्रिकाल गोचर अनन्त अर्थ और व्यञ्जन पर्यायोंसे संचित बहिरंग और अन्तरंग पदार्थोंका जीवमें सामान्यत्व माननेमें कोई विरोध नहीं है।

शङ्का—इस प्रकार सामान्यसे दर्शनकी सिद्धि और केवलदर्शनकी सिद्धि भले हो जाये किंतु शेष दर्शनोंकी सिद्धि नहीं हो सकती, क्योंकि आगममें दर्शनकी प्ररुपणा बाह्यार्थविषयकरूपसे की गई है। यथा—

चक्खूण जं पयासदि दिस्सदि तं चक्खुदंसणं वेंति।
दिट्ठस्स य जं सरणं णायव्वं तं अचक्खु त्ति॥

परमाणु आदिआइं अंतिमखंधं त्ति मुत्तिदव्वाइं।
तं ओहिदंसणं पुण जं पस्सदि ताणि पच्चक्खं॥

जो चक्षु इन्द्रियोंसे प्रकाशित होता या दीखता है उसे चक्षुदर्शन समझा जाता है। और जो (अन्य इन्द्रियोंसे प्रकाशित होता है) उसे अचक्षुदर्शन जानना चाहिये। परमाणुसे लेकर अन्तिम स्कन्ध तक जो मूर्तिकद्रव्य हैं उन्हें जो प्रत्यक्ष देखता है वह अवधिदर्शन है ?

समाधान—नहीं, इन गाथाओंका परमार्थ आपने नहीं समझा। जो चक्षुओंसे प्रकाशित होता है अर्थात् दीखता है वह चक्षुदर्शन है इसका अभिप्राय यह है कि चक्षुइन्द्रियज्ञानसे जो पहले ही सामान्य स्वशक्तिका अनुभव होता है जो चक्षुज्ञानकी उत्पत्तिमें निमित्तरूप है वह चक्षुदर्शन है।

शंका—उस चक्षुइन्द्रियसे प्रतिबद्ध अन्तरंग शक्तिमें चक्षुइन्द्रियकी प्रवृत्ति कैसे हो सकती है ?

समाधान—नहीं, यथार्थमें तो चक्षुइन्द्रियकी अन्तरंगमें ही प्रवृत्ति होती है किन्तु बाल-जनोंको ज्ञान करानेके लिए अन्तरंगमें बहिरंग पदार्थोंके उपचारसे 'चक्षुओंसे जो दीखता' है वही चक्षुदर्शन है ऐसा कथन किया है।

शंका—गाथाका तोड़मरोड़कर अर्थ न कर सीधा अर्थ क्यों नहीं करते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि वैसा करनेमें पूर्वोक्त समस्त दोषोंका प्रसंग आता है।

गाथाके उत्तरार्धका अर्थ इस प्रकार है—जो देखा गया है अर्थात् शेष इन्द्रियोंके द्वारा जाना गया है उससे जो सरण अर्थात् ज्ञान होता है उसे अचक्षुदर्शन जानना चाहिये। चक्षुइन्द्रियों को छोड़ शेष इन्द्रियज्ञानोंकी उत्पत्तिसे पूर्व ही अपने विषयमें प्रतिबद्ध स्वशक्तिका सामान्यसे संवेदन या अनुभव होता है जो अचक्षुज्ञानको उत्पत्तिमें निमित्तभूत है वह अचक्षुदर्शन है ऐसा उक्तकथनका अभिप्राय है। द्वितीय गाथाका अभिप्राय इस प्रकार है—'परमाणुसे लगाकर अन्तिम स्कन्ध पर्यन्त जितने मूर्तिक द्रव्य हैं उन्हें जिसके द्वारा साक्षात् देखता या जानता है वह अवधि-दर्शन है ऐसा जानना चाहिये, परमाणुसे लेकर अन्तिम स्कन्ध पर्यन्त जो पुद्गल द्रव्य स्थित हैं उनके प्रत्यक्षज्ञानसे पूर्व ही जो अवधिज्ञानकी उत्पत्तिका निमित्तभूत स्वशक्ति विषयक उपयोग होता है वही अवधिदर्शन है ऐसा ग्रहण करना चाहिये, अन्यथा ज्ञान और दर्शनमें कोई भेद नहीं रहता।

[धवला, पु० ७, पृ, ९६ आदि]

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ॥१६१॥

केवलदर्शनी जीव केवलज्ञानियोंके समान हैं ॥१६१॥

चूँकि केवलज्ञानसे रहित केवलदर्शन नहीं पाया जाता है इसलिये दोनों राशियोंका प्रमाण समान है।

शंका—श्रुतज्ञान और मनः पर्यय ज्ञानका दर्शन क्यों नहीं होता ?

समाधान—श्रुतज्ञानका दर्शन तो इसलिये नहीं होता क्योंकि वह मतिज्ञानपूर्वक होता है। इसी तरह मनःपर्ययज्ञानका भी दर्शन नहीं है क्योंकि वह भी मतिज्ञानपूर्वक होता है।

शंका—यदि दर्शनका स्वरूप स्वरूपसंवेदन है तो इन दोनोंका भी दर्शन होना चाहिये ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उत्तर ज्ञानकी उत्पत्तिके निमित्तभूत प्रयत्नविशिष्ट स्वसंवेदनको दर्शन माना है। परन्तु केवलीमें यह क्रम नहीं पाया जाता है क्योंकि उनमें अक्रमसे ज्ञान और दर्शनकी प्रवृत्ति होती है। किन्तु छद्मस्थोंमें इन दोनोंकी अक्रमसे प्रवृत्ति नहीं होती, क्योंकि आगम के इस वचनसे कि छद्मस्थोंके दोनों उपयोग एक साथ नहीं होते हैं उसका प्रतिषेध है और ज्ञानके पश्चात् दर्शन होता नहीं है क्योंकि आगममें कहा है—दर्शनपूर्वक ज्ञान होता है किन्तु ज्ञानपूर्वक दर्शन नहीं होता।

[धवला; पु० ३, पृ. ४५६-५७]

भव्यत्व-अभव्यत्वचर्चा

भवियाणुवादेण भवसिद्धिया केवचिरं कालादो होंति ? ॥१८॥

भव्यमार्गणानुसार भव्यजीव कितने काल तक रहते हैं ? ॥१८॥

अणादिओ सपज्जवसिदो ॥१९॥

भव्यपना अनादि सान्त होता है ॥१९॥

क्योंकि अनादिरूपसे समागत भव्यभावका अयोगकेवलीके अन्तिम समयमें विनाश पाया जाता है।

शंका—अभव्यके समान भी भव्य जीव होता है तब फिर भव्यभावको अनादि अनन्त क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि भव्यपनेमें अविनाश शक्तिका अभाव है।

शंका—यहाँ शक्तिका ही अधिकार है, व्यक्तिका नहीं, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—सूत्रमें भव्यत्वको अनादि सान्त कहा है इसीसे जाना जाता है कि यहाँ शक्तिका अधिकार है।

सादिओ सपज्जवसिदो ॥ १८५ ॥

भव्य जीव सादिसान्त भी होता है ॥ १८५ ॥

शंका—अभव्य तो भव्य हो नहीं हो सकता क्योंकि भव्यत्वभाव और अभव्यत्वभावमें परस्पर अत्यन्ताभाव है अतः दोनों भाव एक जीवमें क्रमसे भी नहीं रह सकते। और न सिद्ध ही भव्य होता है क्योंकि समस्त आस्रवोंके नष्ट हो जानेपर पुनः उनको उत्पत्ति माननेमें विरोध आता है। अतः भव्यत्वभाव सादि नहीं है ?

समाधान—यह दोष नहीं है क्योंकि पर्यायार्थिक नयके अवलम्बनसे जब तक सम्यक्त्व ग्रहण नहीं किया तबतक जीवका भव्यत्व अनादि अनन्त है। क्योंकि तबतक उसका संसार अनादि अनन्त है। किन्तु सम्यक्त्वको ग्रहण कर लेनेपर अन्य ही भव्यभाव उत्पन्न हो जाता है क्योंकि सम्यक्त्व उत्पन्न हो जानेपर फिर केवल अर्धपुद्गल परिवर्तन मात्र काल तक संसारमें स्थिति रहती है। इसी प्रकार एक समय कम अर्धपुद्गल परिवर्तनकालवाले, दो समय कम अर्धपुद्गल परिवर्तन संसारवाले, आदि जीवोंके पृथक् पृथक् भव्यभाव कहना चाहिये। इससे भव्योंका सादि-सान्तपना सिद्ध हो जाता है॥

अभवसिद्धिया केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १८६ ॥

अणादिओ अपज्जवसिदो ॥ १८७ ॥

जीव अभव्यसिद्धिक कितने काल तक होते हैं ?

अनादि अनन्त काल तक ॥ १८६-१८७ ॥

शङ्का—अभव्यभाव व्यञ्जनपर्याय है। इस लिए उसका विनाश अवश्य होना चाहिए, नहीं तो अभव्यत्वके द्रव्य होनेका प्रसंग आयगा ?

समाधान—अभव्यभाव भले ही व्यञ्जन पर्याय हो, किन्तु सभी व्यंजन पर्यायका नाश अवश्य होना चाहिए ऐसा कोई नियम नहीं है, क्योंकि ऐसा नियम मानने पर एकान्तवादका प्रसंग आयेगा। ऐसा भी नियम नहीं है कि जो नष्ट न हो वह द्रव्य है क्योंकि जिसमें उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य होते हैं उसे द्रव्य माना गया है। [धवला, पु. ७, पृ. १७६-७८]

धर्मध्यान और शुक्लध्यान

शङ्का—यदि समस्त समयसद्भाव धर्म्यध्यानका ही विषय है तो शुक्लध्यानका कोई विषय शेष नहीं रहता ?

समाधान—यह दोष नहीं है क्योंकि विषयकी अपेक्षा दोनों ध्यानोंमें कोई भेद नहीं है।

शंका—यदि ऐसा है तो दोनों ही ध्यानोंमें एकपना प्राप्त होता है ? क्योंकि दंशमशक, सिंह, भेड़िया, व्याघ्र, श्वापद, और भालू द्वारा भक्षण किया गया भी, वसूला द्वारा छीला गया भी, करोंतों द्वारा फाड़ा गया भी, दावानलके शिखामुख द्वारा ग्रसा गया भी, शीतवात और आतप द्वारा बाधा दिया गया हुआ भी, और सैकड़ों करोड़ों अप्सराओंके द्वारा लालित किया गया भी जीव जिस अवस्थामें ध्येयसे चलित नहीं होता वह जीवकी अवस्था ध्यान है। यह स्थिर भाव भी दोनों ध्यानोंमें समान है अन्यथा ध्यानभावकी उत्पत्ति नहीं हो सकती ?

समाधान—इसका परिहार कहते हैं—यह सत्य है कि इन दोनोंके स्वरूपोंकी अपेक्षा दोनों ही ध्यानोंमें कोई भेद नहीं है। किन्तु धर्मध्यान एक वस्तुमें अल्पकालतक रहता है, क्योंकि कषाय-परिणाम गर्भगृहके भीतर स्थित दीपकके समान चिरकालतक स्थिर नहीं रहता।

शङ्का—धर्म्यध्यान कषायसहित जीवोंके ही होता है यह कैसे जाना ?

समाधान—जिनदेवका उपदेश है कि असंयत सम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्त-क्षपक संयत और उपशामक अपूर्वकरण, क्षपक और उपशामक अनिवृत्तिकरण तथा क्षपक और उपशामक सूक्ष्मसाम्परायसंयतोंके धर्म्यध्यान होता है। इससे जाना कि धर्म्यध्यान कषायसहित जीवोंके होता है।

परन्तु शुक्लध्यानके एक पदार्थमें स्थित रहनेका काल धर्म्यध्यानके अवस्थान कालसे संख्यात गुणा है क्योंकि वीतरागपरिणाम मणिकी शिखाके समान बहुत कालतक भी चलायमान नहीं होता।

शङ्का—उपशान्तकषाय गुणस्थानमें पृथक्त्ववितर्कविचार ध्यानका अवस्थान अन्तर्मुहूर्त काल ही पाया जाता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है क्योंकि वीतरागताका अभाव होनेसे उसका विनाश हो जाता है।

शङ्का—उपशान्तकषायके ध्यानका अर्थसे अर्थान्तरमें गमन देखा जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि अर्थसे अर्थान्तरमें गमन होनेपर भी चित्त अन्यत्र नहीं जाता, अतः ध्यानका विनाश नहीं होता।

शंका—वीतरागताके रहते हुए भी क्षीणकषायके होनेवाले एकत्ववितर्क अवीचार ध्यानका विनाश देखा जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि आवरणका अभाव होनेसे केवली जिनका उपयोग अशेष द्रव्य-पर्यायोंमें उपयुक्त होने लगता है इसलिये एक द्रव्य या एक पर्यायमें अवस्थानका अभाव देखकर उस ध्यानका अभाव कहा है। [धवला पु० १३, पृ० ७४-७५]

योग

शङ्का—सयोग यह कौन-सा भाव है ?

समाधान—सयोग यह अनादि पारिणामिक भाव है। इसका कारण यह है कि योग न तो औपशमिकभाव है क्योंकि मोहनीय कर्मका उपशम नहीं होने पर भी योग पाया जाता है। न वह क्षायिक भाव है क्योंकि आत्मस्वरूपसे रहित योगकी कर्मोंके क्षयसे उत्पत्ति माननेमें विरोध है। योग घातिकर्मोदयजनित भी नहीं है, क्योंकि घातिकर्मोदयके नष्ट होने पर सयोगकेवलिमें योगका सद्भाव पाया जाता है। न योग अघातिकर्मोदय जनित ही हैं क्योंकि अयोगकेवलीके अघातिकर्म-का उदय होने पर भी योग नहीं पाया जाता। योग शरीरकर्मोदय जनित भी नहीं है क्योंकि पुद्गलविपाकी प्रकृतियोंके जीव परिस्पन्दनके कारण होनेमें विरोध हैं।

शङ्का—कार्मण शरीर पुद्गलविपाकी नहीं है; क्योंकि उससे पुद्गलोंके वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श, संस्थान आदिका आगमन आदि नहीं पाया जाता। इस लिए योगको कार्मण शरीरसे उत्पन्न मानना चाहिए ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सब कर्मोंका आश्रय होनेसे कार्मण शरीर भी पुद्गलविपाकी ही है।

शङ्का—कार्मण शरीरका उदय विनष्ट होनेके समयमें ही योगका विनाश देखा जाता है अतः योग कार्मणशरीर जनित है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि यदि ऐसा माना जाय तो अघातिकर्मोदयके विनाशके अनन्तर ही विनष्ट होने वाले पारिणामिक भव्यत्व भावको भी औदायिकपनेका प्रसंग प्राप्त होगा।

अतः योगको पारिणामिकपना सिद्ध होता है। अथवा योग औदायिक भाव है क्योंकि शरीर-नामकर्मके उदयका विनाश होनेके पश्चात् ही योगका विनाश पाया जाता है और ऐसा माननेपर भव्यत्वभावके साथ व्यभिचार भी नहीं आता; क्योंकि कर्मसम्बन्धके विरोधी पारिणामिक भावकी कर्मसे उत्पत्ति माननेमें विरोध आता है। [धवला पु. ५, पृ. २२५-२२६]

जोगाणुवादेन मणजोगी वचिजोगी कायजोगी णाम कधं भवदि ? ॥३२॥

योगमार्गणानुसार जीव मनोयोगी, वचनयोगी और कामयोगी कैसे होता है ॥३२॥

योग क्या औदयिक भाव है या क्षायोपशमिक या पारिणामिक या क्षायिक या औपशामिक ? योग क्षायिक तो हो नहीं सकता, क्योंकि वैसा माननेसे समस्त कर्मोंके उदयसे युक्त संसारी जीवोंके योगके अभावका प्रसंग आता है तथा समस्त कर्मोंके उदयसे रहित सिद्धोंमें योगके अस्तित्व का प्रसंग आता है। योग परिणामिक भी नहीं है क्योंकि वैसा माननेपर क्षायिक माननेसे उत्पन्न होने वाले सब दोषोंका प्रसंग आता है। योग औपशमिक भी नहीं है क्योंकि औपशमिक भावसे रहित मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें योगके अभावका प्रसंग आता है। योग घातिकर्मके उदयसे भी उत्पन्न नहीं हाता, क्योंकि वैसा होनेपर घातिकर्मोंके उदयसे रहित केवलीमें योगके अभावका प्रसंग आता है। योग अघातिकर्मोंके उदयसे भी उत्पन्न नहीं होता, वैसा होनेपर अयागकेवलीमें योगके सद्भावका प्रसंग आयेगा। योग घातिकर्मोंके क्षयोपशमसे भी उत्पन्न नहीं हैं क्योंकि इससे भो सयोगकेवलीमें योगके अभावका प्रसंग आयेगा। योग अघातिकर्मोंके क्षयोपशमसे भी उत्पन्न नहीं है क्योंकि अघातिकर्मोंमें सर्वघाती और देशघाती स्पर्धकोंका अभाव होनेसे क्षयोपशमका भी अभाव है। यह सब मनमें विचार कर पूछा गया है कि जीव मनोयोगी, वचनयोगी और काययोगी कैसे होता है ?

खओवसमियाए लद्धीए ॥३३॥

क्षायोपशमिकलब्धिसे जीव मनोयोगी, वचनयोगी और काययोगी होता है ॥३३॥

शंका—जीव प्रदेशोंके संकोच और विस्ताररूप परिस्पन्दको योग कहते हैं। यह परिस्पन्द कर्मोंके उदयसे उत्पन्न होता है क्योंकि कर्मोदयसे रहित सिद्धोंके नहीं पाया जाता। अयोगकेवलीमें योगका अभाव होनेसे यह कहना उचित नहीं है कि योग औदयिक नहीं है क्योंकि यदि अयोगकेवलीमें योग नहीं होता तो शरीरनामकर्मका उदय भी नहीं होता। शरीरनामकर्मके उदयसे होनेवाला योग उस कर्मोदयके बिना नहीं हो सकता; क्योंकि वैसा माननेसे अतिप्रसंग दोष आता है। इस प्रकार जब योग औदयिक है तब उसे क्षायोपशमिक क्यों कहा जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि शरीरनामकर्मके उदयसे शरीर बननेके योग्य बहुतसे पुद्गलोंका संचय होनेपर वीर्यान्तरायकर्मके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयाभावसे उन्हीं पुद्गलोंके सदवस्थारूप उपशमसे तथा देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे उत्पन्न होनेके कारण क्षायोपशमिक कहलानेवाला वीर्य बढ़ता है। उस वीर्यको पाकर यतः जीवप्रदेशोंकासंकोच-विस्तार बढ़ता है इसीलिये योगको क्षायोपशमिक कहा है।

शंका—यदि वीर्यान्तरायके क्षयोपशमसे जनित बलकी वृद्धि और हानिसे जीवप्रदेशोंके परिस्पन्दकी वृद्धि-हानि होती है तब तो अन्तरायकर्मका क्षय हो जानेसे सिद्धोंमें योगकी बहुलताका प्रसंग आता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि क्षायोपशमिकके बलसे क्षायिकबल भिन्न देखा जाता है। अतः क्षायोपशमिक बलसे वृद्धि, हानिको प्राप्त होनेवाला जीवप्रदेशोंका परिस्पन्द क्षायिकबलसे वृद्धि-हानिको प्राप्त नहीं होता। क्योंकि ऐसा माननेसे अतिप्रसंग दोष आता है।

शंका—यदि योग वीर्यान्तरायके क्षयोपशमसे उत्पन्न होता है तो सयोगकेवलीमें योगके अभावका प्रसंग आता है ?

समाधान—नहीं आता, क्योंकि योगमें क्षायोपशमिक भाव तो उपचारसे माना गया है। असलमें तो योग औदायिक है और औदायिक योगका संयोगकेवलीमें अभाव माननेमें विरोध आता है।

वह योग तीन प्रकार है—मनोयोग, वचनयोग और काययोग। मनोवर्गणासे निष्पन्न हुए द्रव्यमनके अवलम्बनसे जो जीवका संकोच-विकोच होता है वह मनोयोग है। भाषावर्गणासम्बन्धी पुद्गलस्कन्धोंके अवलम्बनसे जो जीवप्रदेशोंका संकोच-विकोच होता है वह वचनयोग है। जो चतुर्विध शरीरोंके अवलम्बनसे जीवप्रदेशोंका संकोच-विकोच होता है वह काययोग है।

[धवला पु० ७, पृ० ७४-७६]

मिथ्यादृष्टि जीवोंका ज्ञान अज्ञान है

शंका—मिथ्यादृष्टि जीवोंका ज्ञान अज्ञान कैसे है ?

समाधान—क्योंकि उनका ज्ञान ज्ञानका कार्य नहीं करता।

शंका—ज्ञानका क्या कार्य है ?

समाधान—जाने हुए पदार्थका श्रद्धान करना ज्ञानका कार्य है। मिथ्यादृष्टि जीवोंमें वह कार्य नहीं है इसलिये उनका ज्ञान अज्ञान है। यदि अज्ञानका अर्थ ज्ञानका अभाव लिया जायेगा तो जीवके विनाशका प्रसंग आयेगा।

शंका—दयाधर्मको माननेवाली जातियोंमें उत्पन्न हुए मिथ्यादृष्टिमें तो श्रद्धान पाया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि आप्त, आगम और पदार्थके श्रद्धानसे रहित जीवके दयाधर्म आदिमें यथार्थ श्रद्धान होनेका विरोध है।

ज्ञानका कार्य न करनेपर ज्ञानको अज्ञान कहनेका व्यवहार लोकमें अप्रसिद्ध नहीं है; क्योंकि पुत्रका कार्य न करनेवाले पुत्रमें भी लोकमें अपुत्र व्यवहार देखा जाता है।

[धवला पु० ५ पृ० २२४]

इन्द्रियका अर्थ

शंका—जिन जीवोंके दो इन्द्रियाँ पाई जायें उन्हें द्वीन्द्रिय कहते हैं ऐसा ग्रहण करनेमें क्या दोष है ?

समाधान—उपर्युक्त अर्थ ग्रहण करनेपर अपर्याप्त कालमें विद्यमान जीवोंके इन्द्रियां नहीं पाई जानेसे उनके अग्रहणका प्रसंग प्राप्त होगा।

शंका—क्षयोपशमको इन्द्रिय कहते हैं, द्रव्येन्द्रियको इन्द्रिय नहीं कहते।

समाधान—नहीं, क्योंकि सयोगकेवलीका क्षयोपशम नष्ट हो जानेसे उनको अतीन्द्रियपनेका प्रसंग आता है।

शंका—आने दो ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सूत्रमें सयोगकेवलीको पञ्चेन्द्रिय कहा है ।

यथा-'पञ्चेन्द्रिय जीव सासादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगकेवलि पर्यन्त कितने हैं।' [धवला पु० ३ पृ० ३११-१२]

पृथिवीकायिकका अर्थ

यहाँ पृथिवी है काय जिनके उन्हें पृथिवीकायिक जीव कहते हैं ऐसा अर्थ नहीं करना चाहिये, क्योंकि ऐसा अर्थ करनेपर विग्रहगतिमें विद्यमान जीवोंके अकायित्वका अर्थात् पृथिवी-कायित्वके अभावका प्रसंग आता है ।

शंका—तो फिर पृथिवीकायिकका क्या अर्थ करना चाहिये ?

समाधान—पृथिवीकायनामकर्मके उदयसे युक्त जीवोंको पृथिवीकायिक कहते हैं ऐसा अर्थ करना चाहिये ।

शंका—कर्मके भेदोंमें तो कोई इस नामका कर्म नहीं है ?

समाधान—यह कर्म एकेन्द्रिय नामकर्मके भीतर गर्भित है ।

शंका—यदि ऐसा है तो सूत्रपठित कर्मोंकी संख्याका नियम नहीं रहता ।

समाधान—सूत्रमें कर्म आठ ही हैं या एकसौ अड़तालीस ही हैं, इसप्रकार अन्य संख्याका निषेध करनेवाला एवकार (ही) पद नहीं है ।

शंका—तो फिर कर्म कितने हैं ?

समाधान—लोकमें कर्मोंके हाथी, घोड़ा, भेड़िया, भौंरा, पतंग, खटमल आदि जितने फल पाये जाते हैं उतने ही कर्म भी हैं । उनमें बादरनामकर्मके उदयसे युक्त जीव बादर कहलाते हैं ।

शंका—स्थूलशरीरवाले जीवोंको बादर क्यों नहीं कहते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि वेदनक्षेत्र विधानसे बादर एकेन्द्रियोंकी अवगाहनासे सूक्ष्म एके-न्द्रियोंकी अवगाहना बहुत पाई जाती है इसलिये स्थूलशरीरवाले जीवोंको बादर नहीं कह सकते । अतः जिनका शरीर प्रतिघातयुक्त है वे बादर हैं और अन्य पुद्गलोंसे जिनका शरीर अप्रतिघाती होता है वे सूक्ष्म जीव हैं ।

एक-एक जीवके प्रति जो शरीर होता है उसे प्रत्येक कहते हैं । जिन जीवोंका प्रत्येकशरीर होता है वे प्रत्येकशरीरजीव हैं। सूत्रमें प्रत्येकशरीरपदका निर्देश साधारणशरीर वनस्पतिकायिकके प्रतिषेधके लिये किया है । पृथिवीकायिक आदि जीव प्रत्येकशरीर ही होते हैं ।

शंका—सूत्रमें पृथिवीकायिक आदि जीवोंको प्रत्येक नाम क्यों नहीं दिया गया ?

समाधान—उनमें प्रत्येकशरीर संभव ही है, असंभव नहीं है, इसलिये उनके साथ प्रत्येक पद नहीं लगाया गया, क्योंकि व्यभिचारके या उसकी संभावनाके होनेपर विशेषण सार्थक होता है, ऐसा न्याय है ।

शंका—विग्रहगतिमें वर्तमान वनस्पतिकायिक जीव क्या प्रत्येकशरीर हैं या साधारण-

शरीर ? प्रत्येकशरीर तो हो नहीं सकते; क्योंकि कार्मणकाययोगमें वर्तमान वनस्पतिकायिक जीव अनन्त होते हैं अतः वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीरजीवोंके अनन्तपनेका प्रसंग आता है। परन्तु सूत्रमें उनका प्रमाण असंख्यात लोकमात्र कहा हैं। तथा वे जीव साधारणशरीर भी नहीं हो सकते क्योंकि उनमें साधारणजीवोंका लक्षण नहीं पाया जाता। और प्रत्येकशरीर तथा साधारण-शरीरसे भिन्न वनस्पतिकायिक जीव होते नहीं हैं। इसलिये जिनका शरीर प्रत्येक है वे प्रत्येक-शरीर हैं यह कथन घटित नहीं होता है ?

समाधान—जिस जीवने एक शरीरमें स्थित होकर अकेले ही सुख-दुःखके अनुभव करने योग्य कर्म उपार्जित किया है वह प्रत्येकशरीर है। तथा जिस जीवने एक ही शरीरमें स्थित बहुत जीवोंके साथ सुखदुःखरूप कर्मफलके अनुभव करने योग्य कर्म उपार्जित किया है वह जीव साधा-रणशरीर है। परन्तु जिसकी आयु छिन्न नहीं हुई है अर्थात् जो जीव अपनी पर्यायको छोड़कर वनस्पतिकायमें उत्पन्न नहीं हुआ है उस जोवके इसप्रकारका प्रत्येक या साधारण व्यपदेश नहीं हो सकता क्योंकि उनके प्रत्यासत्ति (उस पर्यायसे सम्बन्ध) का अभाव है। विग्रहगतिमें तो प्रत्यासत्ति है इसलिये वहाँ उक्त व्यपदेश होता है इसलिये पूर्वोक्त दोष संभव नहीं है। अथवा प्रत्येक शरीरनामकर्मके उदयसे युक्त वनस्पतिकायिकजीव प्रत्येकशरीर है और साधारणनामकर्मके उदय-से युक्त वनस्पतिकायिकजीव साधारणशरीर है ऐसा कथन करना चाहिये।

शंका—शरीर ग्रहण करनेके प्रथम समयमें दोनों शरीरोंमेंसे किसी एकका उदय होता है। इसलिये विग्रहगतिमें रहनेवाले जीवोंके प्रत्येकशरीर या साधारणशरीर संज्ञा प्राप्त नहीं होती ?

समाधान—यह दोष संभव नहीं है क्योंकि विग्रहगतिमें भी प्रत्यासत्ति है अतः उपचारसे प्रत्येक शरीर या साधारणशरीर संज्ञा संभव है। अथवा विग्रहगतिमें वर्तमान अनन्त जीव साधारण-नामकर्मके उदयके परवश परस्परमें अनुगत होनेसे एकत्वको प्राप्त हुए एक शरीरमें रहते हैं इस-लिये वे प्रत्येकशरीर नहीं हैं। [धवला पु ३, पृ. ३३२-३३२]

सामायिक और छेदोपस्थापना

द्रव्यार्थिक नयका अवलम्बन करनेकी अपेक्षा जिन्होंने 'मैं सर्वसावद्यसे विरत हूँ' इस प्रकार एक यमको स्वीकार किया है वे सामायिकशुद्धिसंयत कहे जाते हैं। तथा वे हो जीव पर्यायार्थिक नयका अवलम्बन करनेको अपेक्षा पूर्वोक्त यमके तीन, चार, पांच आदि भेद करके स्वीकार करनेपर छेदोपस्थापना शुद्धि संयत कहे जाते हैं।

शङ्का—दोनों नयोंका अवलम्बन क्या क्रमसे होता है या अक्रमसे। अक्रमसे तो हो नहीं सकता, क्योंकि परस्परमें विरुद्ध भेद और अभेदका एक साथ व्यवहार नहीं बन सकता। यदि क्रम से होता हैं तो सामायिकशुद्धिसंयत जीव छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत नहीं हो सकते क्योंकि एकत्वरूप परिणामोंका भेदरूपपरिणामोंके साथ विरोध है। उसी प्रकार छेदोपस्थापनशुद्धिसंयत जीव भी उसी समय सामायिकशुद्धिसंयत नहीं हो सकते; क्योंकि भेदरूप परिणामोंका अभेदरूप परिणामोंके साथ विरोध है ?

समाधान—द्रव्यार्थिक नयका अवलम्बन करने पर सर्व संयमियोंके एक हो यम होता है। पर्यायार्थिक नयका अवलम्बन करने पर प्रत्येक संयमीके पांच पांच संयम होते हैं। एक जातिके

परिणाम एकान्तसे प्रतिपक्षी परिणामोंसे निरपेक्ष होते हैं ऐसा नहीं है। ऐसा माननेपर दुर्नयपनेकी आपत्ति आती है। इसलिये जो सामायिकशुद्धिसंयत हैं वे ही छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत हैं और जो छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत है वे ही सामायिकशुद्धिसंयत हैं।

[धवला—पु० ३ पृ० ४४७-४९]

अनन्त और असंख्यातमें अन्तर

शङ्का—सादिसान्त मिथ्यात्वका काल कुछ कम अर्धपुद्गल परावर्तन कैसे है?

समाधान—एक अनादि मिथ्यादृष्टि अपरीत संसारी जीव अधःप्रवृत्तकरण अपूर्वकरण, और अनिवृत्तिकरणको करके सम्यक्त्वगुणके प्रथम समयमें हो सम्यक्त्व गुणके द्वारा पूर्ववर्ती अपरीत संसारीपना हटाकर व परीतसंसारी होकर अधिक-से-अधिक अर्धपुद्गल परावर्तनकाल तक ही संसारमें ठहरता है। सम्यक्त्वग्रहणके प्रथम समयमें ही मिथ्यात्वपर्याय नष्ट हो जाती है।

शंका—उत्पत्ति और विनाशका एक ही समय कैसे है?

समाधान—जैसे मिट्टीरूप द्रव्य एक ही समयमें पिण्डाकारसे नष्ट और घटाकारसे उत्पन्न होता है उसी प्रकार कोई जीव सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त प्रमाण उपशमसम्यक्त्वके कालमें रहकर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। इसलिये वह मिथ्यात्वके साथ सादि रूपसे उत्पन्न हुआ और सम्यक्त्वपर्यायसे विनष्ट हुआ।

शंका—मिथ्यात्व नाम पर्यायका है। वह उत्पाद और विनाश लक्षण वाली है। उसमें स्थितिका अभाव है। यदि उसकी स्थिति भी मानते हैं तो मिथ्यात्वको द्रव्यपनेका प्रसंग आता है क्योंकि उत्पाद, स्थिति और भंग द्रव्यका लक्षण है ऐसा आर्षवचन है?

समाधान—यह दोष नहीं है क्योंकि जो एक साथ उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यलक्षण वाला है वह द्रव्य है और जो क्रमसे उत्पाद, व्यय, स्थितिवाला होता है वह पर्याय है ऐसा जिनभगवानका उपदेश है।

शंका—यदि ऐसा है तो पृथिवी, जल, तेज, वायुको पर्यायपना प्राप्त होता है?

समाधान—उन्हें पर्यायपना तो हमें इष्ट ही है।

शंका—किन्तु लोकमें तो उन्हें द्रव्य माना जाता है?

समाधान—वह व्यवहार नैगमनयके निमितसे होता है। शुद्धद्रव्यार्थिक नयका अवलम्बन करनेपर छह ही द्रव्य हैं। और अशुद्धद्रव्यार्थिक नयका अवलम्बन करनेपर पृथिवी, जल आदि अनेक द्रव्य हैं; क्योंकि व्यंजनपर्यायके द्रव्यपना माना है। शुद्धपर्यायार्थिक नयकी विवक्षामें पर्यायके उत्पाद और विनाश दो ही लक्षण हैं और अशुद्धपर्यायार्थिक नयकी विवक्षामें क्रमसे तीनों भी लक्षण हैं क्योंकि बज्रशिला, स्तम्भ आदिमें उत्पन्न हुई व्यंजनपर्यायका अवस्थान पाया जाता है। मिथ्यात्व भी व्यंजनपर्याय है इसलिये उसमें उत्पाद, स्थिति, भंग क्रमसे तीनों ही अविरुद्ध हैं ऐसा जानना।

शंका—'जिन जीवोंकी सिद्धि भविष्यकालमें होनेवाली है वे जीव भवसिद्ध हैं' इस वचनके अनुसार सब भव्य जीवोंका व्युच्छेद हो जाना चाहिये अन्यथा उनके लक्षणमें विरोध आता है। व्ययसहित राशि नष्ट न हो ऐसी भी बात नहीं है, अन्यत्र ऐसा नहीं पाया जाता?

समाधान—यह दोष नहीं है क्योंकि भव्यराशि अनन्त है। और अनन्त उसे कहते हैं जो संख्यात या असंख्यात राशिका व्यय होने पर भी अनन्त कालमें भी समाप्त नहीं होता।

शंका—यदि ऐसा है तो व्ययसहित अर्धपुद्गल परिवर्तन आदि राशियोंका अनन्तपना समाप्त हो जाता है ?

समाधान—हो जाओ समाप्त, उसमें क्या दोष है ?

शंका—किन्तु सूत्र तथा आचार्योंके व्याख्यानोंमें उनमें अनन्तत्वका व्यवहार पाया जाता है ?

समाधान—उनमें अनन्तत्वका व्यवहार औपचारिक है। उसका खुलासा इस प्रकार है—जो स्तम्भ प्रत्यक्ष प्रमाणसे उपलब्ध है वह जैसे उपचारसे प्रत्यक्ष है ऐसा लोकमें व्यवहार पाया जाता है उसी प्रकार अवधिज्ञानके विषयका उलंघन करके जो राशियाँ स्थित हैं वे सब अनन्त प्रमाण केवलज्ञानके विषय होनेसे उपचारसे अनन्त कही जाती हैं। अतः उनमें सूत्र और आचार्योंके व्याख्यानसे प्रसिद्ध अनन्तके व्यवहारसे यह व्याख्यान विरोधको प्राप्त नहीं होता। अथवा व्ययके रहते हुए भी सदा अक्षय रहने वाली कोई राशि है क्योंकि सभी प्रतिपक्ष सहीत ही पाये जाते हैं। यह भव्यराशि भी अनन्त है अतः व्ययके होते हुए भी अनन्त कालमें भी वह समाप्त नहीं होगी। [धवला, पु० ४, पृ. ३३५-३३९]

शंका—अनन्त और असंख्यातमें क्या भेद है ?

समाधान—एक-एक संख्याके घटाते जाने पर जो राशि समाप्त हो जाती वह असंख्यात है और जो नहीं समाप्त होती वह अनन्त है।

शंका—यदि ऐसा है तो व्ययसहित होनेसे नाशको प्राप्त होने वाला अर्द्धपुद्गल परावर्तन काल भी असंख्यात हो जायगा ?

समाधान—हो जाओ।

शंका—तो फिर उसे अनन्त क्यों कहा है ?

समाधान—अनन्तरूप केवलज्ञानका विषय होनेसे अर्धपुद्गल परावर्तनरूप काल भी उपचारसे अनन्त कहा जाता है।

शंका—केवलज्ञानका विषय तो सभी संख्याएँ हैं अतः सभीको अनन्तपना प्राप्त होगा।

समाधान—नहीं, क्योंकि जो संख्याएँ केवलज्ञानका विषय हो सकती हैं उनसे अतिरिक्त ऊपरकी संख्याएँ केवलज्ञानके सिवाय अन्य किसी भी ज्ञानका विषय नहीं हो सकतीं। अत एव ऐसी संख्याओंमें अनन्तत्वके उपचारकी प्रवृत्ति हो जाती है। अथवा, जो संख्या पाँचों इन्द्रियका विषय है वह संख्यात है। उसके ऊपर जो संख्या अवधिज्ञानका विषय है वह असंख्यात है और उसके ऊपर जो संख्या केवलज्ञानका विषय है वह अनन्त है। [धवला, पु० ४, पृ० २६७]

आयरहित जिन संख्याओंका व्यय होनेपर सत्त्वका विच्छेद हो जाता है वे संख्याएँ संख्यात और असंख्यात संख्यावाली होती हैं। आयसे रहित जिन संख्याओंका संख्यात और असंख्यातरूपसे व्यय होनेपर भी विच्छेद नहीं होता है उनकी अनन्त संज्ञा है। सब जीवराशि अनन्त है अतः उसका

विच्छेद नहीं होता। इसमें अर्धपुद्गलपरावर्तके साथ व्यभिचार नहीं आता, क्योंकि अनन्तसंज्ञा वाले केवल ज्ञानका विषय होनेसे उसकी अनन्तरूपसे सिद्धि है। [धवला, पु० १४, पृ० ३३५]

तिर्यञ्च व मनुष्योंका सुमेरुपर्वतपर गमन

शंका—सुमेरुपर्वतके शिखरपर चढ़नेमें समर्थ ऋषियोंके क्या एक लाख योजन ऊपर उड़कर गमन करनेकी संभावना नहीं है ?

समाधान—भले ही सुमेरुपर्वतके ऊर्ध्वप्रदेशमें ऋषियोंके गमन करनेकी शक्ति रही आवे, किन्तु मनुष्यक्षेत्रके ऊपर एकलाख योजन उड़कर सर्वत्र गमन करनेकी शक्ति नहीं है।

शंका—यदि ऐसा है तो पूर्वके वैरी देवोंके प्रयोगसे तिर्यंचोंका भी एक लाख योजन ऊपर तक जाना प्राप्त होता है ?

समाधान—प्राप्त होता है तो होओ। उसमें कोई दोष नहीं है। [धवला, पु० ४, पृ० ११७]

हिंसाका स्वरूप

शंका—क्षीणकषायगुणस्थानमें ये निगोद जीव क्यों मरणको प्राप्त होते हैं ?

समाधान—क्योंकि ध्यानसे निगोद जीवोंकी उत्पत्ति और उनकी स्थितिके कारणका निरोध हो जाता है।

शंका—ध्यानके द्वारा अनन्तानन्त जीवराशिका घात करनेवालोंको कैसे मोक्ष प्राप्त हो सकता है ?

समाधान—अप्रमाद होनेसे

शंका—अप्रमाद किसे कहते है ?

समाधान—पाँच महाव्रत, पाँच समितियाँ, तीन गुप्तियाँ और समस्त कषायोंके अभावका नाम अप्रमाद है।

शंका—प्राण और प्राणियोंके वियोगका नाम हिंसा है। उसे करनेवाले जीवोंके अहिंसालक्षण पाँच महाव्रत कैसे हो सकते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि बहिरंग हिंसा आस्रवरूप नहीं होती।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना

समाधान—क्योंकि बाह्य हिंसाके अभावमें भी अन्तरंग हिंसासे ही सिक्थक मत्स्यके बन्ध पाया जाता है। जिसके बिना जो नहीं होता वह उसका कारण है। इसलिये शुद्धनयसे अन्तरंग हिंसा ही हिंसा है बहिरंग हिंसा हिंसा नहीं है यह सिद्ध होता है। क्षीणकषायके अन्तरंग हिंसा नहीं है क्योंकि कषाय और असंयमका अभाव है। [धवला, पु० १४, पृ० ८९-९०]

संयम और विरतिमें अन्तर

शंका—संयम और विरतिमें क्या भेद है ?

समाधान—समितियोंके साथ अणुव्रत और महाव्रत संयम कहलाते हैं और समितियोके बिना महाव्रत और अणुव्रत विरति कहलाते हैं। [धवला, पु० १४, पृ० १२]

●

ग्रन्थमालाके संरक्षक-सदस्योंकी नामावली

१. श्री पं० बसोरेलाल पन्नालालजी अकलतरा
२. ,, सेठ भगवानदास शोभालालजी, सागर
३. ,, मोहनलालजी सेठी, दुर्ग
४. ,, पं० बालचन्द्र सुरेशचन्द्रजी, नवापारा-राजिम
५. ,, सेठ राजकुमारसिंहजी, इन्दौर
६. ,, ला० प्रेमचन्द्रजी, जैना वॉच दिल्ली
७. ,, ला० जुगमन्दिरदासजी, कलकत्ता
८. ,, ला० मोतीलालजी, दिल्ली
९. ,, पं० रविचन्द्रजी, दमोह
१० ,, मोतीलालजी बड़कुल जबलपुर
११. ,, स० सिं० धन्यकुमारजी, कटनी
१२. ,, बी० आर० सी०, कलकत्ता
१३. ,, बा० नृपेन्द्रकुमारजी, कलकत्ता
१४. ,, दि० जैन मारवाड़ी मन्दिर ट्रस्ट, इन्दौर
१५. ,, ला० रघुवरदयालजी, दिल्ली
१६. ,, बा० महेशचन्द्रजी जैन, हस्तिनापुर
१७. ,, सिं० बदलीदास छोटेलालजी, झाँसी
१८. ,, सिं० श्रीनन्दनलालजी, बीना
१९. ,, ला० प्रकाशचन्द्रजी, दिल्ली
२०. ,, विजयकुमारजी मलैया दमोह
२१. ,, श्यामलालजी पांडवीय, मुरार
२२. ,, बैजनाथ सरावगी स्मृतिनिधि ट्रस्ट, कलकत्ता
२३. ,, सिं० हजारीलाल शिखरचन्दजी, अमर-पाटन
२४. ,, सिं० भागचन्द्रजी इटौरिया, दमोह
२५. ,, सेठ बाबूलालजी, बाँदा
२६. ,, बा० नन्दलालजी, कलकत्ता
२७. ,, सेठ वृजलाल बारेलालजी, चिरमिरी
२८. ,, बा० नेमकुमारजी, आरा
२९. ,, सेठ मुन्नालाल भैयालालजी, टीकमगढ़
३०. ,, सेठ दयाचन्द बाबूलालजी मैनवारवाले, टीकमगढ़
३१. श्री चतुर्भुज राजारामजी वैद्य, टीकमगढ़
३२. ,, पं० किशोरीलालजी शास्त्री, टीकमगढ़
३३. ,, सेठ धर्मदासजी बजाज, टीकमगढ़
३४. ,, सेठ तुलसीराम लालचन्द्रजी, शाहगढ़
३५. ,, सिं० दौलतराम बाबूलालजी, सोंरई (झाँसी)
३६. श्रीमती धर्मपत्नी सेठ मलथूरामजी, मड़ावरा (झाँसी)
३७. श्री भगवानदासजी सतभैया, सागर
३८. श्रीमती सिंघैन चम्पाबाईजी मातै० सिं० जीवनकुमारजी, सागर
३९. ,, सिं० अमीरचन्द्र देवचन्द्रजी, पाटन
४०. ,, ला० फकीरचन्द्रजी, दिल्ली
४१. श्री पं० बारेलालजी डा० कपूरचन्द्रजी, टीकमगढ़
४२. श्रीमती बृजमालाजी, बम्बई
४३. श्री राजवैद्य ला० महावीरप्रसादजी, दिल्ली
४४. ,, ला० नन्हेंमलजी, दिल्ली
४५. ,, ला० अजित प्रसादजी, दिल्ली
४६. ,, बा० सुखमालचन्दजी, दिल्ली
४७. ,, ब्र० पं० सरदारमलजी, सिरोंज
४८ ,, पं० मुन्नालालजी रांधेलीय, सागर
४९. ,, बाबू सीतारामजी, वाराणसी
५०. ,, बा० सुमेरचन्दजी, वाराणसी
५१. ,, दि० जैन मन्दिर विजनौर
५२. ,, पं० कैलाशचन्द्रजी शास्त्री, वाराणसी
५३. ,, पं० वंशीधरजी व्याकरणाचार्य, बीना
५४. ,, डॉ० नेमिचन्द्रजी शास्त्री, आरा
५५. डॉ० दरबारीलालजी कोठिया, वाराणसी
५६. श्री पं० हीरालालजी कौशल, दिल्ली
५७. ,, अ० भा० दि० जैन केन्द्रीय समिति, दमोह
५८. श्री प्रसन्नकुमारजी, गौरझामर (सागर)
५९. पं० गुलाबचन्द्रजी दर्शनाचार्य, जबलपुर

६०. श्री पं० मुन्नालाल चुन्नीलालजी, ललितपुर
६१. ,, सेठ बद्री प्रसादजी, पटना
६२. ,, बाबूलालजी फागुल्ल, वाराणसी
६३. प्रो० खुशालचन्द्रजी गोरावाला, वाराणसी
६४. श्री शीलचन्द्रजी, वाराणसी
६५. ,, बा० अतुल्यकुमारजी, कलकत्ता
६६. ,, सूरदासजी, ललितपुर
६७. ,, पं० श्यामलालजी, ललितपुर
६८. ,, नीरजजी, सतना
६९. डॉ० भागचन्द्रजी, सीहोर
७०. श्री विमलकुमार निहालचन्दजी, मड़ावरा
७१. श्री नवलकिशोरजी, गया
७२. सेठ चिरंजीलालजी, वर्धा
७३. डॉ० भागचन्दजी भास्कर, नागपुर
७४. श्री बा० दीपचन्द्रजी, कानपुर
७५. ,, पं० सुरेन्द्रकुमारजो वैद्य, बीना
७६. ,, रा० सा० चतुरचन्द्रकुमारजी, आरा
७७. ,, सि० कोमलचन्द्रजी रांधेलीय, सागर
७८. ,, मोतीलाल हिराचन्द्रजी गांधी, औरंगाबाद
७९. ब्र० राजारामजी, भोपाल
८०. डॉ० बाबूलालजी, बण्डा
८१. सेठ प्यारेलालजी, शाहगढ़
८२. डॉ० नन्हेंलालजी, बण्डा
८३. सेठ धनप्रसादजी मुडरया, बण्डा
८४. भायजी कुन्दनलाल कपूरचन्दजी, बण्डा
८५. श्री रघुवरप्रसादजो बजाज, बण्डा
८६. श्रीमती क्षमाबाईजी, गुलगंज-मलहरा
८७. चौ० गुलाबचन्द्र जीवनलालजी बजाज, बण्डा
८८. श्रीमती क्षमाबाईजी, बण्डा
८९. डॉ० पूरणचन्द्रजी, बण्डा
९०. साव कन्हैयालालजी, बण्डा
९१. सि० छोटेलालजी, बण्डा
९२. सि० बट्टूलाल डॉ० मोतीलालजी, खुरई
९३. ब्र० डालचन्द्रजो टड़ैया, टीकमगढ़
९४. ब्र० जयचन्द्रजी साव, कुण्डलपुर
९५. श्री रज्जूलालजी, बीना
९६. ,, कैलाशचन्द्रजी, गंजबासौदा
९७. पं० बाबूलालजी जमादार, बड़ौत
९८. ला० त्रिलोकचन्द्रजी, मेरठ
९९. दि० जैन महिला समाज, फतेहपुर
१००. डॉ० प्रेमसागरजी, बड़ौत
१०१. ला० भगवानदास अर्हद्दासजी, सहारनपुर
१०२. ला० विशम्बरदास महाबीरप्रसादजी सर्राफ, दिल्ली
१०३. ,, जैनेन्द्रकिशोरजी जौहरी, दिल्ली
१०४. श्री हुकुमचन्द हीरालालजी मोदी, ललितपुर
१०५. श्रीमती सेठानी शांतिबाईजी, सिवनी
१०६. श्री लखमीचन्द्रजी गुरहा, खुरई
१०७. ,, रामप्रसाद भैयालालजी ललितपुर
१०८. चौ० फूलचन्द पद्मचन्दजी ललितपुर
१०९. श्रीमनीराम वृजलालजी सर्राफ, ललितपुर
११०. श्री व्रजलालजी प्रानपुरावाले, ललितपुर
१११. ,, हीरालालजी सर्राफ, ललितपुर
११२. ,, मुन्नालाल कुन्दनलालजी सर्राफ, ललितपुर
११३. ,, वृजलाल शीलचन्दजी जैन, ललितपुर
११४. श्री सि० रज्जूलालजी, ललितपुर
११५. ,, बाबूलालजी बरया, ललितपुर
११६. श्री करणराय निहालचन्द्रजी जैन, वर्धा
११७. बा० गिन्नीलालजी जैन, कलकत्ता,
११८. श्री दि० जैन मंदिर, मुगावली
११९. ,, जैन आदिराज अण्णा, शेडबाल
१२०. डॉ० राजारामजी, आरा
१२१. प्रो० सुखनन्दनजी, बड़ौत
१२२. ,, खडगसेन उदयराज दि० जैन मंदिर, वाराणसी
१२३. ला० सालिगराम सतीशचन्द्रजी, आगरा
१२४. ,, नाभिनन्दन दि० जैन मंदिर, बीना
१२५. ,, पं० पन्नालालजी साहित्याचार्य, सागर
१२६. ला० शम्भूनाथजी जैन कागजी, दिल्ली
१२७. श्रीमती धर्मपत्नी श्री जयचन्द लालजी, फतेहपुर, (बारावंकी)
१२८. ला० जियालालजी, बड़ौत
१२९. बा० लक्ष्मीचन्द्रजी वकील, बड़ौत
१३०. ला० हुकुमचन्द्रजी सर्राफ, बड़ौत (नेरट)

१३१. श्रीमती सुगन्धीबाईजी, सागर
१३२. श्री महावीर दि० जैन पारमार्थिक संस्था, सतना
१३३. ,, दि० जैन उदासीन आश्रम, इन्दौर
१३४. ,, रतनलालजी, सरूपगंज (सिरोही)
१३५. ,, दि० जैन स्वाध्याय गोष्ठी, ऐत्मादपुर
१३६. श्रीमती युवराज्ञी लक्ष्मीदेवीजी, वाराणसी
१३७. ,, विदुषी ब्र० चन्दाबाईजी, आरा
१३८. ,, नानीबहेन डगरचन्दजी, तलौद
१३९. श्रीमती मणिबहेन श्रीकेदारलाल हुकुमचन्द्र जी शाह, तलौद
१४०. सिं० भरोसेलाल दयाचन्द्रजी, मगरपुर
१४१. ,, सेठ भागचन्द्रजी, डौंगरगढ़
१४२. ,, पं० जम्बूप्रसादजी शास्त्री सोंरया, मड़ावरा
१४३. ,, आदीश्वरप्रसादजी, मुजफ्फरनगर
१४४. श्री दि० जैन गणेश वर्णी पुस्तकालय, कानपुर
१४५. ,, जैनबहादुरजी, कानपुर
१४६. बा० इन्द्रजीतजी, कानपुर
१४७. ,, मदनलाल महावीरप्रसादजी, कानपुर
१४८. श्रीमती समुद्रीबाई ध० प० श्रीहुकुमचंदजी सतभैया, सागर
१४९. श्रीगौरीलालजो अजमेरा, भीलवाड़ा
१५०. ,, फूलचन्द्र सुरेशचन्द्रजो, सतना
१५१. डॉ० कंकूबाई केवलचन्द्र शहा, म्हसवड, (सतारा)
१५२. ,, एस० के० जैन, रायपुर
१५३. श्री कपूरचन्द्रजी समैया. सागर
१५५. श्री दामोदरदास उदयचन्द्रजी, सागर
१५६. ,, चन्द्रकान्तकृष्ण डोलें, कोल्हापुर
१५७. ,, रामराव सितलाजी, दोडल, हिंगोली
१५८. श्री श्रीरतनलाल किशोरीलालजी मालवीय, नई दिल्ली
१५९. सिं० हरिश्चन्द्रजी जैन, जबलपुर
१६०. बा० श्रवणकुमारजी जैन, कलकत्ता
१६१. बा० हिम्मतसिंहजी जैन, कलकत्ता
१६२. ,, वंशीधर जुगलकिशोरजी सरावगी, कलकत्ता
१६३. सेठ मिश्रीलालजी काला, कलकत्ता
१६४. श्री दि० जैन मन्दिर चौक, भोपाल
१६५. ,, दि० जैन मुमुक्षुमंडल सराफा चौक, भोपाल
१६६. ,, सुखलाल छोगमलजी सर्राफ, भोपाल
१६७. सिं० उमरावप्रसाद दयाचन्द्रजी, सोंरई(झांसी)
१६८. श्री सागरमल पन्नालालजी पटवारी, विनौता
१६९. ,, चुन्नीलाल बाबूलालजो भट्ट, खुरई
१७०. श्रीमती बालासुन्दरीजी मातै० स्व० ला० सुखवीरसिंह श्रीचन्द्रजी, बड़ौत
१७१. श्रीमती सुशीलाबाईजी पाठिका, बीना
१७२. साहू श्रीशीतलप्रसादजी, कलकत्ता
१७३. डॉ० देवेन्द्रकुमारजी, इन्दौर
१७४. डॉ० हरीन्द्रभूषणजी, उज्जैन
१७५. श्री गुलाबचन्द्रजी मंत्री वीर वाचनालय, ढाना
१७६. ,, दि० जैन मंदिर, जैसीनगर (सागर)
१७७. श्रीमती मिथलेशकुमारीजी जैन, कलकत्ता
१७८. सेठ जिनेश्वरप्रसादजी टड़ैया, ललितपुर
१७९. श्री गोरेलालजी जैन, भानगढ़
१८०. ,, दि० जैन मन्दिर, बड़वानी
१८१. ,, नेमिचन्द्रजी जैन अजमेरा, धरमपुरी (धार)
१८२. श्री केशरलालजी विलाला, जयपुर
१८३. ,, पं० ब्र० माणिकचन्द्रजी चवरे, न्यायतीर्थ, कारंजा
१८४. ,, दि० जैन महिला समाज, चिलकाना (सहारनपुर)
१८५. ,, दीपचन्द्र मूलायचन्द्रजी मलैया, खुरई
१५६. ,, पन्नालालजी कांकरिया, ब्यावर
१८७. श्रीमती कैलाशवतीजी ध० प० चौधरी जयप्रसादजी, सुल्तानपुर
१८८. प्रो० अमृतलालजी शास्त्री, वाराणसी
१८९. श्री पं० मोहनलालजी शास्त्री, जबलपुर
१९०. डॉ० राजकुमारजी, आगरा
१९१. श्रीमती जमनाबाईजी ध. प. श्री वृद्धिचन्द्रजी, दिल्ली.
१९२. श्री रिखवचन्दजी वैराठी, जयपुर
१९३. ,, चन्द्रवंशकुमारजी जे. के. नगर आसनसोल
१९४. ,, गुलाबचन्द्रजी वैद्य, ककरवाहा (म० प्र०)

१९५. श्री मूलचन्द फूलचन्दजी, ललितपुर
१९६. ,, नेमिचन्दजी मगरौनीवाले, शिवपुरी
१९७. ,, गणपतराव लक्षाप्पा मिरजे, कोल्हापुर
१९८. ,, सेठ चन्दूलाल कस्तूरचंदजी, बम्बई
१९९. ,, सेठ बालचन्द्र देवचन्द्रजी शहा, बम्बई
२००. ,, चौधरी रज्जूलाल मोतीलालजी, अशोकनगर
२०१. ,, माणिकचन्द्र वीरचन्दजी गाँधी, फल्टन
२०२. ,, चन्द्रप्रभ दि. जैन मन्दिर, कटनी
२०३ ,, फूलचन्द्र सौभाग्यमलजी गोधा, इन्दौर
२०४. ,, ला. जयप्रकाश सत्यप्रकाशजी, मुजफ्फरनगर
२०५. ,, बा. शीतलप्रसादजी मित्तल, मुजफ्फरनगर
२०६. ,, पं० परमेष्ठीदासजी, ललितपुर
२०७. ,, नेमिचंदजी गोंदवाले, शिवपुरी
२०८. श्रीमती चम्पाबाईजी, मलहरा
२०९. श्रीमती ठगनबाईजी, आरवी.
२१०. श्री जगदीशप्रसादजी, मुजफ्फरनगर
२११. ,, सुमेरचन्दजी, मुजफ्फरनगर
२१२. ,, दि. जैन मन्दिर, बहराइच
२१३. श्रीमती सुधा पटोरिया ध. प. डॉ. नरेन्द्रकुमारजी पटोरिया, नागपुर
२१४. श्री एस. पी. देशमुख, आरा
२१५. श्रीमती राजकुमारीजी रांधेलीय ध. प. सिं. देवकुमारजी, कटनी
२१६. श्रीमती विमलाजी ध. प. प्रो. मोतीलालजी विजय, कटनी
२१७. ला. बाबूलाल राजेन्द्रकुमारजी, गाजियाबाद
२१८. श्री बाहुबली विद्यापीठ, बाहुबली (कोल्हापुर)
२१९ श्रीमती विदुषी गजाबेनजी बाहुबली
२२०. डॉ. अशोककुमारजी बी. मगदुम अंकली (ता. मिरज)
२२१. श्रीरामगौडा तात्या पाटेल, जैनापुर (कोल्हापुर)
२२२. श्री हुकमगौडा देवगोडा पाटिल, नीमसिरगाँव (कोल्हापुर)
२२३. मार्ले एण्ड कम्पनी, साहूपुरी कोल्हापुर
२२४. श्री जनगौडा रामगौडा पाटिल, जयसिंहपुर
२२५. ,, धन्यकुमार बालगौडा पाटिल, कुम्भोज (कोल्हापुर)
२२६. ,, नेमिनाथ नानागवांडे, राजारामपुरी कोल्हापुर
२२७. ब्र. माणिकचन्द्रजी भीसीकर, बाहुबली
२२८. श्रीमती रमादेवी ध. प. डॉ. नरेन्द्र विद्यार्थी, छतरपुर
२२९. पं. प्रसन्नकुमारजी, टीकमगढ़
२३०. श्री पार्श्वनाथ दि जैन मन्दिर, हाथरस
२३१. ,, सौभाग्यमलजी, वाराणसी
२३२. ,, शान्तिसागर स्वाध्याय मन्दिर उ–खानापुर (बेलगाँव)
२३३. ला. राजकृष्ण प्रेमचन्द्रजी दिल्ली
२३४. श्री मैनेजर, एस. के. सुगरमिल, हथुआ (बिहार)
२३५. ,, मैनेजर, एस. के. सुगरमिल, लोरिया (बिहार)
२३६. ,, बा. सुमेरचन्द्रजी, आरा
२३७. ,, प्रो. प्रेमचन्द्रजी जैन, डिब्रूगढ़ (आसाम)
२३८. श्री हुकमचन्द्रजी, मंत्री दि. जैन पारमार्थिक संस्था, सतना
२३९. ,, कैलाशचन्द्रजी, सतना
२४०. ,, मूलचन्द्रजी, सतना
२४१. ,, कोमलचन्द्रजी, सतना
२४२. ,, हेमचन्द्रजी, सतना
२४३. ,, वैद्य कुन्दनलालजी, सतना
२४४. ,, सेठ ऋषभदासजी, सतना
२४५. श्री सोमचन्द्रजी, सतना
२४६. ,, प्रकाशचन्द्रजी, सतना
१४७. ,, दयाचन्द्रजी अभियन्ता सिंचाई विभाग, सतना
२४८. ,, नेमिचन्द्रजी, सतना
२४९. श्रीमती क्रान्तिजी ध. प. प्राचार्य श्री ज्ञानचन्द्रजी, सतना

२५०. श्री हिम्मतलाल एस. शाह, अहमदाबाद
२४१. ,, रतनचन्द्रजी कल्याणपुरावाले, ललितपुर
२५२. ,, हीरालाल घूड़मलजी हरदा, (म. प्र.)
१५३. ,, धन्यकुमार मोहनलालजी दोशी, कोल्हापुर
२५४. ,, मानिकचन्द्रजी, भोपाल
२५५. ,, दि. जैन मन्दिर, अमरपाटन
२५६. ,, सिं. दौलतराम मगनलालजी सर्राफ, ललितपुर
२५७. ,, पुत्तूलाल जुग्गीलालजी सर्राफ, ललितपुर
२५८. ,, मथुराप्रसादजी वैद्य, ललितपुर
२५९. ,, माणिकचन्द्रजी सर्राफ, ललितपुर
२६०. ,, कपूरचन्द्रजो पालीवाले, ललितपुर
२६१. ,, लक्ष्मणप्रसादजो खिरियावाले, ललितपुर
२६२. ,, खेमचन्द्र राजकुमारजी बजाज, दमोह
२६३. ,, पटवारी श्रीरामप्रसादजी, कटनी
२६४. ,, नायक मुन्नालालजी सर्राफ, बीना
२६५. ,, बा. नरेन्द्रप्रसादजी, दिल्ली
२६६. ,, श्रीमन्त सेठ राजेन्द्रकुमारजो, विदिशा
२६७. ,, ला. मदनलालजी सर्राफ, बड़ौत
२६८. श्री दि. जैन मन्दिर प्रेमपुरी, मुजफ्फरनगर
२६९. ,, दि. जैन महिला समाज, कलोल (उ. गुजरात)
१७०. ,, प्रो० उदयचन्द्रजी, वाराणसी
२७१. श्री सुरेशचन्द्रजी बड़कुल, पनागर
२७२. ,, ज्ञानचन्द्रजी, कबूलनगर, दिल्ली
२७३. ,, दर्शनलाड़जी, बम्बई
२७४. ,, पं॰ विनयकुमारजी पथिक, मथुरा
१७५. श्री हुकमचन्द्रजी चूनावाले, कटनी
२७६. ,, पार्श्वनाथ दि. जैन मन्दिर, रीठी
२७७. ,, ललीराम नन्दरामजी, मुरार
२७८. ,, बा. नेमिचन्द्रजी एडवोकेट, सहारनपुर
२७९. श्रीमती केलादेवीजी ध. प. स्व. ला. चमनलालजी, मेरठ
२८०. श्री इन्दरचन्द्र विजयकुमारजी कौशल, छिन्दवाड़ा,
२८१. श्री लक्ष्मीचन्दजो हूमड़, खण्डवा,
२८२. श्री पद्मचन्द्रजो सर्राफ, आगरा
२८३. ,, पंचारामजी शास्त्री, बयाना (राजस्थान)
२८४. ,, सुरेन्द्र जिनाप्पा खेमलापूरे, बेलुदबागेवाड़ी, (वेलगांव)
२८५. ,, मौजोलालजो पिता श्री पन्नालालजी, भानपुरा
२८६. ,, घीसालाल जतनलालजी, नसिराबाद (राजस्थान)
२८७. श्री गम्भीरमलजी सेठी, नसिराबाद (राजस्थान)
२८८. ,, पन्नूलाल भंवर लालजी, सोनी नसिराबाद
२८९. श्रीमती कमलादेवीजी ध० प० श्री मोहनलालजी लोहिया, भिण्ड
२९०. श्री अभयचन्द्रजी, अशोकनगर (म० प्र०)
२९१. ,, विलासचन्द्र मोतीचन्द्र मेहता, बम्बई
२९२. ,, दि० जैन मन्दिर पुराना बाजार, अशोकनगर
२९३. ,, अमरचन्द्रजी अजमेरा मंत्री दि. जैन मंदिर कमेटी, भोपाल

संरक्षक सदस्यता—कोई भी महानुभाव एकसौ एक रुपये प्रदान कर ग्रन्थमालाके संरक्षक सदस्य बन सकते हैं। समिति उनका स्वागत करेगी और उन्हें अपने प्रकाशित एवं प्रकाश्यमान ग्रन्थ भेंट करेगी।

वर्णी ग्रन्थमालाके प्रकाशन

१. मेरी जीवन गाथा	भाग १	....	८—००
२. ,, ,,	भाग २	....	४—२५
३. वर्णीवाणी	भाग १	....	६—००
४. ,,	भाग २	....	४—००
५. ,,	भाग ३	....	६—००
६. ,,	भाग ४	....	३—५०
७. जैन साहित्य का इतिहास (पूर्व पीठिका)		....	१०—००
८. जैन दर्शन		....	१०—००
* ९. अनेकान्त और स्याद्वाद		....	०—२५
*१०. अपरिग्रह और विश्वशान्ति		....	०—२५
*११. पंचाध्यायी		....	९—००
*१२. श्रावक धर्म प्रदीप		....	४—००
१३. तत्त्वार्थसूत्र		....	५—००
१४. द्रव्यसंग्रह-भाषावचनिका		....	४—०९
१५. अपभ्रंश प्रकाश		....	३—००
१६. मन्दिरवेदी प्रतिष्ठाकलशारोहण विधि (नया संस्करण)		....	२—००
१७. सामायिक पाठ		....	०—६०
*१८. सत्यकी ओर (प्रथम कदम)		....	१—२५
१९. अध्यात्मपत्रावली		....	१—००
२०. आदिपुराणमें प्रतिपादित भारत		....	१२—००
२१. समयसार-प्रवचन		....	१२—००
२२. तत्त्वार्थसार		....	६—००

---

* चिह्नांकित ग्रन्थ अप्राप्य हैं। उनके पुनः प्रकाशनकी योजना है।